



एम.ए. हिंदी
(MAHND)

भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा
MAHND-102

भाषा
मानव को जोड़ती है,
विचार को विस्तार देती है
और संस्कृति को
अमर बनाती है।

ध्वनि
रूप
वाक्य
अर्थ
प्रयोग
समाज
संस्कृति
मानव

ध्वनिविज्ञान

रूपविज्ञान

वाक्यविज्ञान

अर्थविज्ञान

भाषा
समाज
संस्कृति
मनुष्य

स्वाध्याय का उजास

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी की स्नातकोत्तर अध्ययन सामग्री के इस नवीन संस्करण के प्रकाशन पर मुझे हार्दिक प्रसन्नता है। मुझे विश्वास है कि यह स्वाध्याय सामग्री शिक्षार्थियों के ज्ञान-विस्तार, बौद्धिक परिष्कार तथा स्वतंत्र चिंतन को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी और उनकी शैक्षणिक यात्रा में एक विश्वसनीय मार्गदर्शक सिद्ध होगी।

भास्तरत्न डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने शिक्षा को सामाजिक न्याय, समान अवसर तथा मानवीय गरिमा की स्थापना का सबसे प्रभावी साधन माना था। उनके विचारों से प्रेरणा ग्रहण करते हुए यूनिवर्सिटी अपने ध्येय वाक्य “स्वाध्यायः परमं तपः” को आत्मसात् कर मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के माध्यम से प्रत्येक शिक्षार्थी तक गुणवत्तापूर्ण, समावेशी एवं सुलभ उच्च शिक्षा पहुँचाने के लिए सतत प्रतिबद्ध है। शिक्षा का लोकतंत्रीकरण, आजीवान अधिगम की संस्कृति तथा ज्ञान तक समान पहुँच हमारे शैक्षिक प्रयासों के मूलाधार है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-२०२० ने उच्च शिक्षा को अधिक लचीला, बहुविषयक, शिक्षार्थी-केंद्रित तथा कौशलान्मुख बनाने की दिशा प्रदान की है। यूनिवर्सिटी इस व्यापक दृष्टि के अनुरूप भारतीय ज्ञान-परंपरा, अनुसंधान, नवाचार, डिजिटल प्रौद्योगिकी तथा मूल्यपरक शिक्षा को अपने शैक्षणिक कार्यक्रमों में समाहित करते हुए ऐसे शिक्षार्थियों के निर्माण के लिए निरंतर प्रयत्नशील है, जो बदलते वैश्विक परिदृश्य में ज्ञान, कौशल और सामाजिक उत्तरदायित्व के साथ सक्रिय भूमिका निभा सकें।

स्नातकोत्तर स्तर का अध्ययन केवल विषय-ज्ञान के विस्तार का माध्यम नहीं है, बल्कि स्वतंत्र चिंतन, समालोचनात्मक दृष्टि, अनुसंधान-प्रवृत्ति तथा ज्ञान-सृजन की प्रक्रिया का सशक्त आधार भी है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए यह स्वाध्याय सामग्री तैयार की गई है। इसकी विषयवस्तु को नवीनतम पाठ्यक्रम, समकालीन संदर्भों तथा शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं के अनुरूप सरल, प्रामाणिक, क्रमबद्ध एवं स्वाध्याय-उन्मुख रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जिससे शिक्षार्थी विषय की गहन समझ विकसित कर सकें तथा उच्च अध्ययन एवं अनुसंधान के लिए स्वयं को सक्षम बना सकें।

हिंदी भाषा और साहित्य भारतीय ज्ञान-परंपरा, सांस्कृतिक विरासत तथा लोकतांत्रिक चेतना की महत्वपूर्ण संवाहक है। हिंदी ने विविध सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक अनुभवों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए ज्ञान को व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य भी ज्ञान को प्रत्येक शिक्षार्थी तक बिना किसी भौगोलिक, सामाजिक अथवा आर्थिक बाधा के पहुँचाना है। इस दृष्टि से हिंदी का अध्ययन केवल भाषा और साहित्य का अध्ययन नहीं, बल्कि समाज, संस्कृति, मानवीय मूल्यों तथा समावेशी ज्ञान-दृष्टि को समझने का सशक्त माध्यम भी है। मुझे विश्वास है कि यह अध्ययन सामग्री शिक्षार्थियों में विषय की गहन समझ विकसित करने के साथ-साथ संवेदनशीलता, तार्किक दृष्टि, शोधाभिरुचि तथा जीवनपर्यन्त सीखने की प्रेरणा का भी संवाहन बनेगी।

मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में स्वाध्याय सामग्री शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का प्रमुख आधार होती है। इस अध्ययन सामग्री के निर्माण में पाठ्यक्रम समिति के सदस्यों, लेखकों, विषय एवं भाषा परामर्शकों तथा यूनिवर्सिटी के समस्त अकादमिक एवं प्रशासनिक सहयोगियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मैं उनके ज्ञान, अनुभव, परिश्रम एवं समर्पण के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह स्वाध्याय सामग्री शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में सहायक सिद्ध होगी तथा उन्हें ज्ञान, विवेक, मानवीय मूल्यों और सामाजिक उत्तरदायित्व से समृद्ध करते हुए राष्ट्र के विकास में सक्रिय योगदान देने के लिए प्रेरित करेगी।

आप सभी शिक्षार्थियों को उज्ज्वल भविष्य के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ!

प्रो. (डॉ.) अमी उपाध्याय

कुलपति

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद

MAHND-102 : भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा

प्रधान संपादक :

प्रो. (डॉ.) योगेंद्र पारेख निदेशक, स्कूल ऑफ़ ह्यूमैनिटीज़ एंड सोशल साइंसेज़, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद.

संपादक :

डॉ. अर्चना मिश्रा असिस्टेंट प्रोफ़ेसर हिंदी, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद.

सह संपादक :

डॉ. रश्मि राजपूत असिस्टेंट प्रोफ़ेसर हिंदी, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद.

विषय समिति :

प्रो. आलोककुमार गुप्त (सेवानिवृत्त) प्रोफ़ेसर, हिंदी भाषा एवं साहित्य अध्ययन केंद्र, भाषा, साहित्य एवं सांस्कृतिक अध्ययन संकाय, गुजरात केंद्रीय विश्वविद्यालय.

डॉ. ओमप्रकाश शुक्ल एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी, गुजरात कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स एंड कॉमर्स, अहमदाबाद.

डॉ. अर्चना मिश्रा असिस्टेंट प्रोफ़ेसर हिंदी, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद.

इकाई लेखक :

प्रो. प्रीति सागर प्रोफ़ेसर, हिंदी साहित्य विभाग, साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र.

प्रो. बीर पाल सिंह यादव प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान संकाय, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़, हरियाणा.

आवरण सज्जा :

सुश्री कलरव दवे ग्राफ़िक डिज़ाइनर, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद.

प्रकाशक : कुलसचिव, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद.

मुद्रक : साहित्य मुद्रणालय, अहमदाबाद

ISBN : 978-93-5598-668-9

© जुलाई, 2026 डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद.

सर्वाधिकार सुरक्षित : यह स्वाध्याय सामग्री डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी द्वारा मुक्त दूरस्थ शिक्षा के उद्देश्यों को केंद्र में रखते हुए विद्यार्थियों के स्वाध्याय के लिए तैयार की गयी है, जिसका सर्वाधिकार यूनिवर्सिटी के पास सुरक्षित है. इस स्वाध्याय सामग्री का पूर्ण या आंशिक रूप से किसी भी प्रकार डिजिटली या इलेक्ट्रॉनिकली पुनरुत्पादन डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी की लिखित अनुमति के बिना अवैध माना जायेगा.

एम.ए.हिंदी
(MAHND)

भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा
MAHND-102

अनुक्रमणिका

इकाई-1	भाषा की परिभाषा स्वरूप एवं अभिलक्षण	05-12
इकाई-2	भाषाविज्ञान स्वरूप एवं व्याप्ति	13-22
इकाई-3	भाषा की संरचना	23-34
इकाई-4	भाषा और विचार	35-43
इकाई-5	ध्वनि विज्ञान	44-53
इकाई-6	पद विज्ञान	54-65
इकाई-7	वाक्य विज्ञान	66-75
इकाई-8	अर्थ विज्ञान	76-87
इकाई-9	हिंदी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	88-110
इकाई-10	हिंदी की उपभाषाएँ (बोलियाँ)	111-121
इकाई-11	हिंदी ध्वनियाँ और उनका वर्गीकरण	122-132
इकाई-12	शब्द साधन, शब्द रचना	133-143
इकाई-13	वाक्य विन्यास, विराम चिह्न	144-153
इकाई-14	देवनागरी लिपि का मानकीकरण	154-163

पाठ्यक्रम परिचय

प्रिय विद्यार्थी मित्रो!

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी के एम.ए. हिंदी (प्रथम सेमेस्टर) के पाठ्यक्रम 'भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा' (MAHND-102) की स्वाध्याय सामग्री आपके लिए प्रस्तुत है।

भाषा मानव की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है। यही वह माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचारों, भावनाओं, ज्ञान और अनुभवों का आदानप्रदान करता है। किंतु भाषा केवल संप्रेषण का साधन ही नहीं, बल्कि एक वैज्ञानिक अध्ययन का विषय भी है। भाषा की उत्पत्ति, संरचना, विकास, ध्वनिव्यवस्था, शब्द-संपदा, वाक्य-विन्यास तथा अर्थ निर्माण की प्रक्रियाओं का व्यवस्थित अध्ययन भाषाविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। आधुनिक भाषा-अध्ययन में भाषावैज्ञानिक दृष्टि का विशेष महत्व है, क्योंकि इसके माध्यम से भाषा के स्वरूप और उसकी कार्यप्रणाली को वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक आधार पर समझा जा सकता है। इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए इस पाठ्यक्रम का निर्माण किया गया है।

इस पाठ्यक्रम में कुल 14 इकाइयाँ हैं। प्रारंभिक इकाइयों में भाषा की परिभाषा, स्वरूप एवं अभिलक्षण, भाषाविज्ञान की प्रकृति एवं व्याप्ति, भाषा की संरचना तथा भाषा और विचार के परस्पर संबंधों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसके पश्चात ध्वनिविज्ञान, पदविज्ञान, वाक्यविज्ञान तथा अर्थविज्ञान जैसी भाषाविज्ञान की प्रमुख शाखाओं का क्रमबद्ध एवं विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है। इन इकाइयों के माध्यम से विद्यार्थी भाषा की वैज्ञानिक संरचना तथा उसके विविध स्तरों को समग्र रूप में समझ सकेंगे।

पाठ्यक्रम के अंतिम भाग में हिंदी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उसकी प्रमुख उपभाषाओं (बोलियों), हिंदी ध्वनियों एवं उनके वर्गीकरण, शब्द-साधन एवं शब्द-रचना, वाक्य-विन्यास, विराम-चिह्नों तथा देवनागरी लिपि के मानकीकरण का अध्ययन-सम्मिलित किया गया है। इन इकाइयों के माध्यम से विद्यार्थी हिंदी भाषा के विकासक्रम, उसकी संरचनात्मक विशेषताओं तथा मानक स्वरूप का वैज्ञानिक अध्ययन कर सकेंगे।

यह स्वाध्याय सामग्री मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तैयार की गई है। प्रत्येक इकाई को सरल, क्रमबद्ध तथा आत्म-अध्ययन के अनुकूल शैली में प्रस्तुत किया गया है। विषयवस्तु को अधिक स्पष्ट एवं ग्राह्य बनाने के लिए आवश्यक उदाहरण, संदर्भ, व्याख्याएँ तथा अभ्यास प्रश्न भी सम्मिलित किए गए हैं। स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थी होने के नाते आपसे अपेक्षा है कि प्रत्येक इकाई का अध्ययन करते समय मूल ग्रंथों एवं सहायक संदर्भ-सामग्री का भी उपयोग करें। इससे भाषावैज्ञानिक अवधारणाओं की गहन समझ विकसित होगी तथा आपकी विश्लेषणात्मक एवं शोधपरक दृष्टि का विस्तार होगा।

ज्ञान का वास्तविक उद्देश्य केवल भाषिक तथ्यों का अध्ययन करना नहीं, बल्कि भाषी संरचना, विकास और कार्यप्रणाली को वैज्ञानिक दृष्टि से समझने की क्षमता विकसित करना भी है। हमें विश्वास है कि यह पाठ्यक्रम आपको भाषाविज्ञान के मूल सिद्धांतों, हिंदी भाषा की संरचना एवं विकास तथा उसके मानक स्वरूप की सम्यक् समझ प्रदान करने के साथ-साथ आपकी भाषिक संवेदनशीलता, विश्लेषणात्मक क्षमता और शोधाभिमुख दृष्टि के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

आप इस स्वाध्याय सामग्री का मनोयोगपूर्वक अध्ययन करें, जिज्ञासु बने रहें और विभिन्न संदर्भ-ग्रंथों के अध्ययन के माध्यम से अपने ज्ञान का निरंतर विस्तार करते रहें। इसी मंगलकामना के साथ आपको सफल, सार्थक एवं आनंदमय अध्ययन के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ!

hindi@baou.edu.in इस ईमेल आईडी पर आप अपने अध्ययन संबंधी प्रश्नों का समाधान पा सकते हैं।

इकाई 1 भाषा की परिभाषा, स्वरूप एवं अभिलक्षण

रूपरेखा

- 1.1 उद्देश्य
- 1.2 प्रस्तावना
- 1.3 भाषा का अर्थ एवं परिभाषा
 - 1.3.1 भाषा का अर्थ
 - 1.3.2 भाषा की परिभाषा
 - 1.3.3 भाषा और वाक् में अंतर
- 1.4 भाषा के रूप
- 1.5 भाषा के अभिलक्षण
- 1.6 सारबिंदु
- 1.7 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली
- 1.8 उपयोगी पाठ्यसामग्री

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को भाषा के सैद्धांतिक और व्यावहारिक स्वरूप से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थियों को अधोलिखित उद्देश्य प्राप्त होंगे :-

- विद्यार्थी विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई भाषा की परिभाषा को समझ सकेंगे।
- विद्यार्थी भाषा की प्रकृति और उसके मूल स्वरूप को आत्मसात कर सकेंगे।
- विद्यार्थी भाषा के विशिष्ट अभिलक्षणों को पहचानने में समर्थ होंगे।

1.2 प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए मनुष्य को अपने विचारों, भावनाओं, अनुभूतियों तथा आवश्यकताओं को दूसरों तक पहुँचाने की निरंतर आवश्यकता पड़ती है। विचार-विनिमय की इसी आवश्यकता ने भाषा को जन्म दिया है। भाषा के बिना सामाजिक जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। मनुष्य अपने दैनिक जीवन में बोलने, सुनने, पढ़ने और लिखने के लिए भाषा का प्रयोग करता है। कभी वह शब्दों द्वारा अपने भाव प्रकट करता है, तो कभी संकेतों और भाव-भंगिमाओं से अपने आशय को स्पष्ट करता है। किंतु इन सभी रूपों में भाषा का मूल उद्देश्य विचारों का संप्रेषण ही है। भाषा मनुष्य को न केवल एक-दूसरे से जोड़ती है, बल्कि उसे अपनी संस्कृति, परंपरा और ज्ञान से भी संबद्ध कराती है। इस प्रकार मानव जीवन में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रस्तुत प्रथम इकाई में भाषा और भाषा-विज्ञान की मूलभूत अवधारणाओं पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इसमें भाषा का अर्थ, परिभाषा, स्वरूप एवं उसकी प्रमुख विशेषताओं का विवेचन किया गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि भाषा केवल शब्दों का समूह नहीं है, बल्कि यह एक सुव्यवस्थित, नियमबद्ध और प्रतीकात्मक प्रणाली है। भाषा के माध्यम से मनुष्य अपने विचारों को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करता है और सामाजिक सहयोग को संभव बनाता है। इस इकाई में भाषा की विभिन्न विशेषताओं जैसे यादृच्छिकता, सृजनशीलता, सामाजिकता, उत्पादकता, द्विस्तरीयता, परिवर्तनशीलता आदि का विस्तार से वर्णन

किया गया है। प्रस्तुत प्रथम इकाई की भूमिका विद्यार्थियों को भाषा-विज्ञान के अध्ययन के लिए मानसिक रूप से तैयार करती है। यह इकाई भाषा के प्रति वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण विकसित करती है तथा आगे आने वाली इकाइयों को समझने की आधारशिला प्रदान करती है। सार रूप में कहा जाए तो यह इकाई भाषा-विज्ञान के संपूर्ण अध्ययन की दिशा और दृष्टि निर्धारित करती है।

1.3 भाषा का अर्थ एवं परिभाषा

भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने विचारों, भावों, अनुभवों और इच्छाओं को दूसरों तक व्यक्त करता है तथा दूसरों के विचारों को समझता है। दैनिक जीवन में जब हम बोलते, लिखते, पढ़ते या सुनते हैं, तो इन सभी क्रियाओं के मूल में भाषा ही कार्य करती है।

1.3.1 भाषा का अर्थ

भाषा केवल शब्दों का समूह नहीं है, बल्कि एक व्यवस्थित और अर्थपूर्ण माध्यम है जिसके द्वारा सामाजिक जीवन संभव हो पाता है। भाषा केवल ध्वनियों का उच्चारण मात्र नहीं है। भाषा उन सार्थक और परंपरागत ध्वनि-प्रतीकों की व्यवस्था है जिन्हें समाज के लोग आपसी सहमति से स्वीकार करते हैं और जिनके माध्यम से वे अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। अर्थात् भाषा का अस्तित्व व्यक्ति से अधिक समाज में निहित होता है। इस अर्थ में भाषा सामाजिक वस्तु है। सामान्य अर्थ में भाषा को बोलचाल का माध्यम समझा जाता है, किंतु भाषावैज्ञानिक दृष्टि से भाषा का क्षेत्र इससे कहीं अधिक व्यापक है। भाषा के अंतर्गत केवल मौखिक रूप ही नहीं, बल्कि लिखित रूप भी आता है। मौखिक रूप से व्यक्त किए गए विचार और लिखकर सुरक्षित किए गए विचार - दोनों ही भाषा के रूप हैं। इस प्रकार भाषा मानव सभ्यता के विकास में केंद्रीय भूमिका निभाती है। भाषा का सामान्य अर्थ समझते समय यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि भाषा स्वाभाविक नहीं, बल्कि अर्जित होती है। मनुष्य जन्म से किसी भाषा को लेकर नहीं आता, बल्कि वह जिस समाज में रहता है, वहाँ की भाषा को सुन-सुनकर सीखता है। इससे स्पष्ट होता है कि भाषा सामाजिक संपर्क और अनुकरण की प्रक्रिया का परिणाम है। भाषा एक व्यवस्थित प्रणाली है। इसमें ध्वनियों, शब्दों, रूपों और वाक्यों का एक निश्चित क्रम और नियम होता है। यदि यह व्यवस्था न हो तो अभिव्यक्ति अव्यवस्थित और अस्पष्ट हो जाएगी। अतः भाषा नियमबद्ध होते हुए भी सृजनात्मक होती है क्योंकि सीमित साधनों से अनंत वाक्यों की रचना संभव होती है।

सामान्य अर्थ में भाषा मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने वाला सेतु है। इसके बिना न तो भावनाओं की अभिव्यक्ति संभव है और न ही ज्ञान का संप्रेषण। भाषा के माध्यम से ही मनुष्य अपने अनुभव साझा करता है, परंपराओं को आगे बढ़ाता है और संस्कृति को जीवित रखता है। अतः कहा जा सकता है कि भाषा वह सामाजिक, व्यवस्थित और सार्थक माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य अपने आंतरिक भाव-जगत और बाह्य सामाजिक जगत के बीच संबंध स्थापित करता है।

1.3.2 भाषा की परिभाषा

‘भाषा’ शब्द संस्कृत की ‘भाष्’ धातु से व्युत्पन्न है तथा इसका प्रयोग ‘बोलने के लिए’ किया जाता है। भाषा एक प्रकार का संकेत है। यह संकेत अपनी मूल प्रकृति में ध्वन्यात्मक एवं यादृच्छिक होता है। भाषा की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए भाषा को विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से परिभाषित किया है। महर्षि पतंजलि ने पाणिनी रचित ‘अष्टाध्यायी’ पर लिखे ‘महाभाष्य’ में भाषा को परिभाषित करते हुए कहा है, “व्यक्ता

वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः।” अर्थात् वर्णों द्वारा जो सार्थक वाणी व्यक्त होती है, वही भाषा है।

पण्डित कामताप्रसादगुरु के अनुसार, “भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली-भाँति प्रकट कर सकता है तथा दूसरों के विचार आप स्पष्टतया समझा सकता है।”

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के शब्दों में, “विभिन्न अर्थों में सांकेतिक शब्द-समूह ही भाषा है, जिसके द्वारा हम अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते हैं।”

डॉ. बाबू राम सक्सेना के मतानुसार, “जिन ध्वनि-चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, उसे भाषा कहते हैं।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने भाषा को परिभाषित करते हुए लिखा है, “भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित मूलतः प्रायः यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा किसी भाषा-समाज के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।”

पाश्चात्य विचारक मैक्समूलर के अनुसार, “भाषा और कुछ नहीं है, केवल मानव की चतुर बुद्धि द्वारा आविष्कृत ऐसा उपाय है जिसकी मदद से हम अपने विचार सरलता और तत्परता से दूसरों पर प्रकट कर सकते हैं और चाहते हैं कि इसकी व्याख्या प्रकृति की उपज के रूप में नहीं, बल्कि मनुष्यकृत पदार्थ के रूप में करना उचित है।”

ब्लॉक और ट्रेगर के शब्दों में, “A language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a social group co-operates.” अर्थात् “भाषा, मानव मुखोच्चरित ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके माध्यम से एक समुदाय के सदस्य परस्पर विचार-विनिमय करते हैं।

हेनरी स्वीट (Henry Sweet) के अनुसार, “Language may be defined as expression of thoughts by means of speech sound.” अर्थात् जिन व्यक्त ध्वनियों द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति होती है, उन्हें भाषा कहते हैं।

नोम चॉम्स्की के अनुसार, “भाषा एक मानसिक क्षमता है जिसके आधार पर मनुष्य सीमित साधनों से अनंत वाक्यों की रचना कर सकता है।”

फर्डिनेंड डी सॉस्यूर भाषा को संकेतों की एक सामाजिक व्यवस्था मानते हैं जिसमें संकेतक और संकेतित का संबंध स्थापित होता है। उनके अनुसार भाषा समाज की सामूहिक संपत्ति है, न कि व्यक्तिगत। उपर्युक्त विभिन्न परिभाषाओं में भाषा के सामाजिक स्वरूप, ध्वनि-आधारित प्रकृति, मानसिक पक्ष और भाषा की सृजनात्मकता पर बल दिया गया है।

इन सभी परिभाषाओं के आलोक में कहा जा सकता है कि भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की एक व्यवस्था है जिसके माध्यम से समाज के व्यक्ति आपस में सम्पर्क स्थापित करते हैं और अपने भावों एवं विचारों को सम्प्रेषित करते हैं। इस प्रकार भाषा एक सामाजिक, व्यवस्थित, अर्थपूर्ण और सृजनात्मक ध्वनि-प्रणाली है जो मानव को अन्य प्राणियों से भिन्न और विशिष्ट बनाती है।

1.3.3 भाषा और वाक् में अंतर

भाषा और वाक् दोनों ही भावाव्यक्ति का आधार हैं। भाषाविज्ञान की दृष्टि से भाषा और वाक् या दोनों एक-दूसरे से संबंधित होते हुए भी भिन्न हैं। वाक् या वाणी व्यक्ति के वाक् व्यवहार तक सीमित है लेकिन भाषा सामाजिक स्तर से संबंधित होती है। पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिक सॉस्यूर ने भाषा के पहले स्तर को व्यक्तिगत कहा है, जो व्यक्ति के वाक् व्यवहार

तक सीमित है। वे इसे speech कहते हैं। सॉस्यूर ने भाषा के दूसरे स्तर को सामाजिक कहा है, जिसे वे tongue कहते हैं। भाषा एक अमूर्त, सामाजिक और नियमबद्ध व्यवस्था है जो किसी समाज के सामूहिक मानस में विद्यमान रहती है। इसके विपरीत वाणी भाषा का मूर्त, व्यक्तिगत और व्यवहारिक रूप है। भाषा में वे सभी नियम, संरचनाएँ और संभावनाएँ निहित होती हैं जिनके आधार पर कोई व्यक्ति बोलता या लिखता है, जबकि वाणी उन नियमों का वास्तविक प्रयोग है। भाषा अपेक्षाकृत स्थिर होती है पर वाणी व्यक्ति, समय और परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है।

1.4 भाषा के रूप

मुख्य रूप से भाषा के दो रूप होते हैं। मौखिक भाषा और लिखित भाषा

मौखिक भाषा - मौखिक भाषा, भाषा का प्राचीनतम रूप है। जब हम मुख से बोलकर अपने विचारों को प्रकट करते हैं और सामने वाला व्यक्ति सुनकर समझता है, तब यह भाषा का मौखिक रूप कहलाता है। जैसे दो या दो से अधिक लोगों का परस्पर बातचीत करना, कहानी सुनाना, व्याख्यान देना, दूरभाष पर वार्तालाप करना आदि।

लिखित भाषा - यह भाषा का स्थायी रूप कहलाता है। जब हम लिखकर अपने विचार प्रकट करते हैं और दूसरा व्यक्ति पढ़कर उसे समझता है, तब यह भाषा का लिखित रूप कहलाता है। जैसे पत्र लिखना, समाचार पत्र या पुस्तक पढ़ना आदि।

1.5 भाषा के अभिलक्षण

भाषा के अभिलक्षण का आशय भाषा की उन सामान्य विशेषताओं से है जो उसे अन्य सभी प्राणियों की भाषा से अलग करती है। संसार की समस्त भाषाओं में पाए जाने वाले मुख्य अभिलक्षण निम्न प्रकार हैं:

1.5.1 भाषा अर्जित सम्पत्ति है

भाषा जन्मजात प्राप्त नहीं होती बल्कि भाषा को सीखना पड़ता है। मनुष्य जब शिशु रूप में जन्म लेता है, किसी भाषा को लेकर नहीं आता। वह जिस समाज में रहता है वहाँ की भाषा को सुन-सुनकर अनुकरण के माध्यम से सीखता है। इस प्रकार भाषा अर्जित सम्पत्ति होती है। मनुष्य परम्परा, परिवेश और शिक्षा के द्वारा भाषा सीखता है। भाषा का अर्जन समाजीकरण की प्रक्रिया और व्यवस्थित अध्ययन द्वारा होता है। समाजीकरण का संबंध परिवेश से है। बच्चा जिस भाषिक परिवेश में रहता है उसकी भाषा वह सहज स्वाभाविक रूप से सीख जाता है। इसी प्रकार व्यवस्थित शैक्षणिक अध्ययन से भी मनुष्य किसी भाषा को सीख सकता है।

1.5.2 भाषा सामाजिक वस्तु है

कोई भी व्यक्ति अकेले भाषा का निर्माण नहीं कर सकता। समाज ही भाषा को स्वीकार करता है, उसे मान्यता देता है और पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाता है। भाषा का जन्म, विकास और प्रयोग समाज में होने के कारण भाषा सामाजिक वस्तु है। यही कारण है कि भाषा को समाज की सामूहिक सम्पत्ति माना जाता है। भाषा के सामाजिक स्वरूप के बिना विचारों का संप्रेषण संभव नहीं है। सांस्कृतिक परंपराओं के संरक्षण के लिए भी भाषा आवश्यक है।

1.5.3 भाषा परम्परागत वस्तु है

भाषा का परम्परागत रूप दीर्घकाल में विकसित होता है। प्रत्येक समाज में भाषा का प्रचार-प्रसार दीर्घ परम्परा से चला आ रहा है। समाज विशेष की प्रत्येक पीढ़ी में यह परम्परा आगे बढ़ती रहती है। मनुष्य को भाषा परम्परा से प्राप्त होती है और वह उसे भावी पीढ़ी को सौंपता है।

1.5.4 भाषा ध्वनि - प्रतीकों की व्यवस्था है

भाषा अर्थ प्रधान होती है। भाषा का मूल उद्देश्य अर्थ का संप्रेषण है। केवल ध्वनियों का उच्चारण भाषा नहीं कहलाता, जब तक कि वे ध्वनियाँ किसी अर्थ से जुड़ी न हों। अर्थ के अभाव में भाषा केवल निरर्थक ध्वनियों का समूह बनकर रह जाती है। इसलिए भाषा को अर्थपूर्ण प्रतीकों की व्यवस्था कहा जाता है।

1.5.5 भाषा एक क्रमबद्ध व्यवस्था है

भाषा में ध्वनियों, शब्दों, रूपों और वाक्यों का एक निश्चित क्रम और नियम होता है। इन नियमों के अनुसार ही भाषा का प्रयोग किया जाता है। यदि भाषा में व्यवस्था न हो तो अभिव्यक्ति अव्यवस्थित और अस्पष्ट हो जाएगी। इस प्रकार भाषा की संरचना नियमबद्ध होने के कारण ही संप्रेषण प्रभावी बन पाता है।

1.5.6 भाषा यादृच्छिक होती है

यादृच्छिक का आशय है माना हुआ भाषा में शब्द और अर्थ का संबंध समाज द्वारा निर्धारित एवं परिभाषित होता है। किसी भी शब्द और अर्थ में कोई सहज स्वाभाविक संबंध नहीं होता। वह समाज द्वारा मान लिया जाता है। इसलिए विभिन्न भाषाओं में एक वस्तु के लिए भिन्न-भिन्न शब्द होते हैं। उदाहरण के लिए 'जल', 'पानी' और 'वॉटर' तीनों शब्द एक ही वस्तु की ओर संकेत करते हैं, किंतु उनके रूप अलग-अलग हैं। यह भिन्नता इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि भाषा सामाजिक सहमति पर आधारित होती है।

1.5.7 भाषा परिवर्तनशील होती है

भाषा परिवर्तनशील होती है। भाषा कभी स्थिर नहीं रहती अपितु वह शब्द और अर्थ की संरचना के आधार पर निरन्तर बदलती रहती है। भाषा में पुराने रूप खत्म होते रहते हैं और नये रूप आकार ग्रहण करते रहते हैं। इस प्रकार समय, स्थान और समाज के अनुसार भाषा में परिवर्तन होते रहते हैं। शब्दों के अर्थ बदलते हैं, उच्चारण में अंतर आता है और नए शब्द जुड़ते रहते हैं। भाषा का यह परिवर्तनशील स्वरूप ही उसे जीवित और प्रासंगिक बनाए रखता है।

1.5.8 भाषा सृजनात्मक होती है

भाषा सृजनात्मक होती है। मनुष्य सीमित ध्वनियों, शब्दों और नियमों की सहायता से अनंत वाक्यों की रचना कर सकता है। यह क्षमता भाषा को जीवंत और गतिशील बनाती है। सृजनात्मकता के कारण ही भाषा समय के साथ नए शब्दों, नए अर्थों और नए प्रयोगों को आत्मसात करती रहती है।

1.5.9 भाषा अनुकरणात्मक होती है

अनुकरण के द्वारा भाषा सीखने का कार्य बहुत ही सहज-स्वाभाविक प्रक्रिया से होता है। भाषा को सीखने के लिए अनुकूल वातावरण और परिवेश की आवश्यकता होती है। बच्चा परिवार और समाज में अनुकरण के माध्यम से ही भाषा सीखता है। अपने आसपास के लोगों के द्वारा ध्वनियों का जैसा प्रयोग करते हुए देखता है, वैसा ही वह स्वयं अनुकरण करने का प्रयास करता है और शब्दों का उच्चारण करना सीख जाता है।

1.5.10 भाषा कठिनता से सरलता की ओर जाती है

मनुष्य स्वभाव से सरलता को पसंद करता है। वह कम से कम प्रयास में अधिक लाभ उठाना चाहता है। मनुष्य की यह प्रवृत्ति भाषा के क्षेत्र में भी सक्रिय रहती है। अपनी बात को सहज और सरल शब्दों द्वारा व्यक्त करने के क्रम में मनुष्य भाषा के सरल रूप की

ओर उन्मुख होता है। स्वर्णकार से सुनार, कर्म से काम, अभ्यंतर से भीतर आदि उदाहरण स्पष्ट करते हैं कि भाषा कठिनता से सरलता की ओर जाती है।

1.5.11 भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर बढ़ती है

भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की तरफ बढ़ती है। संयोगावस्था का अर्थ है प्रकृति और प्रत्यय का मिला-जुला रहना। वियोगावस्था का आशय भाषा में प्रकृति और प्रत्यय के अलग रहने से है। जिस भाषा के पदों में विभक्ति आदि का जुड़ा रहना पाया जाता है वह संयोगात्मक भाषा कहलाती है। संस्कृत संयोगात्मक भाषा है, जबकि हिंदी वियोगात्मक भाषा है। जैसे संस्कृत के वाक्य 'रामः गच्छति' में प्रकृति और प्रत्यय का समन्वित रूप है। लेकिन हिंदी में वियोगावस्था के कारण विभक्ति पद से अलग रहती है। जैसे 'रामः गच्छति' को हिंदी में 'राम जाता है' कहा जाएगा। परिवर्तन की अवस्था में भाषा संयोगात्मक से वियोगात्मक हो जाती है।

1.6 सारबिंदु

- प्रथम इकाई में भाषा और भाषा-विज्ञान की आधारभूत अवधारणाओं का समग्र विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भाषा मानव जीवन का अनिवार्य अंग है।
- भाषा के माध्यम से ही मनुष्य अपने विचारों, भावनाओं और अनुभवों को समाज में अभिव्यक्त करता है।
- भाषा सामाजिक संपर्क और सहयोग का प्रमुख साधन है। इस इकाई में भाषा की परिभाषा को विभिन्न विद्वानों के मतों के आधार पर स्पष्ट किया गया है। इन परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि भाषा एक यादृच्छिक, प्रतीकात्मक और ध्वन्यात्मक प्रणाली है जिसके माध्यम से सामाजिक समूह के सदस्य परस्पर विचार-विनिमय करते हैं। भाषा को केवल ध्वनि या शब्दों तक सीमित न मानकर एक संपूर्ण व्यवस्था के रूप में देखा गया है।
- भाषा के रूप और भाषा की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन इस इकाई का महत्वपूर्ण पक्ष है। मानव-भाषा अर्जित, सृजनशील और सामाजिक होती है। यादृच्छिकता, सृजनशीलता आदि विशेषताएँ मानव-भाषा को विशिष्ट बनाती हैं।
- अंतः यह कहा जा सकता है कि भाषा के बिना न तो विचारों का आदान-प्रदान संभव है और न ही सामाजिक जीवन की कल्पना की जा सकती है।
- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहते हुए उसे अपने भावों, विचारों, इच्छाओं तथा अनुभवों को दूसरों तक पहुँचाने की आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता की पूर्ति भाषा के माध्यम से होती है। प्रथम इकाई भाषा-विज्ञान के अध्ययन की आधारशिला है।
- यह इकाई भाषा को समझने का वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करती है और आगे की इकाइयों में भाषा-विज्ञान के विविध पक्षों को समझने में सहायक सिद्ध होती है।

1.7 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

• बोध प्रश्न

(क) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न।

1. भाषा का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

2. भाषा के प्रमुख अभिलक्षणों पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
3. मानव-भाषा और पशु-भाषा में अंतर स्पष्ट कीजिए।

(ख) टिप्पणी/संक्षिप्त प्रश्न।

1. भाषा की यादृच्छिकता पर प्रकाश डालिए।
2. भाषा की सृजनशीलता पर टिप्पणी कीजिए।
3. भाषा की सामाजिकता से आप क्या समझते हैं?
4. भाषा के अर्जन से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।
5. भाषा की परिवर्तनशीलता का क्या अर्थ है?
6. भाषा को प्रतीकात्मक व्यवस्था क्यों कहा जाता है?

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न।

1. 'भाषा' शब्द संस्कृत की 'भाष्' धातु से व्युत्पन्न है तथा इसका अर्थ है।

(क) बोलना

(ख) सुनना

(ग) गाना

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

2. "व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः।" यह किसका कथन है?

(क) भर्तृहरि

(ख) पतंजलि

(ग) कामताप्रसाद

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

3. भाषा के संबंध में निम्नलिखित में से असंगत है-

(क) भाषा अर्जित सम्पत्ति है।

(ख) भाषा सरलता से कठिनता की ओर जाती है।

(ग) भाषा सार्वजनिक सम्पत्ति है।

(घ) भाषा परिवर्तनशील होती है।

4. भाषा की प्रकृति से आशय है-

(क) भाषा का स्वभाव

(ख) भाषा का गुण

(ग) भाषा के आधारभूत लक्षण

(घ) उपर्युक्त सभी

5. निम्नलिखित में कौन भाषा का स्तर नहीं है?

(क) ध्वनि

(ख) रूप

(ग) पद

(घ) वाक्य

1.8 उपयोगी पाठ्यसामग्री

(क) उपयोगी ग्रंथ

1. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, (1997), भाषाविज्ञान सैद्धान्तिक चिन्तन, दिल्ली-51, राधाकृष्ण प्रकाशन, 81-7119-339-0।
2. गुरु, कामताप्रसाद, (2009), हिंदी व्याकरण, दिल्ली-2, प्रकाशन संस्थान, 81-7714-329-8।
3. सक्सेना, बाबूराम, (1995), सामान्य भाषाविज्ञान, प्रयाग, हिंदी साहित्य सम्मेलन।
4. तिवारी, भोलानाथ, (1993), भाषाविज्ञान, नई दिल्ली, किताब महल।
5. शर्मा, डॉ। राजगणि, (2009), आधुनिक भाषा-विज्ञान, गई बिल्ली, बाणी प्रकाशन, 81-7055-483-7।
6. शर्मा, डॉ। हरीश, (1997), भाषाविज्ञान की रूपरेखा, गाजियाबाद, अमित प्रकाशन, 81-85309-15-9।
7. त्रिपाठी, आचार्य रामदेव, (1990), हिंदी भाषाविज्ञान, राजेन्द्र नगर, पटना, बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी

(ख) वेब संदर्भ

1. <http://epgpinflibnet.ac.in>
2. <http://www.hinsamay.com>
3. <http://hindnest.com>
4. <http://www.di.emt.in>
5. <http://www.archive.org>
6. भारतवाणी (हिंदी भाषा संसाधन) <https://bharatvani.com>
7. राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय (NDLI) <https://ndli.jitkgp.ac.in>

इकाई 2 भाषा विज्ञान : स्वरूप और व्याप्ति

रूपरेखा

- 2.1 उद्देश्य
- 2.2 प्रस्तावना
- 2.3 भाषा विज्ञान : अर्थ एवं परिभाषा
- 2.4 भाषा विज्ञान का स्वरूप
- 2.5 भाषा विज्ञान के प्रमुख अंग
- 2.6 भाषा विज्ञान की व्याप्ति (क्षेत्र)
- 2.7 भाषा विज्ञान की अन्य विषयों से संबद्धता
- 2.8 सारबिंदु
- 2.9 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली
- 2.10 उपयोगी पाठ्यसामग्री

2.1 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थियों को अधोलिखित उद्देश्य प्राप्त होंगे :-
- विद्यार्थी भाषा विज्ञान के अर्थ और उसकी वैज्ञानिक प्रकृति को समझ सकेंगे।
 - विद्यार्थी को भाषा विज्ञान के विभिन्न अंगों (ध्वनि, पद, वाक्य, अर्थ) का परिचय प्राप्त होगा।
 - विद्यार्थी भाषा विज्ञान के कार्यक्षेत्र (व्याप्ति) से परिचित होंगे।
 - विद्यार्थी अन्य ज्ञान-विज्ञान की शाखाओं के साथ भाषा विज्ञान के अंतर्संबंधों को पहचान सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

भाषा मानव जीवन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है। इसके माध्यम से मनुष्य न केवल अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त करता है, बल्कि ज्ञान, संस्कृति, परंपरा और सामाजिक मूल्यों का आदान-प्रदान भी करता है। भाषा के बिना मानव समाज की कल्पना करना असंभव है। भाषा ही वह माध्यम है जिसने मानव को सामाजिक प्राणी बनाया और सभ्यता के विकास को गति प्रदान की। इसी भाषा के गहन, व्यवस्थित और वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता से भाषा विज्ञान का विकास हुआ। इस इकाई में भाषा विज्ञान के मूलभूत पक्षों यथा- भाषा विज्ञान का अर्थ, स्वरूप, प्रमुख अंग, व्याप्ति तथा अन्य विषयों से इसकी संबद्धता जैसे महत्वपूर्ण बिंदुओं का विस्तार से विवेचन किया गया है। इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी यह समझ सकेंगे कि भाषा विज्ञान केवल व्याकरण का अध्ययन नहीं है, बल्कि यह भाषा को एक जीवंत, परिवर्तनशील और संरचनात्मक व्यवस्था के रूप में देखता है।

परंपरागत दृष्टिकोण में भाषा का अध्ययन प्रायः शुद्धता, अशुद्धता, नियम और अपवाद तक सीमित रहा है। इसके विपरीत भाषा विज्ञान भाषा के वास्तविक प्रयोग पर आधारित होता है। यह भाषा को उसी रूप में समझने का प्रयास करता है जैसा समाज में प्रयुक्त होती है। इस इकाई में यह स्पष्ट किया गया है कि भाषा विज्ञान आदेशात्मक नहीं बल्कि वर्णनात्मक है। यह किसी भाषा या बोली को श्रेष्ठ या हीन नहीं ठहराता, बल्कि सभी भाषाओं को समान

वैज्ञानिक दृष्टि से देखता है। इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों में भाषा के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना है। भाषा विज्ञान के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भाषा केवल शब्दों का समूह नहीं है, बल्कि ध्वनि, रूप, वाक्य और अर्थ की एक सुव्यवस्थित प्रणाली है। साथ ही यह इकाई यह भी बताती है कि भाषा समय, समाज और परिस्थिति के अनुसार निरंतर बदलती रहती है।

2.3 भाषा विज्ञान : अर्थ एवं परिभाषा

भाषा मानव जीवन का एक अनिवार्य और मूलभूत तत्त्व है। मनुष्य अपने विचारों, भावनाओं, अनुभवों और ज्ञान को व्यक्त करने के लिए भाषा का प्रयोग करता है। भाषा के इसी महत्व के कारण उसके वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता महसूस हुई जिससे भाषा विज्ञान का उद्भव हुआ। भाषा विज्ञान वह अनुशासन है जिसमें भाषा का अध्ययन भावनात्मक या साहित्यिक दृष्टि से नहीं, बल्कि तत्त्वसंगत, वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक विधि से किया जाता है। भाषा विज्ञान भाषा की संरचना, विकास, प्रयोग और कार्य-प्रणाली को समझने का प्रयास करता है। भाषा विज्ञान का अर्थ समझने के लिए सबसे पहले ‘भाषा’ और ‘विज्ञान’ शब्दों को अलग-अलग देखना आवश्यक है। ‘भाषा’ का अर्थ है- वह माध्यम जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचारों का संप्रेषण करता है। ‘विज्ञान’ का अर्थ है- किसी विषय का व्यवस्थित, नियमबद्ध और तत्त्वपूर्ण अध्ययन। इस प्रकार भाषा विज्ञान का शाब्दिक अर्थ हुआ- भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन। इसमें भाषा को एक व्यवस्था के रूप में देखा जाता है जिसके अपने नियम, संरचना और स्तर होते हैं। भाषा विज्ञान का अध्ययन इस धारणा पर आधारित है कि भाषा कोई अव्यवस्थित या मनमाना साधन नहीं है, बल्कि यह निश्चित नियमों से संचालित होती है। इन नियमों की खोज और व्याख्या करना ही भाषा विज्ञान का मुख्य उद्देश्य है। भाषा विज्ञान यह नहीं बताता है कि भाषा कैसी होनी चाहिए, बल्कि यह बताता है कि भाषा वास्तव में कैसी है और कैसे कार्य करती है? इसी कारण भाषा विज्ञान को वर्णनात्मक अनुशासन माना जाता है।

भाषा विज्ञान की परिभाषाएँ विभिन्न भाषाविदों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से दी हैं, जो इसके स्वरूप को स्पष्ट करती हैं। कुछ प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

ब्लूमफील्ड के अनुसार, “भाषा विज्ञान भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन है।” यह परिभाषा संक्षिप्त होते हुए भी भाषा विज्ञान के मूल स्वरूप को स्पष्ट करती है। इसमें भाषा विज्ञान को पूर्णतः वैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर बल दिया गया है।

रॉबिन्स के अनुसार, “भाषा विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा के स्वरूप, संरचना और कार्य का वस्तुनिष्ठ अध्ययन किया जाता है।” इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि भाषा विज्ञान केवल भाषा की बनावट ही नहीं, बल्कि उसके कार्य और प्रयोग का भी अध्ययन करता है।

फर्डिनेंड डी. सास्यूर के शब्दों में, “भाषा विज्ञान का विषय भाषा को एक संरचित व्यवस्था के रूप में समझना है।” सास्यूर की यह परिभाषा भाषा विज्ञान के संरचनात्मक पक्ष को उजागर करती है और भाषा को एक संगठित प्रणाली के रूप में प्रस्तुत करती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि भाषा विज्ञान भाषा के सभी पहलुओं - ध्वनि, शब्द, वाक्य, अर्थ और प्रयोग का वैज्ञानिक विश्लेषण करता है। भाषा विज्ञान का अध्ययन किसी एक भाषा तक सीमित नहीं होता है, बल्कि यह सभी भाषाओं के सामान्य सिद्धांतों की खोज करता है। इसीलिए भाषा विज्ञान को सार्वभौमिक अध्ययन क्षेत्र माना जाता है।

भाषा विज्ञान का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह मौखिक भाषा को प्राथमिकता देता है। परंपरागत व्याकरण में लिखित भाषा को अधिक महत्व दिया जाता था, जबकि भाषा

विज्ञान मानता है कि भाषा का मूल रूप बोली जाने वाली भाषा है। लिखित भाषा बाद में विकसित हुई। अतः भाषा विज्ञान वास्तविक भाषा-प्रयोग के आधार पर निष्कर्ष निकालता है। भाषा विज्ञान भाषा को परिवर्तनशील मानता है। यह स्वीकार करता है कि भाषा समय, स्थान और समाज के अनुसार बदलती रहती है। शब्दों के अर्थ बदलते हैं, उच्चारण में परिवर्तन आता है और नए शब्द बनते हैं। भाषा विज्ञान इन परिवर्तनों को स्वाभाविक मानकर उनका अध्ययन करता है, न कि उन्हें त्रुटि मानता है। भाषा विज्ञान का अर्थ केवल भाषा की व्याख्या तक सीमित नहीं है, बल्कि यह भाषा के माध्यम से मानव समाज और संस्कृति को समझने का भी साधन है। भाषा समाज का प्रतिबिम्ब होती है, इसलिए भाषा विज्ञान सामाजिक, मानसिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं को समझने में सहायक होता है। इसी कारण आधुनिक भाषा विज्ञान में समाजभाषाविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान और अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान जैसी शाखाएँ विकसित हुई हैं।

2.4 भाषा विज्ञान का स्वरूप

भाषा विज्ञान भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन का अनुशासन है। इसका उद्देश्य भाषा को भावनात्मक या केवल साहित्यिक दृष्टि से नहीं, बल्कि वस्तुनिष्ठ, तर्कसंगत और नियमबद्ध ढंग से समझना है। भाषा विज्ञान भाषा को एक जीवंत व्यवस्था के रूप में देखता है, जिसमें ध्वनि, रूप, वाक्य, अर्थ और प्रयोग सभी स्तर आपस में जुड़े हुए हैं। भाषा विज्ञान का स्वरूप इन्हीं विशेषताओं के कारण विशिष्ट और व्यापक माना जाता है। यह स्वरूप इसे पारंपरिक व्याकरण और साहित्यिक अध्ययन से अलग करता है। भाषा विज्ञान का पहला स्वरूप यह है कि यह एक वैज्ञानिक अनुशासन है। विज्ञान की तरह इसमें भी अवलोकन, वर्गीकरण, विश्लेषण और निष्कर्ष की प्रक्रिया अपनाई जाती है। भाषा विज्ञान में किसी भी नियम को मनमाने ढंग से नहीं बनाया जाता, बल्कि वास्तविक भाषा-प्रयोग के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं। भाषा में जो कुछ बोला और सुना जाता है, वही भाषा विज्ञान का अध्ययन-विषय होता है। इस प्रकार भाषा विज्ञान का स्वरूप आदेशात्मक न होकर वर्णनात्मक है।

भाषा विज्ञान का दूसरा महत्वपूर्ण स्वरूप इसका वस्तुनिष्ठ होना है। इसमें भाषा का अध्ययन किसी भाषा की श्रेष्ठता या हीनता के आधार पर नहीं किया जाता। सभी भाषाएँ और बोलियाँ भाषा विज्ञान की दृष्टि से समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। चाहे वह मानक भाषा हो या लोकभाषा, शिक्षित वर्ग की भाषा हो या अशिक्षित वर्ग की। भाषा विज्ञान सभी का समान रूप से अध्ययन करता है। इस निष्पक्ष दृष्टिकोण के कारण भाषा विज्ञान भाषा की वास्तविक प्रकृति को समझने में सक्षम होता है। भाषा विज्ञान का तीसरा स्वरूप इसका समकालिक और ऐतिहासिक दोनों दृष्टियों से अध्ययन करना है। समकालिक भाषा विज्ञान किसी विशेष समय में प्रचलित भाषा-रूप का अध्ययन करता है, जबकि ऐतिहासिक भाषा विज्ञान भाषा के विकास और परिवर्तन की प्रक्रिया को समझता है। भाषा विज्ञान यह मानता है कि भाषा स्थिर नहीं होती, बल्कि समय के साथ निरंतर बदलती रहती है। इस परिवर्तनशीलता को समझना भाषा विज्ञान के स्वरूप का एक अनिवार्य अंग है। भाषा विज्ञान का चौथा स्वरूप इसका संरचनात्मक दृष्टिकोण है। भाषा विज्ञान भाषा को एक संरचना के रूप में देखता है, जिसमें प्रत्येक तत्व का अपना स्थान और कार्य होता है। ध्वनियाँ शब्दों का निर्माण करती हैं, शब्द वाक्यों में जुड़ते हैं और वाक्य अर्थपूर्ण संप्रेषण का माध्यम बनते हैं। इस संरचनात्मक दृष्टि के अंतर्गत भाषा के विभिन्न स्तरों जैसे ध्वनि, रूप, वाक्य और अर्थ आदि का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। यह दृष्टिकोण भाषा को एक संगठित प्रणाली के रूप में समझने में सहायता करता है।

भाषा विज्ञान का पाँचवाँ स्वरूप इसका कार्यात्मक होना है। भाषा विज्ञान केवल भाषा की संरचना का ही अध्ययन नहीं करता, बल्कि यह भी देखता है कि भाषा किस उद्देश्य से और कैसे प्रयुक्त होती है। भाषा का मुख्य कार्य संप्रेषण है, परंतु इसके अतिरिक्त भाषा

पहचान, संस्कृति, भावना और विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम भी है। भाषा विज्ञान इस कार्यात्मक पक्ष को समझने का प्रयास करता है जिससे भाषा के सामाजिक और व्यावहारिक स्वरूप को स्पष्ट किया जा सके। भाषा विज्ञान का एक अन्य महत्वपूर्ण स्वरूप इसका अंतर्विषयक स्वभाव है। भाषा विज्ञान मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, दर्शन, शिक्षा और कंप्यूटर विज्ञान जैसे अनेक विषयों से जुड़ा हुआ है। भाषा और मस्तिष्क के संबंधों का अध्ययन मनोभाषाविज्ञान करता है, भाषा और समाज के संबंधों का अध्ययन समाजभाषाविज्ञान में होता है और भाषा एवं कंप्यूटर के संबंधों का अध्ययन संगणकीय भाषा विज्ञान में किया जाता है। यह अंतर्विषयक स्वरूप भाषा विज्ञान को आधुनिक और उपयोगी बनाता है। भाषा विज्ञान का स्वरूप सार्वभौमिक भी है। यह किसी एक भाषा या देश तक सीमित नहीं होता। भाषा विज्ञान के सिद्धांत विश्व की सभी भाषाओं पर लागू किए जा सकते हैं। विभिन्न भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से भाषा के सार्वभौमिक नियमों की खोज की जाती है। इसी कारण भाषा विज्ञान भाषा के सामान्य सिद्धांतों को स्थापित करने का प्रयास करता है। भाषा विज्ञान का एक और महत्वपूर्ण स्वरूप इसका व्यावहारिक और अनुप्रयुक्त पक्ष है। आधुनिक युग में भाषा विज्ञान का उपयोग भाषा शिक्षण, अनुवाद, शब्दकोश निर्माण, वर्तनी-मानकीकरण, मशीन अनुवाद और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसे क्षेत्रों में हो रहा है। इससे स्पष्ट होता है कि भाषा विज्ञान केवल सैद्धांतिक विषय नहीं है, बल्कि इसका व्यावहारिक महत्व भी है।

2.5 भाषा विज्ञान के प्रमुख अंग

भाषा विज्ञान भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन का अनुशासन है। भाषा अत्यंत जटिल और बहुस्तरीय व्यवस्था है जिसमें ध्वनि से लेकर अर्थ और प्रयोग तक अनेक घटक सक्रिय रहते हैं। भाषा को समग्र रूप में समझने के लिए भाषा विज्ञान ने अपने अध्ययन को विभिन्न अंगों में विभाजित किया है। ये अंग भाषा के अलग-अलग स्तरों का विश्लेषण करते हैं परंतु आपस में गहराई से जुड़े हुए हैं। भाषा विज्ञान के प्रमुख अंगों के माध्यम से ही भाषा की संरचना, कार्यप्रणाली और संप्रेषण क्षमता को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

भाषा विज्ञान का पहला और सबसे आधारभूत अंग ध्वनिविज्ञान है। ध्वनिविज्ञान भाषा की ध्वनियों का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। भाषा का मूल रूप मौखिक होता है इसलिए ध्वनियाँ भाषा की नींव मानी जाती हैं। ध्वनिविज्ञान के अंतर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि ध्वनियाँ कैसे उत्पन्न होती हैं, उनके उच्चारण में कौन-कौन से अंग सक्रिय होते हैं और ध्वनियों के उच्चारण की विधि क्या होती है। इसमें स्वर, व्यंजन, अर्धस्वर, घोष-अघोष, महाप्राण-अल्पप्राण आदि ध्वनियों का विश्लेषण किया जाता है। ध्वनिविज्ञान किसी एक भाषा तक सीमित नहीं होता, बल्कि विश्व की सभी भाषाओं की ध्वनियों का अध्ययन करता है। इसी कारण इसे भाषा विज्ञान का सार्वभौमिक अंग माना जाता है। ध्वनिविज्ञान से संबंधित एक और महत्वपूर्ण शाखा ध्वनितत्त्वविज्ञान (फोनेलॉजी) है। ध्वनितत्त्वविज्ञान में ध्वनियों को केवल उच्चारण की दृष्टि से नहीं, बल्कि अर्थ-भेदक इकाइयों के रूप में देखा जाता है। सभी ध्वनियाँ भाषा में अर्थ परिवर्तन नहीं करती, इसलिए ध्वनितत्त्वविज्ञान यह स्पष्ट करता है कि कौन-सी ध्वनियाँ अर्थ में भेद उत्पन्न करती हैं और कौन-सी नहीं। उदाहरण के लिए हिंदी में 'कल' और 'खल' में ध्वनि परिवर्तन से अर्थ भी बदल जाता है। इस प्रकार ध्वनितत्त्वविज्ञान भाषा की ध्वनि-व्यवस्था को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भाषा विज्ञान का दूसरा प्रमुख अंग रूपविज्ञान है। रूपविज्ञान शब्दों की आंतरिक संरचना का अध्ययन करता है। इसमें यह देखा जाता है कि शब्द किन घटकों से मिलकर बनते हैं और उनमें किस प्रकार परिवर्तन होता है? शब्द मूल शब्द, उपसर्ग और प्रत्यय से निर्मित होते हैं। हिंदी भाषा में 'अ', 'प्र', जैसे उपसर्ग और 'ता', 'पन', 'ई' जैसे प्रत्ययों के माध्यम

से नए शब्द बनाए जाते हैं। रूपविज्ञान यह स्पष्ट करता है कि भाषा सीमित साधनों के बावजूद असीम शब्द-भंडार कैसे विकसित कर लेती है। रूपविज्ञान के अंतर्गत शब्दों के रूप-परिवर्तन का भी अध्ययन किया जाता है। लिंग, वचन, पुरुष, काल और कारक के अनुसार शब्दों में होने वाले परिवर्तन भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था को स्पष्ट करते हैं। उदाहरण के लिए- 'लड़का' से 'लड़के', 'लड़की', 'लड़कियाँ' जैसे रूप बनते हैं। यह परिवर्तन रूपविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में आते हैं। इस प्रकार रूपविज्ञान भाषा की संरचनात्मक और व्याकरणिक व्यवस्था को समझने का एक अनिवार्य अंग है।

भाषा विज्ञान का तीसरा प्रमुख अंग वाक्यविज्ञान है। वाक्यविज्ञान शब्दों के क्रम, उनके पारस्परिक संबंध और वाक्य निर्माण के नियमों का अध्ययन करता है। शब्द अकेले अर्थपूर्ण नहीं होते, बल्कि जब वे एक निश्चित क्रम में व्यवस्थित होते हैं तभी पूर्ण विचार व्यक्त करते हैं। वाक्यविज्ञान यह स्पष्ट करता है कि भाषा में कर्ता, कर्म, क्रिया आदि का क्रम कैसे निर्धारित होता है और वाक्य के विभिन्न प्रकार सरल, संयुक्त और मिश्र कैसे बनते हैं? वाक्यविज्ञान भाषा की रचनात्मक क्षमता को उजागर करता है। भाषा में सीमित शब्द और नियम होते हुए भी अनगिनत वाक्य बनाए जा सकते हैं। यह भाषा की सृजनशीलता का प्रमाण है। वाक्यविज्ञान के अध्ययन से यह समझ में आता है कि भाषा कैसे नए-नए वाक्य गढ़ने की क्षमता रखती है और संप्रेषण को प्रभावी बनाती है।

भाषा विज्ञान का चौथा प्रमुख अंग अर्थविज्ञान है। अर्थविज्ञान भाषा में अर्थ के अध्ययन से संबंधित है। भाषा का उद्देश्य केवल ध्वनियों या संरचनाओं का निर्माण नहीं, बल्कि अर्थपूर्ण संप्रेषण है। अर्थविज्ञान यह अध्ययन करता है कि शब्दों और वाक्यों के अर्थ कैसे बनते हैं, उनमें परिवर्तन क्यों होता है और संदर्भ का अर्थ पर क्या प्रभाव पड़ता है। एक ही शब्द विभिन्न संदर्भों में अलग-अलग अर्थ दे सकता है, यह तथ्य अर्थविज्ञान के महत्व को दर्शाता है। अर्थविज्ञान के अंतर्गत शब्दार्थ, वाक्यार्थ और भावार्थ तीनों का अध्ययन किया जाता है। शब्दार्थ में शब्द के मूल अर्थ को, वाक्यार्थ में वाक्य से प्रकट अर्थ को और भावार्थ में निहित या संकेतात्मक अर्थ को समझा जाता है। साहित्य, संप्रेषण और अनुवाद के क्षेत्र में अर्थविज्ञान की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

इन चार प्रमुख अंगों के अतिरिक्त आधुनिक भाषा विज्ञान में कुछ सहायक एवं विकसित शाखाएँ भी मानी जाती हैं। इनमें समाजभाषाविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान, प्रायोगिक भाषा विज्ञान और प्राग्मेटिक्स प्रमुख हैं। समाजभाषाविज्ञान भाषा और समाज के संबंधों का अध्ययन करता है। मनोभाषाविज्ञान भाषा और मानव मस्तिष्क के संबंधों को समझता है। प्राग्मेटिक्स भाषा के वास्तविक प्रयोग और संदर्भगत अर्थ का अध्ययन करता है। यद्यपि ये शाखाएँ पारंपरिक चार अंगों से बाद में विकसित हुई हैं फिर भी आधुनिक भाषा अध्ययन में इनका विशेष महत्व है।

2.6 भाषा विज्ञान की व्याप्ति (क्षेत्र)

भाषा विज्ञान की व्याप्ति से तात्पर्य उन सभी क्षेत्रों से है जहाँ तक भाषा विज्ञान का अध्ययन, प्रभाव और उपयोग फैला हुआ है। भाषा विज्ञान केवल भाषा की परिभाषा, व्याकरण या संरचना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह भाषा के प्रत्येक पहलू जैसे ध्वनि, शब्द, वाक्य, अर्थ, समाज, मनुष्य और संस्कृति आदि का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। चूँकि भाषा मानव जीवन का अभिन्न अंग है इसलिए भाषा विज्ञान की व्याप्ति भी अत्यंत व्यापक, बहुआयामी और अंतर्विषयक मानी जाती है। सबसे पहले भाषा विज्ञान की व्याप्ति ध्वनि-अध्ययन तक फैली हुई है। भाषा का मूल आधार ध्वनि है क्योंकि भाषा का प्रारंभिक और स्वाभाविक रूप मौखिक होता है। भाषा विज्ञान के अंतर्गत ध्वनियों के उच्चारण, उनके निर्माण की प्रक्रिया, उच्चारण स्थान और उच्चारण विधि का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। इसमें यह देखा जाता है

कि मानव वाक्-यंत्र किस प्रकार ध्वनियों का निर्माण करता है और विभिन्न भाषाओं में ध्वनियों का स्वरूप कैसे भिन्न होता है? इस स्तर पर भाषा विज्ञान किसी एक भाषा तक सीमित न रहकर विश्व की सभी भाषाओं की ध्वनियों का अध्ययन करता है।

भाषा विज्ञान की व्याप्ति का दूसरा प्रमुख क्षेत्र शब्द और रूप का अध्ययन है। भाषा विज्ञान यह विश्लेषण करता है कि शब्द कैसे बनते हैं, उनके घटक कौन-कौन से होते हैं और उनमें किस प्रकार परिवर्तन होता है? शब्दों के निर्माण में मूल शब्द, उपसर्ग, प्रत्यय तथा रूप-परिवर्तन की प्रक्रिया को समझना इसी क्षेत्र के अंतर्गत आता है। भाषा विज्ञान यह भी स्पष्ट करता है कि सीमित शब्द-सामग्री के माध्यम से भाषा अनगिनत नए शब्द कैसे निर्मित कर लेती है। इस प्रकार शब्द-स्तर पर भाषा विज्ञान की व्याप्ति भाषा की संरचनात्मक व्यवस्था को समझने में सहायक होती है। तीसरा क्षेत्र वाक्य-रचना से संबंधित है। भाषा विज्ञान वाक्य निर्माण के नियमों, शब्द-क्रम और वाक्य के प्रकारों का अध्ययन करता है। शब्द अकेले अर्थ प्रकट नहीं कर पाते, बल्कि जब वे एक निश्चित क्रम में व्यवस्थित होते हैं तभी पूर्ण और स्पष्ट विचार व्यक्त करते हैं। भाषा विज्ञान यह स्पष्ट करता है कि भाषा में सीमित नियमों के आधार पर असंख्य वाक्य कैसे बनाए जा सकते हैं। इस स्तर पर भाषा विज्ञान भाषा की रचनात्मक क्षमता और उसकी तार्किक संरचना को समझने का प्रयास करता है।

भाषा विज्ञान की व्याप्ति अर्थ-अध्ययन तक भी विस्तृत है। भाषा केवल ध्वनि और संरचना का समूह नहीं है, बल्कि अर्थ उसका केंद्रीय तत्त्व है। अर्थविज्ञान के अंतर्गत शब्दों, वाक्यों और कथनों के अर्थ का अध्ययन किया जाता है। भाषा विज्ञान यह भी देखता है कि संदर्भ बदलने पर अर्थ में किस प्रकार परिवर्तन हो जाता है। एक ही शब्द विभिन्न संदर्भों में भिन्न अर्थ दे सकता है, यह तथ्य भाषा विज्ञान के अर्थ-क्षेत्र को अत्यंत महत्वपूर्ण बनाता है। संप्रेषण की सफलता या असफलता बहुत हद तक अर्थ की स्पष्टता पर निर्भर करती है। ऐतिहासिक दृष्टि से भाषा विज्ञान की व्याप्ति भाषाओं के विकास और परिवर्तन तक फैली हुई है। ऐतिहासिक भाषा विज्ञान भाषाओं की उत्पत्ति, उनके विकास क्रम और समय के साथ होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करता है। ध्वनि-परिवर्तन, शब्दार्थ-परिवर्तन और व्याकरणिक परिवर्तन इसके प्रमुख विषय हैं। इसी के अंतर्गत तुलनात्मक भाषा विज्ञान विभिन्न भाषाओं की तुलना करके उनके पारिवारिक संबंधों की खोज करता है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अनेक आधुनिक भाषाएँ किसी एक प्राचीन भाषा से विकसित हुई हैं।

भाषा विज्ञान की व्याप्ति का एक अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र समाजभाषाविज्ञान है। भाषा और समाज के बीच गहरा संबंध होता है। भाषा समाज की संरचना, संस्कृति, वर्ग, जाति, लिंग और क्षेत्र से प्रभावित होती है। समाजभाषाविज्ञान के अंतर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि सामाजिक परिवेश के अनुसार भाषा में किस प्रकार परिवर्तन होता है। विभिन्न सामाजिक वर्गों और क्षेत्रों में भाषा के अलग-अलग रूप देखने को मिलते हैं। इस प्रकार भाषा विज्ञान समाज को समझने का भी एक महत्वपूर्ण माध्यम बन जाता है। भाषा विज्ञान की व्याप्ति मनोभाषाविज्ञान तक भी फैली हुई है। इसमें भाषा और मानव मस्तिष्क के संबंधों का अध्ययन किया जाता है। मनोभाषाविज्ञान यह समझने का प्रयास करता है कि मनुष्य भाषा कैसे सीखता है, भाषा को समझने और बोलने की प्रक्रिया क्या है तथा भाषा-बोध और भाषा-उत्पादन मस्तिष्क में कैसे संचालित होते हैं। बालक द्वारा भाषा-अधिगम की प्रक्रिया भाषा विज्ञान के इस क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण विषय है। आधुनिक युग में भाषा विज्ञान की व्याप्ति अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के माध्यम से और अधिक विस्तृत हो गई है। भाषा शिक्षण, अनुवाद, कोश-निर्माण, वर्तनी सुधार, भाषा-मानकीकरण और संप्रेषण कौशल का विकास आदि ये अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के अंतर्गत आते हैं। आज के तकनीकी युग में कंप्यूटर, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन अनुवाद, वाक्-परिचय और भाषा तकनीक जैसे क्षेत्रों में भी भाषा विज्ञान का व्यापक उपयोग हो रहा है।

2.7 भाषा विज्ञान की अन्य विषयों से संबद्धता

भाषा विज्ञान एक स्वतंत्र अनुशासन होने के साथ-साथ अनेक अन्य विषयों से गहराई से जुड़ा हुआ है। भाषा केवल संप्रेषण का साधन नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन, समाज, संस्कृति, मन और ज्ञान की विभिन्न शाखाओं से संबंधित है। इसी कारण भाषा विज्ञान को एक अंतर्विषयक अध्ययन क्षेत्र माना जाता है। भाषा विज्ञान की अन्य विषयों से संबद्धता को समझे बिना इसके व्यापक स्वरूप और महत्व को पूरी तरह नहीं समझा जा सकता। सबसे पहले भाषा विज्ञान की संबद्धता मनोविज्ञान से स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। मनोविज्ञान मानव मन और उसकी मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है, जबकि भाषा विज्ञान भाषा की संरचना और प्रयोग के अध्ययन का विषय है। जब भाषा और मन के संबंधों का अध्ययन किया जाता है तो यह क्षेत्र मनोभाषाविज्ञान कहलाता है। इसके अंतर्गत यह समझने का प्रयास किया जाता है कि मनुष्य भाषा कैसे सीखता है, भाषा को कैसे समझता है और बोलते समय मस्तिष्क किस प्रकार कार्य करता है? बालक द्वारा भाषा-अधिगम की प्रक्रिया, स्मृति और भाषा का संबंध तथा भाषा-बोध की मानसिक क्रियाएँ आदि ये सभी भाषा विज्ञान और मनोविज्ञान की संबद्धता को स्पष्ट करते हैं।

भाषा विज्ञान का गहरा संबंध समाजशास्त्र से भी है। भाषा समाज में उत्पन्न होती है, समाज में विकसित होती है और समाज में ही प्रयुक्त होती है। भाषा और समाज के संबंधों के अध्ययन को समाजभाषाविज्ञान कहा जाता है। इसके अंतर्गत यह देखा जाता है कि सामाजिक वर्ग, जाति, लिंग, पेशा, शिक्षा और क्षेत्र के अनुसार भाषा में किस प्रकार परिवर्तन होता है। समाजशास्त्र समाज की संरचना का अध्ययन करता है और भाषा विज्ञान यह बताता है कि वह संरचना भाषा में कैसे प्रतिबिंबित होती है। इस प्रकार भाषा समाज का दर्पण बन जाती है। भाषा विज्ञान की संबद्धता इतिहास से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। ऐतिहासिक भाषा विज्ञान भाषाओं के विकास, परिवर्तन और उनकी उत्पत्ति का अध्ययन करता है। इतिहास के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि किसी विशेष काल में समाज की स्थिति क्या थी, और भाषा विज्ञान उस काल की भाषा के माध्यम से सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों को समझने में सहायता करता है। प्राचीन ग्रंथों, अभिलेखों और साहित्य के अध्ययन में भाषा विज्ञान इतिहास को प्रमाणिक आधार प्रदान करता है। भाषा विज्ञान का संबंध दर्शन से भी माना जाता है। दर्शन में भाषा, अर्थ, ज्ञान और सत्य जैसे प्रश्नों पर विचार किया जाता है। भाषा दर्शन में यह प्रश्न प्रमुख होता है कि भाषा और विचार का आपसी संबंध क्या है, शब्द और अर्थ का संबंध कैसे स्थापित होता है तथा भाषा सत्य को किस प्रकार अभिव्यक्त करती है। भर्तृहरि जैसे भारतीय दार्शनिकों ने भाषा को ब्रह्म के रूप में देखा है। इस प्रकार भाषा विज्ञान और दर्शन का संबंध भाषा और चिंतन के स्तर पर स्पष्ट होता है।

भाषा विज्ञान की संबद्धता मानवशास्त्र से भी है। मानवशास्त्र मानव की उत्पत्ति, विकास और संस्कृति का अध्ययन करता है। भाषा मानव संस्कृति का अभिन्न अंग है। मानवशास्त्रीय भाषा विज्ञान विभिन्न जनजातियों, समुदायों और संस्कृतियों की भाषाओं का अध्ययन करता है। इससे यह समझने में सहायता मिलती है कि भाषा और संस्कृति एक-दूसरे को किस प्रकार प्रभावित करती हैं। लोकभाषाएँ, बोलियाँ और मौखिक परंपराएँ इस अध्ययन के प्रमुख विषय हैं। आधुनिक युग में भाषा विज्ञान की संबद्धता शिक्षा से भी अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है। भाषा शिक्षण में भाषा विज्ञान के सिद्धांतों का व्यापक प्रयोग किया जाता है। भाषा कैसे सिखाई जाए?, दूसरी भाषा सीखने में कौन-सी कठिनाइयाँ आती हैं?, पाठ्यक्रम निर्माण और मूल्यांकन कैसे हो? आदि इन सभी में भाषा विज्ञान सहायक होता है। इसी क्षेत्र को अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान कहा जाता है जो शिक्षा के क्षेत्र में भाषा विज्ञान की व्यावहारिक उपयोगिता को दर्शाता है। भाषा विज्ञान

का संबंध कंप्यूटर विज्ञान और सूचना प्रौद्योगिकी से भी तेजी से बढ़ा है। आज के डिजिटल युग में मशीन अनुवाद, वाक्-पहचान, वर्तनी सुधार, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और चैटबॉट जैसी तकनीकों का विकास भाषा विज्ञान के बिना संभव नहीं है। संगणकीय भाषा विज्ञान भाषा और कंप्यूटर के बीच सेतु का कार्य करता है। इसमें भाषा को गणनात्मक रूप में समझने और संसाधित करने का प्रयास किया जाता है। इसके अतिरिक्त भाषा विज्ञान की संबद्धता साहित्य से भी है। यद्यपि भाषा विज्ञान और साहित्य अलग-अलग अनुशासन हैं, फिर भी साहित्य की भाषा का विश्लेषण भाषा विज्ञान के माध्यम से किया जा सकता है। शैली, वाक्य-रचना, शब्द-चयन और अर्थ-निर्माण जैसे पक्षों को समझने में भाषा विज्ञान सहायक होता है।

2.8 सारबिंदु

- इस इकाई में भाषा विज्ञान के विविध पक्षों का क्रमबद्ध और विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। सर्वप्रथम भाषा विज्ञान के अर्थ और परिभाषा को स्पष्ट किया गया जिससे यह समझ में आता है कि भाषा विज्ञान भाषा का वैज्ञानिक, वस्तुनिष्ठ और व्यवस्थित अध्ययन है। इसमें भाषा को केवल भावनात्मक या साहित्यिक माध्यम के रूप में न देखकर एक नियमबद्ध व्यवस्था के रूप में देखा जाता है।
- प्रस्तुत इकाई में भाषा विज्ञान के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए यह बताया गया है कि यह एक वैज्ञानिक, वर्णनात्मक, संरचनात्मक और अंतर्विषयक अनुशासन है। भाषा विज्ञान भाषा के वास्तविक प्रयोग पर आधारित होता है और इसे परिवर्तनशील मानता है। यह भाषा को स्थिर नहीं, बल्कि समय और समाज के साथ विकसित होने वाली प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करता है।
- भाषा विज्ञान के प्रमुख अंगों जैसे ध्वनिविज्ञान, ध्वनितत्त्वविज्ञान, रूपविज्ञान, वाक्यविज्ञान और अर्थविज्ञान आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। इन अंगों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि भाषा के प्रत्येक स्तर का अपना महत्व है और सभी स्तर मिलकर भाषा को पूर्णता प्रदान करते हैं।
- ध्वनि से लेकर अर्थ तक की पूरी यात्रा भाषा विज्ञान के इन्हीं अंगों के माध्यम से समझी जाती है। इस इकाई में भाषा विज्ञान की व्याप्ति को भी रेखांकित किया गया है जिससे यह ज्ञात होता है कि भाषा विज्ञान का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। यह केवल भाषा की संरचना तक सीमित नहीं, बल्कि भाषा के सामाजिक, मानसिक, ऐतिहासिक और व्यावहारिक पक्षों को भी समाहित करता है।
- भाषा शिक्षण, अनुवाद, शब्दकोश निर्माण और आधुनिक तकनीकी क्षेत्रों में भाषा विज्ञान की उपयोगिता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।
- अंत में भाषा विज्ञान की अन्य विषयों से संबद्धता पर प्रकाश डाला गया है जिससे यह सिद्ध होता है कि भाषा विज्ञान मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, इतिहास, दर्शन, मानवशास्त्र, शिक्षा, साहित्य और कंप्यूटर विज्ञान जैसे अनेक विषयों से जुड़ा हुआ है। इस अंतर्विषयक स्वरूप के कारण भाषा विज्ञान आधुनिक ज्ञान-परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है।

2.9 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

- बोध प्रश्न

(क) विस्तृत उत्तर वाले प्रश्न।

1. भाषा विज्ञान का अर्थ एवं परिभाषा स्पष्ट करते हुए उसके वैज्ञानिक स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

2. भाषा विज्ञान के प्रमुख अंगों का विवेचन करते हुए उनके आपसी संबंध को स्पष्ट कीजिए।
3. भाषा विज्ञान की व्याप्ति एवं अन्य विषयों से संबद्धता पर उदाहरण सहित विवेचना कीजिए।

(ख) संक्षिप्त/टिप्पणी प्रश्न

1. भाषा विज्ञान और पारंपरिक व्याकरण में अंतर।
2. भाषा विज्ञान को वर्णनात्मक अध्ययन क्यों कहा जाता है?
3. भाषा परिवर्तन की अवधारणा।
4. भाषा विज्ञान का संरचनात्मक स्वरूप।
5. मौखिक भाषा का महत्त्व।
6. भाषा विज्ञान का अनुप्रयुक्त पक्ष।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. “भाषा विज्ञान भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन है।” भाषा विज्ञान की यह परिभाषा किस विद्वान के द्वारा दी गई है?
 - (क) ब्लूमफील्ड
 - (ख) रॉबिन्स
 - (ग) एफ। डी। सॉस्पूर
 - (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं
2. ‘भाषाविज्ञान की भूमिका’ पुस्तक के लेखक हैं-
 - (क) राजमल बोरा
 - (ख) देवेन्द्रनाथ शर्मा
 - (ग) भोलानाथ तिवारी
 - (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं
3. भाषा के संबंध में निम्नलिखित में से असंगत है-
 - (क) भाषा परिवर्तनशील होती है।
 - (ख) भाषा स्थिर इकाई है।
 - (ग) भाषा समय के साथ विकसित होने वाली प्रक्रिया है।
 - (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं
4. निम्नलिखित में से किस विषय से भाषा विज्ञान का संबंध है?
 - (क) दर्शनशास्त्र
 - (ख) इतिहास
 - (ग) समाजशास्त्र
 - (घ) उपर्युक्त सभी

5. निम्नलिखित में से कौन भाषा विज्ञान का अंग है?

- (क) ध्वनिविज्ञान
- (ख) रूपविज्ञान
- (ग) वाक्यविज्ञान
- (घ) उपर्युक्त सभी

2.10 उपयोगी पाठ्यसामग्री

(क) उपयोगी ग्रंथ

1. कपिल द्विवेदी, भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, (तेरहवाँ संस्करण) 2012
2. देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1966
3. बोरा, राजमल (सं।), भाषाविज्ञान, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2000
4. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, (1997), भाषाविज्ञान सैद्धान्तिक चिन्तन, दिल्ली-51, राधाकृष्ण प्रकाशन, 81-7119-339-0
5. शर्मा, डॉ. राजमणि, (2009), आधुनिक भाषा-विज्ञान, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 81-7055-483-7
6. शर्मा, डॉ. हरीश, (1997), भाषाविज्ञान की रूपरेखा, गाजियाबाद, अमित प्रकाशन, 81-85309-15-9
7. त्रिपाठी, आचार्य रामदेव, (1990), हिंदी भाषाविज्ञान, राजेन्द्र नगर, पटना, बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी

(ग) वेब संदर्भ (Web Resources)

1. <https://epgpinflibnet.ac.in>
2. <http://www.hindsamay.com>
3. <http://hindnest.com>
4. <http://www.di.ent.in>
5. <http://www.archive.org>
6. भारतवाणी (हिंदी भाषा संसाधन) <https://bharatvani.in>
7. राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय (NDLI) <https://ndl.iitkgp.ac.in>

इकाई 3 भाषा की संरचना

रूपरेखा

- 3.1 उद्देश्य
- 3.2 प्रस्तावना
- 3.3 भाषिक संरचना : अर्थ एवं स्वरूप
- 3.4 भाषा के विभिन्न स्तर
 - 3.4.1 ध्वनि स्तर (ध्वनि विज्ञान)
 - 3.4.2 रूप या पद स्तर (रूप विज्ञान या शब्द विज्ञान)
 - 3.4.3 वाक्य स्तर (वाक्य विज्ञान)
 - 3.4.4 प्रोक्ति स्तर (प्रोक्ति विज्ञान)
 - 3.4.5 अर्थ स्तर (अर्थ विज्ञान)
- 3.5 भाषा संरचना की प्रकृति और विशेषताएँ
- 3.6 सारबिंदु
- 3.7 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली
- 3.8 उपयोगी पाठ्यसामग्री

3.1 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थियों को अधोलिखित उद्देश्य प्राप्त होंगे :-
- विद्यार्थी भाषा की संरचना को एक सुव्यवस्थित और प्रणालीगत व्यवस्था के रूप में समझ सकेंगे।
 - विद्यार्थियों को भाषा के विभिन्न स्तरों (ध्वनि, रूप, वाक्य, प्रोक्ति और अर्थ) का परिचय प्राप्त होगा।
 - विद्यार्थी भाषिक संरचना में अर्थ और स्वरूप के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट कर सकेंगे।
 - विद्यार्थी भाषा के सामाजिक, सांस्कृतिक और संप्रेषणात्मक पक्ष को रेखांकित कर सकेंगे।
 - विद्यार्थी भाषा-अध्ययन में संरचनात्मक दृष्टिकोण के महत्व को प्रतिपादित कर सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

भाषा मानव जीवन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है। मनुष्य अपने विचारों, भावनाओं, अनुभवों और ज्ञान को भाषा के माध्यम से व्यक्त करता है। भाषा केवल संप्रेषण का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक विकास का आधार भी है। इसी कारण भाषाविज्ञान में भाषा का अध्ययन केवल उसके बाहरी रूप तक सीमित न रहकर उसकी आंतरिक संरचना और कार्यप्रणाली तक विस्तृत किया गया है। भाषा की इस आंतरिक व्यवस्था को ही भाषिक संरचना कहा जाता है। भाषिक संरचना यह स्पष्ट करती है कि भाषा किन-किन इकाइयों से मिलकर बनी है और वे इकाइयाँ किस प्रकार परस्पर जुड़कर अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति संभव बनाती हैं। भाषा को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसे शब्दों या वाक्यों के बिखरे हुए समूह के रूप में न देखकर एक सुव्यवस्थित प्रणाली के रूप में देखा जाए। प्रत्येक भाषा की अपनी विशिष्ट संरचना होती है जो उसे अन्य भाषाओं से अलग पहचान प्रदान करती है। यह संरचना ध्वनि से लेकर प्रोक्ति तक विभिन्न स्तरों में विकसित होती है। भाषिक संरचना के अध्ययन में अर्थ और स्वरूप दोनों को समान महत्व दिया जाता है। स्वरूप भाषा

की रचना, व्यवस्था और नियमों से संबंधित है, जबकि अर्थ उन नियमों के माध्यम से व्यक्त भाव और विचार को प्रकट करता है। दोनों के सामंजस्य से ही भाषा प्रभावी और संप्रेषणीय बनती है। यदि भाषा में स्वरूप हो पर अर्थ न हो तो वह निरर्थक हो जाती है और यदि अर्थ हो पर सुव्यवस्थित स्वरूप न हो तो संप्रेषण अस्पष्ट हो जाता है।

भाषा की संरचना को समझने के लिए उसे विभिन्न स्तरों में विभाजित किया गया है। इन स्तरों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि भाषा किस प्रकार क्रमबद्ध रूप से विकसित होती है। ध्वनियाँ शब्दों का निर्माण करती हैं, शब्द वाक्य में संगठित होते हैं और वाक्य संदर्भ तथा प्रयोग के माध्यम से व्यापक अर्थ ग्रहण करते हैं। यह क्रम भाषा की वैज्ञानिक और प्रणालीगत प्रकृति को उजागर करता है। भाषिक संरचना का अध्ययन न केवल सैद्धांतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि भाषा शिक्षण, साहित्यिक विश्लेषण और व्यावहारिक संप्रेषण के लिए भी अत्यंत उपयोगी है। इसके माध्यम से भाषा के सही प्रयोग, उसकी शुद्धता और प्रभावशीलता को समझा जा सकता है। अतः भाषा संरचना का अध्ययन भाषा को केवल अभिव्यक्ति का साधन न मानकर एक संगठित और जीवंत प्रणाली के रूप में प्रस्तुत करता है।

3.3 भाषिक संरचना : अर्थ एवं स्वरूप

भाषा की संरचना को समझने के लिए उसके अर्थ और स्वरूप दोनों पक्षों का अध्ययन आवश्यक है। भाषा केवल ध्वनियों, शब्दों या वाक्यों का संयोग नहीं है, बल्कि वह एक सुव्यवस्थित प्रणाली है जिसमें प्रत्येक इकाई का अपना निश्चित स्थान और कार्य होता है। इस संरचना में स्वरूप उस व्यवस्था को दर्शाता है जिसके अंतर्गत भाषिक इकाइयाँ संगठित होती हैं जबकि अर्थ उन इकाइयों के माध्यम से व्यक्त भाव, विचार और संप्रेषण को प्रकट करता है। भाषिक संरचना में अर्थ और स्वरूप का संबंध अत्यंत घनिष्ठ और अविभाज्य है। भाषिक स्वरूप से तात्पर्य भाषा की आंतरिक और बाह्य रचना से है। इसमें ध्वनियों की व्यवस्था, शब्द-रचना, पद-रूप, वाक्य-संरचना तथा उच्चतर स्तरों की भाषिक इकाइयाँ सम्मिलित होती हैं। प्रत्येक भाषा का अपना विशिष्ट स्वरूप होता है जो उसे अन्य भाषाओं से भिन्न बनाता है। यह स्वरूप मनमाना नहीं होता, बल्कि निश्चित नियमों और परंपराओं के अनुसार विकसित होता है। भाषा का यह ढाँचा वक्ता और श्रोता दोनों के लिए संप्रेषण को सुगम बनाता है और भाषिक व्यवहार को व्यवस्थित करता है। अर्थ भाषिक संरचना का दूसरा अनिवार्य पक्ष है। भाषा का अस्तित्व तभी सार्थक माना जाता है जब उसमें अर्थ की अभिव्यक्ति संभव हो। अर्थ केवल शब्दों या वाक्यों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह संदर्भ, परिस्थिति, सामाजिक पृष्ठभूमि तथा वक्ता की इच्छा से भी प्रभावित होता है। एक ही भाषिक स्वरूप विभिन्न संदर्भों में भिन्न अर्थ प्रदान कर सकता है और यही भाषा का अर्थात्मक लचीलापन दर्शाता है। इस कारण भाषा को एक स्थिर इकाई न मानकर एक जीवंत और गतिशील व्यवस्था के रूप में देखा जाता है।

भाषिक संरचना में स्वरूप और अर्थ का संबंध पारस्परिक है। स्वरूप अर्थ को अभिव्यक्त करने का साधन है और अर्थ स्वरूप को प्रासंगिक बनाता है। यदि स्वरूप न हो तो अर्थ व्यक्त नहीं किया जा सकता और यदि अर्थ न हो तो स्वरूप निरर्थक हो जाता है। भाषाविज्ञान में लंबे समय तक यह विवाद रहा है कि भाषा में अर्थ की प्राथमिकता है या स्वरूप की? आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार दोनों को समान महत्व दिया जाता है क्योंकि भाषा का वास्तविक स्वरूप इन्हीं के संतुलन से निर्मित होता है। भाषा की संरचना प्रणालीगत होती है। इसमें ध्वनि, रूप, शब्द, वाक्य और प्रोक्ति जैसे विभिन्न स्तर होते हैं जो एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। इन स्तरों में किसी एक स्तर पर होने वाला परिवर्तन संपूर्ण संरचना को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए शब्द के रूप में परिवर्तन होने पर वाक्य का अर्थ भी परिवर्तित हो सकता है। इसी

प्रकार वाक्य-संरचना में बदलाव से अभिव्यक्ति का आशय बदल सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि भाषिक संरचना एक समन्वित प्रणाली है, न कि स्वतंत्र इकाइयों का संग्रह। भाषिक अर्थ स्थिर नहीं होता। वह सामाजिक प्रयोग, सांस्कृतिक संदर्भ और संप्रेषण की स्थिति के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। यही कारण है कि एक ही भाषा विभिन्न सामाजिक वर्गों, क्षेत्रों और कालखंडों में भिन्न अर्थविवरण प्रस्तुत करती है। भाषिक स्वरूप अपेक्षाकृत अधिक स्थिर होता है किंतु उसमें भी समय के साथ परिवर्तन होता रहता है। भाषा के ऐतिहासिक विकास में स्वरूप और अर्थ दोनों का निरंतर परिष्कार होता है। भाषिक संरचना के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि एक सुव्यवस्थित वैज्ञानिक प्रणाली है। इसमें नियमबद्धता, नियमितता और संगति पाई जाती है। भाषिक स्वरूप इन नियमों को संरक्षित करता है जबकि अर्थ उन्हें संप्रेषण के योग्य बनाता है। इसी संतुलन के कारण भाषा सामाजिक जीवन में प्रभावी भूमिका निभाती है और ज्ञान, संस्कृति तथा विचारों के आदान-प्रदान का प्रमुख साधन बनती है। भाषाविज्ञान में भाषिक संरचना का विश्लेषण करते समय अर्थ और स्वरूप दोनों को समान रूप से महत्व दिया जाता है। इनके माध्यम से यह समझा जा सकता है कि भाषा कैसे बनती है, कैसे कार्य करती है और किस प्रकार मानव समाज में संप्रेषण को संभव बनाती है। भाषा की संपूर्णता इसी में निहित है कि उसका स्वरूप सुव्यवस्थित हो और अर्थ स्पष्ट, प्रासंगिक तथा संप्रेषणीय हो।

3.4 भाषा के विभिन्न स्तर

भाषा एक जटिल और सुव्यवस्थित प्रणाली है जिसे समझने के लिए उसके विभिन्न स्तरों का अध्ययन आवश्यक होता है। भाषा के स्तर यह स्पष्ट करते हैं कि भाषा किस प्रकार क्रमबद्ध रूप से निर्मित होती है और कैसे विभिन्न भाषिक इकाइयाँ मिलकर अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति संभव बनाती हैं। प्रत्येक स्तर का अपना अलग कार्य और महत्व होता है, परंतु सभी स्तर आपस में जुड़े हुए होते हैं। भाषा का सबसे मूल स्तर ध्वनि से संबंधित होता है जिसके माध्यम से भाषा का मौखिक रूप सामने आता है। इसके बाद शब्द-रचना से संबंधित स्तर आता है जिसमें शब्दों के रूप, बनावट और संरचना का अध्ययन किया जाता है। शब्द जब निश्चित क्रम में व्यवस्थित होकर अर्थपूर्ण इकाई बनाते हैं तब वाक्य-स्तर का निर्माण होता है। वाक्य-स्तर पर भाषा पूर्ण विचार को व्यक्त करने में सक्षम होती है। इनके अतिरिक्त भाषा का एक व्यापक स्तर भी होता है जिसमें वाक्यों के आपसी संबंध, संदर्भ और संप्रेषण की स्थिति का महत्व होता है। भाषा के विभिन्न स्तर मिलकर भाषा को पूर्ण, सुसंगत और प्रभावी बनाते हैं। इन स्तरों का अध्ययन भाषा की कार्यप्रणाली, उसकी संरचना और अर्थ-व्यवस्था को समझने में सहायक होता है तथा भाषिक प्रयोग को अधिक स्पष्ट और वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान करता है।

3.4.1 ध्वनि स्तर (ध्वनि विज्ञान)

ध्वनि (स्वन) के अध्ययन से संबद्ध शास्त्र को आज अंग्रेजी में 'फोनेटिक्स' और 'फोनोलॉजी' कहा जाता है जिनका उद्गम ग्रीक शब्द 'Phone' से हुआ है। फोनेटिक्स के अंतर्गत सामान्य रूप से ध्वनि की परिभाषा, भाषा-ध्वनि, ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले अंग, ध्वनियों का वर्गीकरण, उनका स्वरूप और ध्वनि का वक्ता के मुख से श्रोता के कान तक पहुँचने की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है। आधुनिक समय में 'फोनेटिक्स' का प्रयोग प्रायः ध्वनि के भाषा-निरपेक्ष अध्ययन के लिए किया जाता है, जिसमें किसी विशिष्ट भाषा के बजाय ध्वनियों के भौतिक स्वरूप और उनके उच्चारण पर ध्यान दिया जाता है। इसके विपरीत 'फोनोलॉजी' के अंतर्गत किसी भाषा-विशेष की ध्वनियों की व्यवस्था, उनके ऐतिहासिक विकास और समय के साथ आने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। संस्कृत में इसे प्राचीन काल में

‘शिक्षाशास्त्र’ के नाम से जाना जाता था, जबकि हिंदी में इसके लिए ध्वनिविज्ञान, ध्वनि-प्रक्रिया या स्वनिमविज्ञान जैसे नामों का प्रयोग विद्वानों द्वारा किया जाता रहा है। ध्वनि-अध्ययन की प्रक्रिया के मुख्य रूप से तीन आधार या शाखाएँ मानी जाती हैं। पहली शाखा ‘औच्चारणिक ध्वनिविज्ञान’ (Articulatory Phonetics) है, जिसमें यह अध्ययन किया जाता है कि मानव के वाग्यंत्र किस प्रकार ध्वनियों का निर्माण करते हैं। इसका सीधा संबंध बोलने वाले अर्थात् वक्ता से होता है। दूसरी शाखा ‘सांवाहनिक या प्रासरणिक ध्वनिविज्ञान’ (Acoustic Phonetics) कहलाती है, जो उच्चारण के बाद हवा में बनने वाली ध्वनि-लहरों के स्वरूप और उनकी गति का विश्लेषण करती है। इस वैज्ञानिक अध्ययन के लिए काइमोग्राफ, स्पेक्टोग्राफ और ऑसिलोग्राफ जैसे जटिल यंत्रों का सहारा लिया जाता है। तीसरी शाखा ‘श्रावणिक ध्वनिविज्ञान’ (Auditory Phonetics) है जिसमें इस बात का अध्ययन किया जाता है कि श्रोता के कान और मस्तिष्क उन ध्वनियों को किस प्रकार ग्रहण और संवेदित करते हैं। यह शाखा वक्ता और श्रोता के बीच की शारीरिक और भौतिक कड़ियों को जोड़ने का कार्य करती है।

ध्वनियों के उत्पादन का मुख्य केंद्र मानव का ‘वाग्यंत्र’ (Vocal Apparatus) है जिसे विभिन्न उच्चारण अवयवों में विभाजित किया गया है। इन अवयवों को दो मुख्य श्रेणियों ‘चल अवयव’ और ‘अचल अवयव’ में बाँटा जाता है। चल अवयव या ‘करण’ (Articulator) वे अंग हैं जिन्हें ऊपर-नीचे या आगे-पीछे हिलाकर ध्वनि उत्पन्न की जाती है जैसे निचला ओष्ठ, जिह्वा और स्वरतंत्रियाँ। अचल अवयव वे होते हैं जो स्थिर रहते हैं और जहाँ चल अवयव स्पर्श करते हैं जैसे ऊपर के दाँत, कठोर तालु और मूर्धा। वाग्यंत्र में श्वास-नलिका, भोजन-नलिका और इनके बीच स्थित ‘अभिकाकल’ (Epiglottis) की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अभिकाकल एक द्वारपाल की तरह कार्य करता है जो खाते समय श्वास-नलिका को बंद कर देता है ताकि भोजन फेफड़ों में न जाए। मानव मस्तिष्क की विशिष्टता के कारण मनुष्य अपनी श्वास और भोजन की नलिकाओं का उपयोग केवल जीवन रक्षा के लिए ही नहीं बल्कि जटिल भाषा-ध्वनियों के निर्माण के लिए भी करता है जो मनुष्य को अन्य प्राणियों से अलग बनाता है।

3.4.2 रूप या पद स्तर (रूप विज्ञान या शब्द विज्ञान)

भाषा की संरचना में रूप या पद स्तर का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। यह वह स्तर है जहाँ भाषा की न्यूनतम अर्थपूर्ण इकाइयों का अध्ययन किया जाता है और यह समझा जाता है कि शब्द किस प्रकार बनते हैं तथा वाक्य में प्रयुक्त होकर कैसे अर्थ व्यक्त करते हैं। रूप या पद स्तर को भाषाविज्ञान में रूपविज्ञान या शब्दविज्ञान के नाम से जाना जाता है। इस स्तर पर भाषा की आंतरिक रचना और शब्दों की बनावट का विश्लेषण किया जाता है। रूपविज्ञान का प्रमुख विषय रूपिम है। रूपिम भाषा की सबसे छोटी अर्थपूर्ण इकाई होती है जिसे और छोटे भागों में विभाजित करने पर अर्थ नष्ट हो जाता है। उदाहरण के लिए ‘लड़कियाँ’ शब्द को ‘लड़की’ और ‘याँ’ में विभाजित किया जा सकता है। यहाँ ‘लड़की’ मूल रूपिम है और ‘याँ’ बहुवचन का अर्थ देने वाला रूपिम है। इस प्रकार रूपविज्ञान यह स्पष्ट करता है कि शब्द केवल ध्वनियों का समूह नहीं, बल्कि अर्थपूर्ण इकाइयों से निर्मित संरचना है। रूप या पद स्तर पर मूल शब्द और व्युत्पन्न शब्दों का अध्ययन किया जाता है। मूल शब्द वे होते हैं जो स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होते हैं, जबकि व्युत्पन्न शब्द उपसर्ग या प्रत्यय के योग से बनते हैं। जैसे ‘लिख’ धातु से ‘लिखना’, ‘लेखक’, ‘लेखन’ जैसे शब्द बनते हैं। इस प्रक्रिया से भाषा की शब्द-संपदा में निरंतर वृद्धि होती है और नए अर्थों की अभिव्यक्ति संभव होती है।

पद स्तर पर शब्द केवल शब्दकोशीय इकाई न रहकर व्याकरणिक भूमिका ग्रहण करता है। जब कोई शब्द वाक्य में प्रयुक्त होकर किसी व्याकरणिक संबंध को प्रकट करता है तब

वह पद कहलाता है। हिंदी में पदों के रूप में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय आदि आते हैं। प्रत्येक पद का वाक्य में अपना निश्चित कार्य होता है जैसे कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान आदि। यह स्तर भाषा को अनुशासन और स्पष्टता प्रदान करता है। रूप या पद स्तर पर लिंग, वचन, पुरुष, काल, कारक और वाक्य जैसे व्याकरणिक तत्वों का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए, 'लड़का', 'लड़की', 'लड़के' जैसे रूप लिंग और वचन के परिवर्तन को दर्शाते हैं। इसी प्रकार क्रिया के रूप 'खाता है', 'खा रहा है', 'खाया था' आदि काल और पुरुष के अनुसार बदलते हैं। इन परिवर्तनों से भाषा में अर्थ की सूक्ष्मता और स्पष्टता आती है। इस स्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया भी महत्वपूर्ण है। एक ही शब्द विभिन्न रूपों में प्रयुक्त होकर भिन्न-भिन्न अर्थ और व्याकरणिक संबंध व्यक्त कर सकता है। जैसे 'राम ने पुस्तक पढ़ी' और 'राम की पुस्तक' यहाँ 'राम' शब्द का रूप बदलने से उसका व्याकरणिक संबंध भी बदल जाता है। यह परिवर्तन रूप या पद स्तर की कार्यप्रणाली को स्पष्ट करता है।

रूप या पद स्तर भाषा को लचीला और जीवंत बनाता है। इसके माध्यम से भाषा नई परिस्थितियों, नए विचारों और नए अनुभवों को व्यक्त करने में सक्षम होती है। सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के साथ भाषा में नए शब्द जुड़ते हैं और पुराने शब्द नए अर्थ ग्रहण करते हैं। यह प्रक्रिया रूपविज्ञान के माध्यम से ही संभव होती है। भाषा-अध्ययन में रूप या पद स्तर का महत्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि यह ध्वनि और वाक्य के बीच सेतु का कार्य करता है। ध्वनियाँ जब संगठित होकर रूपिम और शब्द बनती हैं तभी वे वाक्य निर्माण में सहायक होती हैं। यदि रूप या पद स्तर न हो तो न तो शब्द-निर्माण संभव होगा और न ही अर्थपूर्ण वाक्य-संरचना। रूप या पद स्तर भाषा के मानकीकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। व्याकरण के नियम इसी स्तर पर भाषा के शुद्ध और अशुद्ध प्रयोग का निर्धारण करते हैं। शिक्षा, साहित्य, प्रशासन और मीडिया में भाषा के मानक रूप का प्रयोग रूपविज्ञान के नियमों पर आधारित होता है। इससे भाषा में एकरूपता और स्पष्टता बनी रहती है। रूप या पद स्तर भाषा की संरचना का आधारभूत और केंद्रीय स्तर है। यह भाषा को अर्थपूर्ण, व्याकरणिक और व्यवस्थित रूप प्रदान करता है। शब्दों की बनावट, उनके रूपांतरण और वाक्य में उनकी भूमिका को समझे बिना भाषा की संपूर्ण संरचना को समझना संभव नहीं है। रूपविज्ञान के माध्यम से ही भाषा अपनी अभिव्यक्ति क्षमता को विस्तार देती है और संप्रेषण को प्रभावी बनाती है।

3.4.3 वाक्य स्तर (वाक्य विज्ञान)

भाषा की संरचना में वाक्य स्तर का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इसी स्तर पर भाषा पूर्ण और सार्थक अभिव्यक्ति का रूप ग्रहण करती है। ध्वनि और शब्द स्तर भाषा की आधारभूत इकाइयाँ हैं परंतु वे तब तक पूर्ण संप्रेषण नहीं कर पाती जब तक वे वाक्य के रूप में व्यवस्थित न हों। वाक्य वह इकाई है, जिसके माध्यम से वक्ता अपने विचार, भाव और सूचना को स्पष्ट रूप से श्रोता तक पहुँचाता है। इसी कारण वाक्य को भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक इकाई माना जाता है। वाक्य विज्ञान का संबंध शब्दों और पदों के उस क्रम और व्यवस्था से है जिसके द्वारा अर्थपूर्ण वाक्य का निर्माण होता है। इसमें यह अध्ययन किया जाता है कि शब्द किस क्रम में आएँ, उनके बीच कौन-से व्याकरणिक संबंध हों और किस प्रकार वे मिलकर एक संपूर्ण अर्थ व्यक्त करें। प्रत्येक भाषा की अपनी वाक्य संरचना होती है, जो उसे अन्य भाषाओं से अलग पहचान देती है। हिंदी में सामान्यतः कर्ता-कर्म-क्रिया का क्रम पाया जाता है, जबकि कुछ अन्य भाषाओं में यह क्रम भिन्न होता है। वाक्य स्तर पर पदों के पारस्परिक संबंध का विशेष महत्व होता है। कर्ता, कर्म, क्रिया, विशेषण, क्रिया-विशेषण आदि पद वाक्य में अपने-अपने स्थान पर रहकर अर्थ को स्पष्ट करते हैं। यदि इन पदों

का क्रम बदल दिया जाए, तो वाक्य का अर्थ भी बदल सकता है। उदाहरण के लिए, 'राम ने श्याम को बुलाया' और 'श्याम ने राम को बुलाया' दोनों वाक्यों में शब्द समान हैं परंतु क्रम बदलने से अर्थ पूर्णतः बदल जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि वाक्य विज्ञान में क्रम और संबंध दोनों अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

वाक्य विज्ञान में वाक्य की रचना के साथ-साथ उसके प्रकारों का भी अध्ययन किया जाता है। कथनात्मक, प्रश्नवाचक, आज्ञार्थक और विस्मयादिबोधक वाक्य भाषा के प्रयोग को विविधता प्रदान करते हैं। इन विभिन्न प्रकारों के माध्यम से वक्ता अपने आशय को अलग-अलग रूपों में व्यक्त करता है। वाक्य का प्रकार बदलने से संप्रेषण का उद्देश्य भी बदल जाता है, जबकि शब्द वही रह सकते हैं। वाक्य स्तर पर अर्थ केवल शब्दों के योग से नहीं बनता, बल्कि उनकी संरचनात्मक व्यवस्था से उत्पन्न होता है। कई बार एक ही शब्द समूह अलग-अलग संरचना में भिन्न अर्थ दे सकता है। जैसे 'पुराने शिक्षक और छात्र' इस वाक्यांश का अर्थ दो प्रकार से लिया जा सकता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि वाक्य संरचना अर्थ निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वाक्य विज्ञान इसी प्रकार की अर्थगत संभावनाओं का अध्ययन करता है। वाक्य विज्ञान में व्याकरणिक शुद्धता का विशेष महत्व है। वाक्य तभी सार्थक और स्वीकार्य माना जाता है जब वह भाषा के व्याकरणिक नियमों के अनुरूप हो। अशुद्ध वाक्य में शब्द होते हुए भी अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता या भ्रम उत्पन्न हो जाता है। इस स्तर पर भाषा के मानक रूप का निर्धारण किया जाता है जो शिक्षा, प्रशासन और साहित्य में आवश्यक होता है।

वाक्य स्तर भाषा की सृजनात्मक क्षमता को भी प्रकट करता है। सीमित शब्दों के माध्यम से अनगिनत वाक्य बनाए जा सकते हैं। यह भाषा की उत्पादकता का प्रमाण है। वक्ता अपनी आवश्यकता, अनुभव और कल्पना के अनुसार नए-नए वाक्य गढ़ सकता है जिन्हें श्रोता आसानी से समझ लेता है। यह प्रक्रिया वाक्य विज्ञान के नियमों के कारण ही संभव होती है। वाक्य विज्ञान में वाक्य और अर्थ के संबंध को भी विशेष रूप से देखा जाता है। कई बार व्याकरणिक रूप से सही वाक्य संदर्भ के बिना अर्थहीन प्रतीत होता है। वहीं कुछ वाक्य संदर्भ के कारण ही पूर्ण अर्थ ग्रहण करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि वाक्य स्तर अर्थ और प्रोक्ति स्तर के बीच पुल का कार्य करता है। वाक्य संरचना भाषा की औपचारिक या सैद्धांतिक व्यवस्था को दर्शाती है जबकि उसका वास्तविक अर्थ प्रयोग की स्थिति में स्पष्ट होता है। वाक्य स्तर का अध्ययन भाषा शिक्षण में भी अत्यंत उपयोगी है। भाषा सीखने वाला व्यक्ति शब्दों को तभी सही ढंग से प्रयोग कर पाता है, जब वह वाक्य रचना के नियमों को समझता है। सही वाक्य निर्माण से संप्रेषण स्पष्ट, प्रभावी और उद्देश्यपूर्ण बनता है। इसी कारण व्याकरण में वाक्य विज्ञान को विशेष स्थान दिया गया है।

3.4.4 प्रोक्ति स्तर (प्रोक्ति विज्ञान)

भाषा की संरचना में प्रोक्ति स्तर सबसे व्यापक और उच्च स्तर माना जाता है। यह वह स्तर है जहाँ भाषा का अध्ययन केवल शब्द, वाक्य या व्याकरण तक सीमित नहीं रहता, बल्कि भाषा को उसके वास्तविक प्रयोग, सामाजिक संदर्भ और संप्रेषणात्मक परिस्थितियों के साथ समझा जाता है। प्रोक्ति विज्ञान भाषा को केवल एक संरचनात्मक व्यवस्था के रूप में नहीं देखता बल्कि एक जीवंत सामाजिक क्रिया के रूप में देखता है। इस स्तर पर भाषा को व्यवहार, संवाद और सामाजिक अंतःक्रिया से जोड़कर देखा जाता है। प्रोक्ति स्तर का मुख्य केंद्र वाक्य से ऊपर की इकाइयाँ होती हैं। इसमें संवाद, पाठ, कथन, अनुच्छेद, वार्तालाप और संपूर्ण भाषिक व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। यहाँ भाषा को अलग-अलग वाक्यों के संग्रह के रूप में नहीं, बल्कि एक सतत और संगठित संप्रेषण प्रक्रिया के रूप में समझा

जाता है। किसी भी संवाद में वाक्य अकेले अर्थ नहीं देते, बल्कि वे एक-दूसरे से जुड़कर समग्र अर्थ का निर्माण करते हैं। यही समग्र अर्थ प्रोक्ति स्तर का विषय होता है। प्रोक्ति विज्ञान का मूल आधार संदर्भ है। भाषा का अर्थ केवल उसके शब्दों या वाक्य संरचना से निर्धारित नहीं होता, बल्कि यह उस स्थिति, परिस्थिति, स्थान, समय, समाज और वक्ता-श्रोता संबंध पर निर्भर करता है जिसमें भाषा का प्रयोग किया जा रहा है। एक ही वाक्य अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग अर्थ ग्रहण कर सकता है। उदाहरण के लिए 'आप यहाँ?' यह वाक्य आश्चर्य, नाराजगी, प्रसन्नता या संदेह किसी भी भाव को व्यक्त कर सकता है। इसका वास्तविक अर्थ केवल संदर्भ से स्पष्ट होता है।

प्रोक्ति स्तर पर वक्ता और श्रोता का संबंध अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। भाषा केवल सूचना देने का माध्यम नहीं, बल्कि संबंध निर्माण का साधन भी है। सामाजिक दूरी, औपचारिकता, आयु, पद, शिक्षा और सामाजिक स्थिति ये सभी तत्व भाषा के रूप और अर्थ को प्रभावित करते हैं। एक ही विषय पर बात करने के क्रम में एक शिक्षक का भाषा प्रयोग, एक मित्र का भाषा प्रयोग और एक अधिकारी का भाषा प्रयोग अलग-अलग होता है। यह भिन्नता प्रोक्ति स्तर की विशेषता है। प्रोक्ति विज्ञान में आशय और निहितार्थ का भी अध्ययन किया जाता है। वक्ता जो कहता है वह ही सब कुछ नहीं होता, बल्कि जो वह कहना चाहता है वह अधिक महत्वपूर्ण होता है। कई बार भाषा प्रत्यक्ष रूप से कुछ और कहती है, पर उसका आशय कुछ और होता है। जैसे 'आज मौसम अच्छा है' यह वाक्य सामान्य कथन भी हो सकता है और इसका आशय घूमने का प्रस्ताव भी हो सकता है। यह अंतर प्रोक्ति स्तर पर ही समझा जाता है। प्रोक्ति स्तर भाषा को सामाजिक व्यवहार से जोड़ता है। भाषा केवल विचार व्यक्त करने का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक क्रियाओं को संपन्न करने का माध्यम भी है। आदेश देना, अनुरोध करना, धन्यवाद देना, माफी माँगना, धमकी देना, आश्वासन देना ये सभी भाषिक क्रियाएँ हैं जो सामाजिक जीवन को संचालित करती हैं। प्रोक्ति विज्ञान इन सभी क्रियाओं का विश्लेषण करता है और यह समझाता है कि भाषा के माध्यम से सामाजिक संबंध कैसे बनते और बिगड़ते हैं। इस स्तर पर संवाद संरचना का भी अध्ययन किया जाता है। बातचीत में प्रश्न-उत्तर, सहमति-असहमति, समर्थन-विरोध, विषय परिवर्तन, मौन, विराम ये सभी अर्थ निर्माण में भूमिका निभाते हैं। संवाद केवल बोले गए शब्दों से नहीं बनता, बल्कि मौन, हाव-भाव, संकेत और संदर्भ भी उसके अर्थ को प्रभावित करते हैं। प्रोक्ति विज्ञान भाषा के इस बहुआयामी स्वरूप को स्पष्ट करता है।

प्रोक्ति स्तर भाषा को गतिशील और जीवंत बनाता है। भाषा यहाँ स्थिर संरचना नहीं रहती, बल्कि सतत परिवर्तनशील प्रक्रिया बन जाती है। सामाजिक परिवर्तन, तकनीकी विकास, सांस्कृतिक बदलाव और संप्रेषण के नए माध्यम भाषा के प्रोक्ति स्तर को निरंतर प्रभावित करते हैं। डिजिटल माध्यमों में भाषा का प्रयोग, संक्षिप्त रूप, प्रतीक, इमोजी, संकेत ये सभी प्रोक्ति स्तर के आधुनिक रूप हैं। प्रोक्ति स्तर का महत्व भाषा शिक्षण और भाषा अध्ययन में भी अत्यधिक है। केवल व्याकरण और शब्दावली जानना पर्याप्त नहीं होता, जब तक भाषा का सही सामाजिक प्रयोग न समझा जाए। उचित संदर्भ में सही भाषा का प्रयोग ही प्रभावी संप्रेषण को संभव बनाता है। इस स्तर पर भाषा केवल 'सही' या 'गलत' नहीं होती, बल्कि 'उपयुक्त' या 'अनुपयुक्त' होती है। प्रोक्ति स्तर भाषा की संरचना का सबसे व्यापक और समग्र स्तर है। यह भाषा को सामाजिक, सांस्कृतिक और संप्रेषणात्मक संदर्भ में समझने की दृष्टि प्रदान करता है। यहाँ भाषा केवल एक प्रणाली नहीं, बल्कि मानव जीवन की सक्रिय सामाजिक प्रक्रिया बन जाती है। प्रोक्ति विज्ञान भाषा की वास्तविक प्रकृति को उजागर करता है और यह स्पष्ट करता है कि भाषा केवल कहने का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन को संचालित करने वाली शक्ति है।

3.4.5 अर्थस्तर (अर्थविज्ञान)

अर्थविज्ञान भाषा विज्ञान की वह महत्वपूर्ण शाखा है जिसे 'अर्थ का विज्ञान' कहा जाता है। इसमें भाषा के अर्थ-पक्ष का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है जो वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक तीनों प्रकार का हो सकता है। विद्वानों के बीच इसे लेकर मतभेद रहा है कि इसे भाषा विज्ञान का अंग माना जाए या दर्शनशास्त्र की एक स्वतंत्र शाखा, किंतु भाषा को 'आत्मा' प्रदान करने के कारण इसे भाषा विज्ञान का अविभाज्य अंग स्वीकार किया गया है। वाक्यपदीयकार भर्तृहरि का मानना है कि शब्द के उच्चारण मात्र से जिसकी मानसिक प्रतीति होती है, वही उसका अर्थ है। अर्थ की यह प्रतीति दो प्रकार से होती है प्रथम 'आत्म-अनुभव' से, जैसे स्वयं चीनी चखकर उसके मीठे होने का ज्ञान करना, और द्वितीय 'पर-अनुभव' से, जहाँ हम दूसरों के ज्ञान या कथन पर निर्भर रहते हैं, जैसे यह सुनकर जानना कि जहर प्राणघातक होता है। अतः किसी भी भाषिक इकाई (शब्द, मुहावरा या वाक्य) को इंद्रियों द्वारा ग्रहण करने पर जो मानसिक बोध होता है, वही अर्थ कहलाता है। भारतीय परंपरा में शब्द और अर्थ के संबंध को अनादि माना गया है, जहाँ शब्द एक प्रतीक है और अर्थ उसका संकेत है। समाज ने विभिन्न शब्दों को विभिन्न अर्थों के लिए प्रतीक के रूप में स्वीकार कर लिया है, जिसे 'संकेत-ग्रह' कहा जाता है। उदाहरण के लिए, 'पानी' शब्द सुनते ही वक्ता और श्रोता दोनों के मस्तिष्क में एक विशिष्ट द्रव्य का बोध होता है, क्योंकि समाज ने इस ध्वनि समूह को उस वस्तु के लिए नियत कर दिया है। अर्थबोध के लिए भारतीय आचार्यों ने मुख्य रूप से आठ साधन माने हैं: व्यवहार (समाज में शब्दों का प्रयोग), कोष (शब्दकोश), व्याकरण (शब्द की प्रकृति और प्रत्यय), प्रकरण (संदर्भ), व्याख्या (विस्तृत विवरण), उपमान (समानता), आप्तवाक्य (विद्वानों के कथन) और ज्ञात शब्दों का सानिध्य। इन्हीं साधनों के माध्यम से व्यक्ति किसी अज्ञात शब्द के अर्थ तक पहुँच पाता है, जैसे 'बासमती' शब्द का अर्थ भात के सानिध्य से समझा जा सकता है।

समय के साथ शब्दों के अर्थ स्थिर नहीं रहते और उनमें निरंतर परिवर्तन होता रहता है, जिसे 'अर्थ-परिवर्तन' कहा जाता है। इस विषय पर सबसे पहले फ्रांसीसी भाषाविद् 'ब्रिल' ने विचार किया और इसकी तीन प्रमुख दिशाएँ बताईं: अर्थ-विस्तार, अर्थ-संकोच और अर्थदिशा। 'अर्थ-विस्तार' तब होता है जब शब्द का सीमित अर्थ व्यापक हो जाता है, जैसे 'तेल' शब्द मूलतः 'तिल के रस' के लिए था, पर अब यह सरसों, मूँगफली और यहाँ तक कि मिट्टी के तेल के लिए भी प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार 'सब्जी' शब्द पहले केवल हरी तरकारियों (सब्रज) के लिए था, जो अब टमाटर और गाजर जैसी लाल सब्जियों के लिए भी स्वीकृत है। इसके अतिरिक्त शब्दों के अर्थ का स्वरूप पूरी तरह बदल भी जाता है, जैसे 'आकाशवाणी' का अर्थ प्राचीन काल में 'देववाणी' था, जो अब 'रेडियो' के लिए रूढ़ हो गया है। इसी प्रकार 'गाँवार' शब्द जो मूलतः 'गाँव के निवासी' के लिए था, अब 'अशिष्ट' या 'मूर्ख' के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है।

3.5 भाषा संरचना की प्रकृति और विशेषताएँ

भाषा की संरचना एक सुव्यवस्थित, नियमबद्ध और प्रणालीगत व्यवस्था है, जिसके माध्यम से मनुष्य अपने विचारों, भावनाओं और अनुभवों को व्यक्त करता है। भाषा संरचना की प्रकृति को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि भाषा केवल ध्वनियों या शब्दों का संयोग नहीं है, बल्कि विभिन्न भाषिक इकाइयों का संगठित रूप है। यह संरचना भाषा को सार्थक, प्रभावी और संप्रेषणीय बनाती है। भाषा संरचना की सबसे प्रमुख विशेषता उसकी प्रणालीगत प्रकृति है। भाषा एक प्रणाली के रूप में कार्य करती है, जिसमें ध्वनि, रूप, शब्द, वाक्य और प्रोक्ति जैसे विभिन्न स्तर परस्पर जुड़े होते हैं। प्रत्येक स्तर का अपना स्वतंत्र अस्तित्व

होते हुए भी वह अन्य स्तरों पर निर्भर करता है। किसी एक स्तर में परिवर्तन होने पर संपूर्ण भाषा व्यवस्था प्रभावित होती है। यह पारस्परिकता भाषा को एक संगठित संरचना प्रदान करती है। भाषा संरचना की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता उसकी नियमबद्धता है। प्रत्येक भाषा में ध्वनि-संयोजन, शब्द-रचना और वाक्य-संरचना से संबंधित निश्चित नियम होते हैं। ये नियम भाषा के प्रयोग को अनुशासित बनाते हैं और संप्रेषण में स्पष्टता लाते हैं। व्याकरण इन्हीं नियमों का व्यवस्थित रूप है, जो भाषा के मानक प्रयोग को निर्धारित करता है। नियमों के अभाव में भाषा अव्यवस्थित और अस्पष्ट हो जाती है।

भाषा संरचना की एक अन्य विशेषता उसकी सार्वजनिक और सामाजिक प्रकृति है। भाषा किसी एक व्यक्ति की निजी संपत्ति नहीं होती, बल्कि पूरे समाज की सामूहिक संपत्ति होती है। समाज ही भाषा के स्वरूप को स्वीकार करता है, विकसित करता है और उसमें परिवर्तन लाता है। भाषा की संरचना सामाजिक व्यवहार, सांस्कृतिक मूल्य और ऐतिहासिक परिस्थितियों से निरंतर प्रभावित होती रहती है। भाषा संरचना की गतिशीलता भी एक प्रमुख विशेषता है। भाषा स्थिर नहीं रहती, बल्कि समय, समाज और आवश्यकता के अनुसार निरंतर बदलती रहती है। नए शब्दों का जुड़ना, पुराने शब्दों का लुप्त होना, अर्थों में परिवर्तन और संरचना में संशोधन ये सभी भाषा की जीवंतता को दर्शाते हैं। यह परिवर्तन भाषा की संरचना को कमजोर नहीं करता बल्कि उसे अधिक समृद्ध बनाता है। भाषा संरचना की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसकी उत्पादकता है। सीमित ध्वनियों और शब्दों के माध्यम से अनगिनत वाक्य बनाए जा सकते हैं। वक्ता अपनी आवश्यकता और अनुभव के अनुसार नए-नए वाक्य गढ़ सकता है, जिन्हें श्रोता सहज ही समझ लेता है। यह क्षमता भाषा को अत्यंत प्रभावी संप्रेषण माध्यम बनाती है। भाषा संरचना में अर्थ और स्वरूप का समन्वय भी एक मूलभूत विशेषता है। स्वरूप भाषा की बाह्य और आंतरिक व्यवस्था को दर्शाता है, जबकि अर्थ उसके माध्यम से व्यक्त भाव और विचार को। दोनों के बिना भाषा अधूरी है। संरचना तभी सफल मानी जाती है, जब वह अर्थ को स्पष्ट और प्रभावी रूप से व्यक्त कर सके। भाषा संरचना की एक और विशेषता उसकी सांस्कृतिक संवाहक भूमिका है। भाषा के माध्यम से संस्कृति, परंपरा, मूल्य और ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी संप्रेषित होते हैं। साहित्य, लोककथाएँ, कहावतें और मुहावरे भाषा की संरचना में समाहित सांस्कृतिक तत्वों को प्रकट करते हैं। इस प्रकार भाषा संरचना समाज की सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखती है।

3.6 सारबिंदु

- प्रस्तुत इकाई में भाषा की संरचना और उसके विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया गया है। भाषा को एक सुव्यवस्थित प्रणाली के रूप में समझने पर यह स्पष्ट होता है कि वह केवल ध्वनियों या शब्दों का समूह नहीं है, बल्कि अनेक स्तरों पर संगठित एक जटिल संरचना है।
- भाषिक संरचना का उद्देश्य यह समझाना है कि भाषा किस प्रकार कार्य करती है और कैसे उसके माध्यम से अर्थपूर्ण संप्रेषण संभव होता है।
- इस इकाई में भाषा के अर्थ और स्वरूप के पारस्परिक संबंध पर विशेष बल दिया गया है। स्वरूप भाषा की संरचनात्मक व्यवस्था को दर्शाता है, जिसमें ध्वनियों, शब्दों और वाक्यों का क्रमबद्ध संगठन शामिल है। वहीं अर्थ भाषा को सार्थक बनाता है और उसे सामाजिक तथा संप्रेषणीय मूल्य प्रदान करता है। दोनों के समन्वय से ही भाषा जीवंत और प्रभावी बनती है।
- भाषा की संरचना को समझने के लिए उसके विभिन्न स्तरों का विवेचन किया गया है। रूप या पद स्तर पर शब्दों की बनावट, उनके रूपांतरण और वाक्य में उनकी भूमिका स्पष्ट होती है। वाक्य स्तर पर शब्द संगठित होकर पूर्ण विचार को व्यक्त करते हैं और भाषा संप्रेषण की वास्तविक इकाई के रूप में सामने आती है।

- प्रोक्ति स्तर पर भाषा का अध्ययन वाक्य से ऊपर उठकर संदर्भ, संवाद और सामाजिक प्रयोग के साथ किया जाता है, जिससे भाषा का वास्तविक अर्थ सामने आता है।
- इस इकाई से यह स्पष्ट होता है कि भाषा की संरचना नियमबद्ध, प्रणालीगत और सामाजिक होती है। भाषा स्थिर नहीं रहती, बल्कि समय, समाज और आवश्यकता के अनुसार उसमें परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन भाषा की कमजोरी नहीं, बल्कि उसकी जीवंतता और लचीलापन दर्शाता है। भाषा की उत्पादकता भी इसी संरचना का परिणाम है, जिसके माध्यम से सीमित साधनों से असीम अभिव्यक्तियाँ संभव होती हैं।
- अंततः इस इकाई का सार यह है कि भाषा की संरचना बहुआयामी है। इसमें अनुशासन और स्वतंत्रता, स्थिरता और परिवर्तन, अर्थ और स्वरूप सभी का संतुलित समावेश होता है।
- भाषिक संरचना का अध्ययन भाषा को वैज्ञानिक दृष्टि से समझने में सहायता करता है और यह स्पष्ट करता है कि भाषा मानव समाज की एक अनिवार्य, सक्रिय और सशक्त व्यवस्था है।

3.7 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

• बोध प्रश्न

(I) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न।

1. भाषिक संरचना से आप क्या समझते हैं? अर्थ और स्वरूप के संदर्भ में इसकी विवेचना कीजिए।
2. भाषा के विभिन्न स्तरों का परिचय देते हुए यह स्पष्ट कीजिए कि वे किस प्रकार परस्पर संबंधित हैं?
3. प्रोक्ति स्तर (प्रोक्ति विज्ञान) की अवधारणा को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए तथा इसके महत्व पर प्रकाश डालिए।
4. भाषा संरचना की प्रकृति और प्रमुख विशेषताओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।

(II) लघु उत्तरीय प्रश्न।

1. भाषिक संरचना से क्या तात्पर्य है?
2. ध्वनि विज्ञान और स्वनिम विज्ञान में अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. रूपिम किसे कहते हैं? एक उदाहरण दीजिए।
4. वाक्य स्तर को भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक इकाई क्यों माना जाता है?
5. प्रोक्ति स्तर में संदर्भ का क्या महत्व है?
6. अर्थविज्ञान से आप क्या समझते हैं?
7. भाषा संरचना की प्रणालीगत प्रकृति से क्या अभिप्राय है?

(III) वस्तुनिष्ठ प्रश्न।

1. ध्वनि के अध्ययन से संबद्ध शास्त्र को अंग्रेजी में क्या कहा जाता है?
 - (क) फोनेटिक्स
 - (ख) फोनोलॉजी
 - (ग) 'क' और 'ख' दोनों
 - (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

2. 'आधुनिक भाषाविज्ञान' पुस्तक के लेखक हैं-
 - (क) राजमल बोरा
 - (ख) राजमणि शर्मा
 - (ग) भोलानाथ तिवारी
 - (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं
3. भाषा की संरचना के संबंध में निम्नलिखित में से असंगत है-
 - (क) भाषा की संरचना को समझने के लिए उसे विभिन्न स्तरों में विभाजित किया गया है।
 - (ख) ध्वनियाँ पदों का निर्माण करती हैं।
 - (ग) भाषिक संरचना का अध्ययन सैद्धांतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।
 - (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं
4. भाषा के अर्थ-पक्ष के वैज्ञानिक विश्लेषण के कितने प्रकार हैं?
 - (क) दो
 - (ख) तीन
 - (ग) चार
 - (घ) पाँच
5. निम्नलिखित में से कौन भाषा के स्तर में सम्मिलित नहीं है?
 - (क) रूपविज्ञान
 - (ख) वाक्यविज्ञान
 - (ग) प्रोक्तिविज्ञान
 - (घ) उपर्युक्त सभी

3.8 उपयोगी पाठ्यसामग्री

(क) उपयोगी ग्रंथ

1. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, (1997), भाषाविज्ञान सैद्धान्तिक चिन्तन, दिल्ली-51, राधाकृष्ण प्रकाशन, 81-7119-339-0.
2. देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1966
3. सक्सेना, बाबूराम, (1995), सामान्य भाषाविज्ञान, प्रयाग, हिंदी साहित्य सम्मेलन।
4. तिवारी, भोलानाथ, (1993), भाषाविज्ञान, नई दिल्ली, किताब महल।
5. शर्मा, डॉ. राजमणि, (2009), आधुनिक भाषा-विज्ञान, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 81-7055-483-7.
6. शर्मा, डॉ। हरीश, (1997), भाषाविज्ञान की रूपरेखा, गाजियाबाद, अमित प्रकाशन, 81-85309-15-9.
7. त्रिपाठी, आचार्य रामदेव, (1990), हिंदी भाषाविज्ञान, राजेन्द्र नगर, पटना, बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी

(ख) वेब संदर्भ

1. हिंदी निदेशालय, भारत सरकार <https://hindinideshalaya.nic.in>
2. केंद्रीय हिंदी संस्थान <https://www.kendriyahindisanstah.org>
3. ई-पाठशाला (NCERT) <https://epathshala.nic.in>
4. राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय <https://ndl.iikgp.ac.in>
5. भारतकोश (हिंदी चानकोश) <https://bharatdiscovery.org>
6. <http://epgpinfibnet.ac.in>
7. <http://www.hinsamay.com>
8. <http://hindnest.acom>
9. <http://www.di.emt.in>
10. <http://www.archive.org>

इकाई 4 भाषा और विचार

रूपरेखा

- 4.1 उद्देश्य
- 4.2 प्रस्तावना
- 4.3 अर्थ की प्रतीति और विचार प्रक्रिया
- 4.4 भाषा और विचार : अंतःसंबंधात्मक विवेचन
- 4.5 ऐतिहासिक विकासक्रम : हर्डर और हम्बोल्ट का भाषा-दर्शन
- 4.6 बेंजामिन ली व्हॉर्फ : भाषाई नियतिवाद एवं मानसिक संरचना
- 4.7 सारबिंदु
- 4.8 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली
- 4.9 उपयोगी पाठ्यसामग्री

4.1 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थियों को अधोलिखित उद्देश्य प्राप्त होंगे :-
- विद्यार्थी भाषा और विचार के परस्पर अन्योन्याश्रित संबंध को समझ सकेंगे।
 - विद्यार्थी भाषा को मानवीय आत्मा की सृजनात्मक शक्ति और सांस्कृतिक पहचान के संवाहक के रूप में पहचान सकेंगे।
 - विद्यार्थी अर्थ ग्रहण करने की जटिल मनोवैज्ञानिक और संज्ञानात्मक प्रक्रिया को स्पष्ट कर सकेंगे।
 - विद्यार्थी ‘भाषाई नियतिवाद’ और ‘सार्वभौमिक व्याकरण’ के परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों का मूल्यांकन कर सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना

भाषा और विचार के संबंध में विद्वान और भाषाविद् यह निश्चित नहीं कर सके हैं कि विचार पहले उपजता है या भाषा। आधुनिक भाषाविज्ञान के क्षेत्र में इस विमर्श को बेंजामिन ली वॉर्फ ने ‘होपी’ समुदाय के अध्ययन के माध्यम से एक नई दिशा दी, जहाँ उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि भिन्न भाषाएँ संसार को देखने और समझने के नजरिए को भी भिन्न बना देती हैं। वस्तुतः भाषा केवल विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम ही नहीं है, बल्कि वह उस सांस्कृतिक और संज्ञानात्मक व्यवस्था का निर्माण करती है जिसमें ढलकर मनुष्य अपनी अनुभूतियों को वर्गीकृत और संरचित करता है। भाषा और विचार का यह संबंध एक पहेली की तरह है, जहाँ संस्कृति, परंपरा और भाषाई आदतें मिलकर व्यक्ति के सोचने के ढंग और यथार्थ बोध को अनजाने में ही संस्कारित करती रहती हैं। इस भाषाई बुनावट का सूक्ष्म प्रभाव मनुष्य के दिशा-ज्ञान की शब्दावली, काल की अवधारणा और यहाँ तक कि रंगों के वर्गीकरण में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अंग्रेजी या हिंदी जैसी भाषाएँ सापेक्षिक शब्दों का सहारा लेती हैं, जिससे वक्ता की वैचारिक प्राथमिकताएँ बदल जाती हैं। यद्यपि मनुष्य भाषा के बिना भी मानसिक छवियों और संवेदनाओं को महसूस करने में सक्षम है, किंतु भाषा वह अनिवार्य उपकरण है जो प्राकृतिक वास्तविकताओं को निश्चित श्रेणियों और समूहों में विभाजित कर उन्हें सामाजिक संवाद के योग्य बनाती है। भाषा और विचार परस्पर इस प्रकार संबद्ध हैं कि एक का विश्लेषण दूसरे के संदर्भ के बिना अधूरा है।

4.3 अर्थ की प्रतीति और विचार प्रक्रिया

भाषाविज्ञान और मनोविज्ञान की दृष्टि से ‘अर्थ की प्रतीति’ और ‘विचार प्रक्रिया’ का प्रश्न अत्यंत रहस्यमय है। भाषा का मुख्य प्रयोजन अर्थ-संप्रेषण है, किंतु यह अर्थ केवल ध्वनि संकेतों का समूह मात्र नहीं है। अर्थ की प्रतीति एक जटिल मानसिक व्यापार है जहाँ शब्द या ध्वनि-बिंब श्रोता के मस्तिष्क में उपस्थित पूर्व-अनुभवों और संकल्पनाओं से टकराकर एक निश्चित ‘बोध’ उत्पन्न करते हैं। यह बोध ही विचार प्रक्रिया का आधार बनता है। जब मनुष्य किसी शब्द का उच्चारण करता है, तो वह शून्य में नहीं खो जाता, बल्कि मस्तिष्क में एक विशिष्ट ‘अर्थ-बिंब’ को जाग्रत करता है। विचार प्रक्रिया की जड़ें भाषा की व्याकरणिक संरचनाओं में गहराई से धंसी होती हैं। बेंजामिन ली वोफक के ‘भाषाई नियतिवाद’ (Linguistic Determinism) के अनुसार हमारी भाषा की पृष्ठभूमि प्रणाली-अर्थात् उसका व्याकरण-केवल विचारों को ध्वनि देने का साधन नहीं है, बल्कि वह स्वयं विचारों को आकार देने वाली ‘प्रोग्रामिंग’ है। अर्थ की प्रतीति इस बात पर निर्भर करती है कि हमारी भाषा ने वास्तविकता को किन समूहों में विभाजित किया है। उदाहरण के लिए, यदि किसी भाषा में समय को ‘वस्तु’ की तरह गिनने की व्यवस्था है, जैसे- तीन दिन, पाँच मिनट तो वहाँ का वक्त समय को एक संचय करने योग्य इकाई के रूप में सोचेगा। इसके विपरीत ‘होपी’ जैसी भाषाओं में, जहाँ समय को एक ‘सतत प्रक्रिया’ के रूप में देखा जाता है, वहाँ अर्थ की प्रतीति का स्वरूप पूर्णतः भिन्न होता है।

अर्थ ग्रहण की इस प्रक्रिया में ‘संस्कृति’ की भूमिका भी बहुत महत्वपूर्ण है। भाषा, विचार और संस्कृति आपस में गुँथी हुई हैं। मनुष्य जिस परिवेश में रहता है वहाँ की परंपराएं और आदतें उसके सोचने के ढंग को प्रभावित करती हैं। सापिर के अनुसार हमारी वास्तविक दुनिया काफी हद तक हमारे समूह की भाषाई आदतों पर अनजाने में निर्मित होती है। इस प्रकार अर्थ की प्रतीति कोई स्वतंत्र क्रिया नहीं, बल्कि सांस्कृतिक संस्कारों से छनकर आने वाला बोध है। यहाँ यह प्रश्न भी उठता है कि क्या अर्थ की प्रतीति पूर्णतः भाषाई शब्दों पर निर्भर है? आधुनिक शोध स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य कई बार ‘अभाषिक चिंतन’ भी करता है। मनुष्य रंगों के असंख्य शेड्स, संगीत की लहरी या किसी विशिष्ट गंध का अनुभव बिना किसी भाषाई संज्ञा के भी कर सकते हैं। ‘मेंटलीज’ का सिद्धांत इसी ओर संकेत करता है कि मस्तिष्क की अपनी एक आंतरिक भाषा होती है, जो बाह्य बोलचाल की भाषा से स्वतंत्र होकर अर्थ का संधान करती है। यहाँ अर्थ की प्रतीति ‘अनुभूति’ के धरातल पर होती है, जिसे बाद में अभिव्यक्ति के लिए भाषा के साँचे में ढाला जाता है। सापिर-वोफक परिकल्पना के अनुसार भाषा हमारी सोच को पूरी तरह कैद नहीं करती, बल्कि उसे एक विशेष दिशा में प्रोत्साहित करती है। रंगों के वर्गीकरण के प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि यद्यपि भाषा रंगों के नामकरण को प्रभावित करती है, किंतु मानव की मौलिक दृश्य क्षमता सार्वभौमिक है। रूसी भाषी नीले रंग के विभिन्न रूपों के लिए अलग शब्द रखते हैं, जिससे उनकी विचार प्रक्रिया उन रंगों के प्रति अधिक सजग हो सकती है, किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि अन्य भाषा के लोग उन रंगों को देख नहीं पाते। अर्थ की प्रतीति और विचार प्रक्रिया का संबंध ‘आंतरिक’ और ‘बाह्य’ के द्वंद्व का परिणाम है। जहाँ नोआम चॉम्स्की जैसे विद्वान ‘सार्वभौमिक व्याकरण’ के माध्यम से विचार प्रक्रिया को जन्मजात और जैविक मानते हैं, वहीं सापिर-वोफक की परंपरा भाषाई विविधता को वैचारिक विविधता का कारण मानती है।

4.4 भाषा और विचार : अंतः संबंधात्मक विवेचन

मानव सभ्यता के विकासक्रम में भाषा और विचार का प्रश्न मनुष्य के अस्तित्व जितना ही पुराना है। क्या मनुष्य बिना भाषा के चिंतन कर सकता है? क्या विचार भाषा पर निर्भर

हैं या भाषा विचारों की दासी है? ये ऐसे प्रश्न हैं जिन्होंने लंबे समय तक दार्शनिकों, मनोवैज्ञानिकों और भाषाशास्त्रियों को चिंतन करने के लिए विवश किया है। सामान्यतः भाषा को भावों की अभिव्यक्ति का एक सरल माध्यम मान लिया जाता है, किंतु भाषाविज्ञान के सिद्धांतों के आलोक में यह स्पष्ट होता है कि भाषा केवल एक माध्यम ही नहीं है, बल्कि एक ढाँचा भी है जिसमें विचार ढलते हैं। भाषा और विचार के इसी जटिल और अविभाज्य संबंध को समझने के लिए ‘भाषाई सापेक्षतावाद’ की अवधारणा को समझना आवश्यक है, जिसे आधुनिक युग में ‘सापिर-वोफ़क परिकल्पना’ के नाम से जाना जाता है। यद्यपि सापिर और वोफ़क ने इस सिद्धांत को वैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया, किंतु इसकी शुरुआत का श्रेय अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के जर्मन दार्शनिकों को जाता है। जोजी। हर्डर (1744-1803) ने सर्वप्रथम यह संकेत दिया था कि भाषा की प्रणाली उसके बोलने वालों की सोच को आकार देती है। इसके पश्चात डब्ल्यू.वी। हम्बोल्ट (1767-1835) ने भाषा दर्शन के क्षेत्र में क्रांतिकारी विचार रखते हुए कहा कि भाषाविज्ञान का मुख्य उद्देश्य विचारों के निर्माण में भाषा की भूमिका को उद्घाटित करना होना चाहिए। हम्बोल्ट का मानना था कि यदि भाषा विचारों का सृजन करती है, तो वह व्यक्ति के दृष्टिकोण और सामाजिक व्यवहार को भी नियंत्रित करती है। इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए बीसवीं सदी के अमेरिकी नृवंशविज्ञानी और भाषाविद् एडवर्ड सापिर ने इस विषय को एक नई दिशा दी। सापिर ने अपने निबंध ‘The Status of Linguistics as a Science’ में स्पष्ट किया कि संज्ञान की प्रक्रिया में भाषा केवल एक मूक माध्यम नहीं है वरन् एक सक्रिय भागीदार है। सापिर के शिष्य बेंजामिन ली व्होर्फ ने अपने गुरु के विचारों को आगे बढ़ाते हुए अधिक प्रखर स्वरूप प्रदान किया। वोफ़क का मुख्य कार्य अमेरिकी इंडियन भाषा ‘होपी’ (Hopi) पर आधारित था। जब उन्होंने होपी व्याकरण की तुलना अंग्रेजी जैसी यूरोपीय भाषाओं से की, जिन्हें वे Standard Average European या SAE कहते थे, तो वे दंग रह गए। उन्होंने पाया कि होपी भाषा में समय और स्थान को देखने का नजरिया यूरोपीय भाषाओं से पूर्णतः भिन्न है। इसी अनुभवजन्य डेटा के आधार पर उन्होंने घोषणा की कि हम प्रकृति का विश्लेषण उन्हीं रेखाओं पर करते हैं जो हमारी मातृभाषा ने हमारे मस्तिष्क में खींच दी है। वोफ़क के अनुसार दुनिया हमारे सामने छापों के एक ‘बहुरूपदर्शक प्रवाह’ के रूप में आती है, जिसे हमारा मस्तिष्क भाषा की सहायता से वर्गीकृत और संरचित करता है। यदि हमारे पास किसी वस्तु या स्थिति के लिए शब्द नहीं है, तो हम उस स्थिति को उस गहराई से महसूस नहीं कर सकते जैसा वह व्यक्ति कर सकता है जिसकी भाषा में उसके लिए सटीक शब्दावली उपलब्ध है। इसे ही ‘भाषाई नियतिवाद’ कहा गया-अर्थात्, भाषा हमारे विश्व-दृष्टिकोण की नियंता है।

भाषा और विचार के संबंध में व्याकरण की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। वोफ़क का तर्क था कि व्याकरण केवल शब्दों को जोड़ने का नियम नहीं है, बल्कि वह विचारों का ‘प्रोग्राम’ और ‘मार्गदर्शक’ है। उदाहरण के लिए यूरोपीय भाषाओं में हम समय को ‘वस्तुनिष्ठ’ बना देते हैं- हम कहते हैं ‘पाँच दिन’, जैसे कि दिन पाँच भौतिक वस्तुएँ हों जिन्हें गिना जा सके। किंतु होपी भाषा में समय को एक ‘प्रक्रिया’ के रूप में देखा जाता है, जहाँ दिनों को वस्तुओं की तरह गिना नहीं जाता, बल्कि उन्हें एक निरंतरता के रूप में अनुभव किया जाता है। इसी प्रकार लिंग, वचन और पुरुष जैसी व्याकरणिक कोटियाँ मनुष्य के सामाजिक बोध को प्रभावित करती हैं। यदि किसी भाषा में लिंग भेद बहुत कड़ा है, तो उस समाज के लोग स्त्री और पुरुष के गुणों को लेकर अधिक सजग और भिन्न दृष्टिकोण रख सकते हैं। वोर्फ ने यह भी बताया कि तकनीकी शब्दावली का अभाव या प्रचुरता हमारी कार्यक्षमता को प्रभावित करती है, जैसे चिकित्सक चिकित्सा संबंधी जटिलताओं पर अधिक सुगमता से विचार कर पाते हैं क्योंकि उनके पास उनके लिए शब्द हैं। उसी प्रकार जिस भाषा में ‘ऊँटों’

के लिए कई शब्द हैं, उस भाषा का वक्ता ऊँटों के बीच के उन सूक्ष्म अंतरों को तुरंत पहचान लेगा जिन्हें एक सामान्य व्यक्ति देख भी नहीं पाएगा।

4.5 ऐतिहासिक विकासक्रम : हर्डर और हम्बोल्ट का भाषा-दर्शन

जर्मन दार्शनिक हर्डर का भाषा-विषयक चिंतन आधुनिक भाषा-दर्शन में एक महत्वपूर्ण मोड़ है। हर्डर ने भाषा को केवल संप्रेषण का साधन न मानकर उसे मानवीय चेतना का अभिन्न और स्वाभाविक अंग स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में भाषा और विचार का संबंध बाह्य या यांत्रिक नहीं, बल्कि आंतरिक और जैविक है। मनुष्य अपने इंद्रियानुभवों को सीधे ग्रहण नहीं करता, अपितु उन्हें भाषिक चिह्नों के माध्यम से रूपायित करता है। इस प्रकार भाषा बाह्य जगत के संवेदनात्मक अनुभवों को व्यवस्थित कर उन्हें बोधगम्य बनाती है। हर्डर के अनुसार विचार की प्रक्रिया शब्दों के बिना अधूरी है, क्योंकि शब्द ही वे उपकरण हैं जिनके माध्यम से अनुभव संकल्पनाओं में परिवर्तित होते हैं। अतः भाषा को मनुष्य की बौद्धिक संरचना का आधार कहा जा सकता है, जो अनुभव और ज्ञान के बीच सेतु का कार्य करती है। हर्डर के सिद्धांत का केंद्रीय तत्व भाषा और विचार के मध्य परस्पर निर्भरता का प्रतिपादन है। वे न तो भाषा को विचार का पूर्ण नियंता मानते हैं और न ही विचार को भाषा से सर्वथा स्वतंत्र स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार दोनों के बीच सहवर्ती संबंध विद्यमान है जिसमें एक का विकास दूसरे के विस्तार से जुड़ा हुआ है। मनुष्य शब्दों के माध्यम से ही विचारों को स्पष्टता प्रदान करता है; जैसे-जैसे भाषा का विस्तार होता है, वैसे-वैसे विचार की गहराई और सूक्ष्मता भी बढ़ती जाती है। नए शब्दों और उनके नवीन संयोजन से नए विचारों का उद्भव होता है जिससे ज्ञान की सीमाएँ विस्तृत होती हैं। यदि किसी विषय के लिए उपयुक्त शब्द-संरचना उपलब्ध नहीं है, तो उसका विश्लेषण भी सीमित रह जाता है। इस प्रकार भाषा न केवल विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम है, बल्कि उनकी संरचना और विस्तार की आधारभूमि भी है। यहाँ भाषा एक सक्रिय सृजनात्मक शक्ति के रूप में कार्य करती है, जो निरंतर नए अर्थों और अवधारणाओं को जन्म देती रहती है।

हर्डर के भाषा-दर्शन का तीसरा महत्वपूर्ण आयाम उसका सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य है। उनके अनुसार प्रत्येक भाषा अपने भीतर एक विशिष्ट विश्वदृष्टि को समाहित करती है, जो उस भाषाई समुदाय के जीवनानुभव, परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतिबिंब होती है। भाषा केवल व्यक्तिगत विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम ही नहीं, बल्कि सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति भी है। किसी समाज की लोकपरंपराएँ, साहित्य, संगीत और कलाएँ भाषा के माध्यम से ही संरक्षित और संप्रेषित होती हैं। इसीलिए भाषा को एक जीवंत सांस्कृतिक धारा के रूप में देखा जाना चाहिए, जिसमें एक समुदाय का अतीत, वर्तमान और भविष्य निरंतर प्रवाहित होता है। हर्डर की यह धारणा आगे चलकर भाषाई सापेक्षता के सिद्धांत की पूर्वपीठिका सिद्ध हुई, जहाँ यह माना गया कि विभिन्न भाषाएँ विभिन्न प्रकार से विश्व को देखने और समझने की प्रवृत्तियाँ विकसित करती हैं। इस प्रकार हर्डर का भाषा-सिद्धांत भाषा, विचार और संस्कृति के त्रिवेणी-संबंध को स्थापित करता है, जो मानव ज्ञान और सामाजिक अस्तित्व की गहन व्याख्या प्रस्तुत करता है। जर्मन भाषाविद् एवं दार्शनिक विल्हेल्म वॉन हम्बोल्ट का भाषा-संबंधी चिंतन भाषाविज्ञान के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। उन्होंने भाषा को केवल अभिव्यक्ति का साधन न मानकर उसे मानवीय आत्मा की सक्रिय सृजनात्मक शक्ति के रूप में देखा। हम्बोल्ट का भाषिक अध्ययन विशेष रूप से बास्क भाषा के अनुसंधान से जुड़ा हुआ है, जिसके आधार पर उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि भाषा किसी समुदाय के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विकास का जीवंत प्रमाण होती है। बास्क भाषा के माध्यम से उन्होंने स्पेन के प्राचीन निवासियों के स्वरूप और विस्तार का अध्ययन किया तथा यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया

कि भाषा केवल संचार का माध्यम नहीं, बल्कि ऐतिहासिक चेतना का संवाहक भी है। इस प्रकार भाषा को उन्होंने सांस्कृतिक निरंतरता और जातीय पहचान के आधार के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनके इस प्रकार के अनुसंधान से यह स्पष्ट होता है कि भाषा का अध्ययन केवल व्याकरणिक संरचना तक सीमित नहीं रह सकता, बल्कि उसे व्यापक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संदर्भों में समझना आवश्यक है।

हम्बोल्ट के भाषा-दर्शन का केंद्रीय तत्व 'भाषा के आंतरिक रूप' की अवधारणा है जिसे उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कृति 'On Language' में प्रतिपादित किया। उनके अनुसार किसी भी भाषा का वास्तविक स्वरूप उसके बाह्य ध्वन्यात्मक या शब्दात्मक रूप में नहीं, बल्कि उस आंतरिक संरचना में निहित होता है, जो शब्दों और वाक्यांशों के बीच संबंध स्थापित करती है। यही आंतरिक रूप यह निर्धारित करता है कि कोई भाषाई समुदाय अपने अनुभवों को किस प्रकार संगठित करता है और विश्व को किस दृष्टि से देखता है। इस प्रकार भाषा का आंतरिक रूप उस समुदाय की मानसिक संरचना और ज्ञान-प्रक्रिया का दर्पण होता है। हम्बोल्ट का यह मत था कि ध्वनियाँ तब तक शब्द नहीं बनतीं, जब तक उनमें अर्थ का समावेश न हो और यह अर्थ व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक चेतना का परिणाम होता है। इस प्रकार भाषा का प्रत्येक तत्व एक व्यापक सांस्कृतिक और बौद्धिक संरचना से जुड़ा हुआ है, जो उसे विशिष्टता प्रदान करता है। हम्बोल्ट ने भाषा को एक नियम-शासित, किन्तु सृजनात्मक प्रणाली के रूप में भी देखा। उनके अनुसार भाषा 'सीमित साधनों का अनंत उपयोग' करती है, अर्थात् सीमित व्याकरणिक नियमों के आधार पर अनंत वाक्यों का निर्माण संभव होता है। इस दृष्टिकोण ने आगे चलकर आधुनिक भाषाविज्ञान, विशेषतः नोम चोमस्की के जनरेटिव व्याकरण सिद्धांत को प्रेरित किया, यद्यपि दोनों के विचारों में मौलिक अंतर भी विद्यमान है। हम्बोल्ट के लिए भाषा केवल संरचना नहीं, बल्कि सतत सृजन की प्रक्रिया है, जिसमें मनुष्य निरंतर नए अर्थों और अभिव्यक्तियों का निर्माण करता है। इस प्रकार भाषा एक गतिशील शक्ति के रूप में कार्य करती है जो मानवीय ज्ञान और अनुभव के विस्तार में सहायक होती है। यहाँ भाषा का स्वरूप स्थिर न होकर गतिशील और क्रियाशील है, जो हर क्षण नए रूपों और अर्थों को जन्म देता है।

हम्बोल्ट के भाषा-सिद्धांत का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष उसकी 'विश्वदृष्टि' की अवधारणा में निहित है। उनके अनुसार प्रत्येक भाषा अपने भीतर एक विशिष्ट विश्वदृष्टि को संजोए रहती है, जिसके माध्यम से उस भाषा-समुदाय के लोग संसार को देखते और समझते हैं। इस प्रकार भाषा और संस्कृति के बीच एक गहरा और अविच्छिन्न संबंध स्थापित होता है। हम्बोल्ट का यह विचार आगे चलकर भाषाई सापेक्षता के सिद्धांत का आधार बना जिसे बाद में एडवर्ड सापिर और बेंजामिन ली वोफ़क ने विकसित किया। इस दृष्टि से भाषा केवल विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि विचारों की संरचना और दिशा-निर्धारण का भी साधन है। प्रत्येक भाषा अपने वक्ताओं को एक विशिष्ट दृष्टिकोण प्रदान करती है जिसके माध्यम से वे वास्तविकता का अनुभव करते हैं। हम्बोल्ट का भाषा-दर्शन भाषा, विचार और संस्कृति के त्रिविध संबंध को स्पष्ट करता है और यह स्थापित करता है कि भाषा मानव अस्तित्व की केन्द्रीय शक्ति है जो उसके ज्ञान, अनुभूति और सांस्कृतिक पहचान को रूपायित करती है।

4.6 बेंजामिन ली व्हॉफ : भाषाई नियतिवाद एवं मानसिक संरचना

मानव चेतना के विकास में भाषा की भूमिका को समझना आधुनिक भाषाविज्ञान की सबसे बड़ी चुनौती रही है। एडवर्ड सापिर और बेंजामिन ली वोफ़क ने 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में जिस 'भाषाई सापेक्षता' का प्रतिपादन किया, वह आज न्यूरोलिंग्विस्टिक (तंत्रिका-भाषाविज्ञान)

का मूलाधार बन चुका है। सापिर-वोफक परिकल्पना यह तक्क देती है कि भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि वह मनुष्य के संज्ञान और प्रत्यक्ष ज्ञान की नियामक भी है। मनुष्य जिस भाषा को बोलता है, उसी के अनुसार उसकी विश्वदृष्टि निर्मित होती है। यहाँ भाषाविद् यह स्पष्ट करते हैं कि प्रत्येक भाषा की अपनी विशिष्ट शब्दावली और व्याकरणिक संरचना होती है, जो मनुष्य के मानसिक जगत को एक विशेष सांचे में ढालती है। इस परिकल्पना को दो स्वरूपों में देखा जा सकता है- एक 'मजबूत' संस्करण जो भाषाई नियतिवाद की बात करता है और दूसरा 'कमजोर' संस्करण जो भाषा और विचार के मध्य केवल एक प्रभावपूर्ण संबंध स्वीकार करता है। भाषा किस प्रकार हमारी इंद्रियों के बोध को प्रभावित करती है, इसका उत्कृष्ट उदाहरण 'रंग धारणा' में मिलता है। सापिर-वोफक के सिद्धांत के अनुसार यदि किसी भाषा में विशिष्ट रंगों के लिए शब्द विद्यमान हैं, तो उस भाषा का वक्ता उन रंगों के बीच सूक्ष्म अंतर को अधिक तीव्रता से पहचान सकता है। शिकागो विश्वविद्यालय में कई शोध ने यह प्रमाणित किया है कि भाषा का यह प्रभाव मस्तिष्क के बाएं गोलार्द्ध की प्रधानता के कारण होता है। चूँकि भाषा केंद्र बाएं गोलार्द्ध में स्थित है, इसलिए यह मुख्य रूप से दाहिने दृश्य क्षेत्र की धारणा को भाषाई फिल्टर से गुज़ारता है, जबकि बायाँ दृश्य क्षेत्र भाषा के प्रभाव से मुक्त रह सकता है। यह तथ्य दर्शाता है कि मनुष्य की अवधारणात्मक दुनिया का एक हिस्सा उसकी मातृभाषा से गहराई से संस्कारित होता है। इसके अतिरिक्त 'थ्योरी ऑफ माइंड' के संदर्भ में भी यह पाया गया है कि भाषाई प्रवीणता और दूसरों की इच्छाओं को समझने की मानसिक क्षमता के बीच एक गहरा अंतर्संबंध है। सापिर-वोफक के भाषाई प्रभुत्व के विपरीत आधुनिक भाषाविज्ञान में 'लैंग्वेज ऑफ थॉट' जैसी वैकल्पिक अवधारणाएँ भी उभरी हैं। रेसकोर्ला और फोडोर जैसे विद्वानों ने 'मेंटलीज' की अवधारणा प्रस्तुत की है, जिसके अनुसार मानवीय मस्तिष्क की एक अपनी आंतरिक भाषा होती है जो बाह्य संप्रेषण की भाषा से स्वतंत्र कार्य करती है। यह सिद्धांत यह मानता है कि मानसिक भाषा ही शब्दों को अर्थ प्रदान करती है और वैचारिक घटकों को सुसंगत वाक्यों में पिरोने का कार्य करती है। यहाँ विचार को भाषा पर पूर्ववर्ती माना गया है, जो सापिर-वोफक के सिद्धांतों को एक नई चुनौती प्रदान करता है। यह दृष्टिकोण संज्ञानात्मक सार्वभौमिकता की ओर संकेत करता है, जहाँ भाषाई विविधता के बावजूद सभी मनुष्यों में एक ही प्रकार की आंतरिक 'मेंटलीज' प्रणाली क्रियाशील रहती है। ऐतिहासिक दृष्टि से सापिर-वोफक परिकल्पना को लियोनार्ड ब्लूमफील्ड और नोआम चॉम्स्की जैसे महान भाषाविदों के कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा है। ब्लूमफील्ड का व्यवहारवादी दृष्टिकोण भाषा को केवल 'देखने योग्य व्यवहार' तक सीमित रखता था, जिससे उन्होंने आंतरिक संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं और भाषाई सापेक्षता जैसे अमूर्त प्रत्ययों को हाशिए पर धकेल दिया। दूसरी ओर नोआम चॉम्स्की ने 'सार्वभौमिक व्याकरण' का सिद्धांत प्रस्तुत कर भाषाई सापेक्षता की जड़ों पर प्रहार किया। चॉम्स्की के अनुसार भाषा विचार का प्रतिबिंब मात्र नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के भीतर जन्मजात जैविक संरचना के रूप में विद्यमान है। उनका तक्क है कि दुनिया की सभी भाषाओं के मूल में एक ही सार्वभौमिक ढाँचा है और भाषाई अंतर केवल बाहरी मापदंडों के समायोजन का परिणाम है। चॉम्स्की का यह 'जन्मजात वाद' सापिर-वोफक के उस विचार को खारिज करता है कि भाषा सोच को पूरी तरह नियंत्रित करती है।

भाषा और विचार के संबंध को किसी एक दृष्टिकोण से नहीं समझा जा सकता। जहाँ सापिर-वोफक परिकल्पना भाषाई विविधता और उसके सांस्कृतिक-संज्ञानात्मक प्रभाव पर बल देती है, वहीं चॉम्स्की और फोडोर जैसे विद्वान भाषाई सार्वभौमिकता और जन्मजात मानसिक संरचनाओं की वकालत करते हैं। सापिर-वोफक का सिद्धांत विशेष रूप से भाषाई नियतिवाद के माध्यम से यह समझने का प्रयास करता है कि व्याकरणिक संरचनाएँ मनुष्य के चिंतन को सीमित या विस्तृत कर सकती हैं। इसके विपरीत आधुनिक तंत्रिका-भाषाविज्ञान यह मानता

है कि भाषा अधिग्रहण एक जैविक संकाय है। इस प्रकार भाषा और विचार का यह द्वंद्व मानव चेतना के रहस्यों को समझने की दिशा में एक निरंतर चलने वाली बौद्धिक यात्रा है, जिसमें विविधता और सार्वभौमिकता दोनों का अपना विशिष्ट महत्व है।

4.7 सारबिंदु

- भाषा और विचार का अंतर्संबंध मानव चेतना के रहस्यों को समझने की एक जटिल बौद्धिक यात्रा है, जिसका मूल आधार यह प्रश्न है कि क्या भाषा विचारों की वाहिका मात्र है या वह उनका निर्माण करती है। डॉ। भोलानाथ तिवारी की विवेचनात्मक दृष्टि में यह स्पष्ट होता है कि अर्थ की प्रतीति केवल ध्वनि संकेतों का समूह नहीं, बल्कि एक सूक्ष्म मानसिक व्यापार है, जहाँ शब्द मस्तिष्क में उपस्थित पूर्व-अनुभवों और संकल्पनाओं से टकराकर एक विशिष्ट 'अर्थ-बिंब' जाग्रत करते हैं। इस विमर्श को 18वीं और 19वीं शताब्दी के जर्मन दार्शनिकों- हर्डर और हम्बोल्ट ने दार्शनिक धरातल प्रदान किया, जिन्होंने भाषा को मानवीय आत्मा की सृजनात्मक शक्ति और 'विश्वदृष्टि' का दर्पण माना।
- इसी वैचारिक परंपरा को 20वीं सदी में एडवर्ड सापिर और उनके शिष्य बेजाकिन ली वोफ्फ ने वैज्ञानिक और नृवंशविज्ञानी आधार पर 'भाषाई सापेक्षतावाद' के रूप में प्रतिष्ठित किया। वोफ्फ के अनुसार भाषा एक 'प्रोग्राम' की तरह कार्य करती है जो हमारे संज्ञान और प्रत्यक्ष ज्ञान को संरचित करती है; जैसा कि उन्होंने 'होपी' और यूरोपीय भाषाओं की तुलना में समय और स्थान की भिन्न अवधारणाओं के माध्यम से प्रमाणित किया।
- यह सिद्धांत बताता है कि हमारी मातृभाषा यथार्थ के 'बहुरूपदर्शक प्रवाह' को वर्गीकृत करने के लिए अनजाने में मानसिक रेखाएँ खींच देती है, जिससे व्यक्ति का दृष्टिकोण और सामाजिक व्यवहार प्रभावित होता है।
- आधुनिक न्यूरोसलमिस्टिक शोध, विशेषकर रंग धारणा और 'थ्योरी ऑफ माइंड' के अध्ययन इस बात की पुष्टि करते हैं कि मस्तिष्क का बायाँ गोलार्द्ध भाषाई फिल्टर के माध्यम से प्रत्यक्ष बोध को गहराई से संस्कारित करता है। हालाँकि, इस 'भाषाई नियतिवाद' को लियोनार्ड ब्लूमफील्ड के व्यवहारवाद और विशेषकर नोआम चॉम्स्की के 'सार्वभौमिक व्याकरण' के सिद्धांत से कड़ी चुनौती मिली, जो भाषा को विचार का प्रतिबिंब न मानकर एक जन्मजात जैविक संरचना मानते हैं। साथ ही रेसकोर्ला और फोडोर की 'मेटलीज' जैसी अवधारणाएं अभाषिक चिंतन की संभावना को स्वीकार करती हैं, जहाँ अर्थ की प्रतीति शब्दों पर निर्भर हुए बिना भी संभव है।
- भाषा और विचार का द्वंद्व नियतिवाद और सार्वभौमिकता के बीच एक संतुलन की माँग करता है, जहाँ भाषा वह 'चश्मा' सिद्ध होती है जो यथार्थ को पूर्णतः निर्मित तो नहीं करती, किंतु उसे देखने और वर्गीकृत करने की दिशा निश्चित रूप से निर्धारित करती है।

4.8 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

- बोध प्रश्न
- (I) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न।
 - भाषा और विचार के अंतर्संबंधों की समीक्षा कीजिए। क्या विचार भाषा के बिना संभव है?
 - सापिर-वोफ्फ परिकल्पना (भाषाई सापेक्षतावाद) का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए। इसके 'मजबूत' और 'कमजोर' संस्करणों में क्या अंतर है?

3. हम्बोल्ट की 'विश्वदृष्टि' और 'भाषा के आंतरिक रूप' की अवधारणाओं का भाषाविज्ञान के संदर्भ में महत्व प्रतिपादित कीजिए।
4. अर्थ की प्रतीति की मानसिक प्रक्रिया को समझाते हुए 'अर्थ-बिंब' की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
5. भाषा और विचार के संबंध में नोआम चॉम्स्की के 'सार्वभौमिक व्याकरण' और सापिर-वोफ्फ के 'भाषाई नियतिवाद' के मध्य विरोधाभासों का सविस्तार वर्णन कीजिए।

(II) लघु उत्तरीय प्रश्न।

1. 'भाषाई नियतिवाद' से क्या तात्पर्य है?
2. एडवर्ड सापिर के अनुसार भाषा और संस्कृति का क्या संबंध है?
3. बेंजामिन ली व्हॉर्फ ने 'होपी' भाषा के माध्यम से समय की अवधारणा को किस प्रकार भिन्न बताया?
4. 'मेटलीज' या 'विचार की भाषा' का सिद्धांत क्या है?
5. जोजी। हर्डर ने भाषा और मानवीय चेतना के संबंध में क्या मौलिक विचार रखे?
6. 'अर्थ-बिंब' की जाग्रति कब होती है?
7. न्यूरोसलग्विस्टिक शोध के अनुसार मस्तिष्क का कौन-सा गोलाकार भाषाई फिल्टर का कार्य करता है?
8. 'अभाषिक चिंतन' के दो उदाहरण दीजिए।
9. चॉम्स्की के अनुसार भाषा विचार का प्रतिबिंब है या जन्मजात जैविक संरचना?

(III) वस्तुनिष्ठ प्रश्न।

1. भाषाविद् एडवर्ड सापिर का संबंध किस देश से है?
 (क) जर्मनी
 (ख) इंग्लैण्ड
 (ग) अमेरिका
 (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं
2. 'हिंदी भाषाविज्ञान' पुस्तक के लेखक हैं-
 (क) राजमल बोर
 (ख) रामदेव त्रिपाठी
 (ग) भोलानाथ तिवारी
 (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं
3. बेंजामिन ली व्हॉर्फ ने किस भाषा पर कार्य किया?
 (क) अंग्रेजी
 (ख) होपी
 (ग) जर्मन
 (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

4. एडवर्ड सापिर और बेजामिन ली व्हॉर्फ के मध्य क्या संबंध था?

(क) पिता-पुत्र

(ख) गुरु-शिष्य

(ग) 'क' और 'ख' दोनों

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

5. निम्नलिखित में से 'On Language' किसकी कृति है?

(क) हर्डर

(ख) एडवर्ड सापिर

(ग) बेजामिन ली व्हॉर्फ

(घ) डब्ल्यूवी। हम्बोल्ट

4.9 उपयोगी पाठ्यसामग्री

(क) उपयोगी ग्रंथ

1. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, (1997), भाषाविज्ञान सैद्धान्तिक चिन्तन, दिल्ली-51, राधाकृष्ण प्रकाशन, 81-7119-339-0।
2. देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1966
3. तिवारी, भोलानाथ, (1993), भाषाविज्ञान, नई दिल्ली, किताब महल।
4. शर्मा, डॉ. राजमणि, (2009), आधुनिक भाषा-विज्ञान, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 81-7055-483-7।
5. शर्मा, डॉ। हरीश, (1997), भाषाविज्ञान की रूपरेखा, गाजियाबाद, अमित प्रकाशन, 81-85309-15-9।

(ख) वेब संदर्भ

1. हिंदी निदेशालय, भारत सरकार <https://hindinideshalaya.nic.in>
2. केंद्रीय हिंदी संस्थान <https://www.kendriyahindisansthan.org>
3. ई-पाठशाला (NCERT) <https://epathshala.nic.in>
4. राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय <https://ndl.iitkgp.ac.in>
5. भारतकोश (हिंदी ज्ञानकोश) <https://bharatdiscovery.org>
6. <http://epgpinfibnet.ac.in>
7. <http://www.hindsamay.com>
8. <http://hindnest.acom>
9. <http://www.di.emt.in>
10. <http://www.archive.org>

इकाई 5 ध्वनिविज्ञान

रूपरेखा

- 5.1 उद्देश्य
- 5.2 प्रस्तावना
- 5.3 ध्वनिविज्ञान : स्वरूप और परिभाषा
- 5.4 ध्वनि-अध्ययन के प्रमुख आधार और शाखाएँ
 - 5.4.1 औच्चारणिक ध्वनिविज्ञान
 - 5.4.2 सांवहनिक या प्रासरणिक ध्वनिविज्ञान
 - 5.4.3 श्रावणिक ध्वनिविज्ञान
- 5.5 उच्चारण अवयव और उनका वर्गीकरण
 - 5.5.1 चल अवयव
 - 5.5.2 अचल अवयव
- 5.6 वाग्यंत्र की संरचना और कार्य-प्रणाली
 - 5.6.1 स्वरतंत्रियाँ और अभिकाकल
- 5.7 सारबिंदु
- 5.8 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली
- 5.9 उपयोगी पाठ्यसामग्री

5.1 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थियों को अधोलिखित उद्देश्य प्राप्त होंगे।
- विद्यार्थी भाषा के ध्वन्यात्मक पक्ष और ध्वनि के महत्त्व को समझ सकेंगे।
 - विद्यार्थी ध्वनि-अध्ययन के प्रमुख आधारों और शाखाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
 - विद्यार्थी औच्चारणिक, सांवहनिक तथा श्रावणिक ध्वनिविज्ञान के स्वरूप को समझ सकेंगे।
 - विद्यार्थी मानव वाग्यंत्र की संरचना एवं उच्चारण अवयवों की भूमिका को पहचान सकेंगे।
 - विद्यार्थी शुद्ध उच्चारण और स्पष्ट वाणी के लिए ध्वनि-अध्ययन की उपयोगिता को समझ सकेंगे।

5.2 प्रस्तावना

मानव समाज के लिए भाषा अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त और प्रभावी माध्यम है। इसके माध्यम से मनुष्य अपने विचारों, भावनाओं, अनुभवों और ज्ञान को दूसरों तक पहुँचाता है। भाषा का यह संप्रेषण मुख्यतः ध्वनि पर आधारित होता है, क्योंकि बोली जाने वाली भाषा में ध्वनि ही वह तत्व है जो वक्ता और श्रोता के बीच सेतु का कार्य करता है। इसलिए भाषा के अध्ययन में ध्वनि का विशेष महत्त्व माना गया है। ध्वनि के बिना भाषा का अस्तित्व और उसका व्यावहारिक प्रयोग संभव नहीं है। ध्वनि भाषा की सबसे छोटी और मूल इकाई है। शब्द, वाक्य और अर्थ का निर्माण ध्वनियों के संयोजन से होता है। जब मनुष्य बोलता है तो उसके वाक्-अंगों की सहायता से विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। ये ध्वनियाँ वायु में तरंगों के रूप में फैलती हैं और श्रोता तक पहुँचकर श्रवण प्रक्रिया के माध्यम से

अर्थ ग्रहण कराती हैं। इस पूरी प्रक्रिया को समझने के लिए ध्वनि-अध्ययन आवश्यक हो जाता है। ध्वनि-अध्ययन का उद्देश्य केवल यह जानना नहीं है कि ध्वनि कैसे उत्पन्न होती है, बल्कि यह भी समझना है कि ध्वनि का भौतिक स्वरूप क्या है और श्रोता उसे किस प्रकार ग्रहण करता है। इसी कारण ध्वनि-अध्ययन को एक वैज्ञानिक अध्ययन माना जाता है, जिसमें शरीर-विज्ञान, भौतिक विज्ञान और मनोविज्ञान तीनों का समन्वय दिखाई देता है। ध्वनि के उत्पादन में मानव शरीर की संरचना, ध्वनि के प्रसारण में भौतिक नियम और ध्वनि के ग्रहण में मानसिक प्रक्रिया सक्रिय होती है।

भाषा में ध्वनियों की व्यवस्था सुव्यवस्थित होती है। प्रत्येक भाषा की अपनी ध्वन्यात्मक प्रणाली होती है, जिसके आधार पर उसके शब्द और वाक्य निर्मित होते हैं। ध्वनियों के स्वरूप, उच्चारण-स्थान और उच्चारण-प्रक्रिया के अंतर से भाषाओं में विविधता उत्पन्न होती है। इसी विविधता के कारण एक भाषा की ध्वनियाँ दूसरी भाषा से भिन्न प्रतीत होती हैं। ध्वनि-अध्ययन के माध्यम से इन भिन्नताओं को समझा जा सकता है। ध्वनि का अध्ययन भाषा की शुद्धता, स्पष्टता और प्रभावशीलता को समझने में भी सहायक होता है। सही उच्चारण, उचित ध्वनि-प्रयोग और स्पष्ट वाणी ये सभी ध्वनि-अध्ययन से जुड़े हुए पक्ष हैं। इसके अतिरिक्त, भाषा-शिक्षण, अनुवाद, वाक्-चिकित्सा और भाषिक अनुसंधान जैसे क्षेत्रों में भी ध्वनि-अध्ययन की उपयोगिता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

5.3 ध्वनिविज्ञान : स्वरूप और परिभाषा

ध्वनिविज्ञान भाषा-विज्ञान की वह शाखा है जिसमें मानव द्वारा उच्चरित ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है। भाषा का मौखिक रूप ध्वनियों पर ही आधारित होता है इसलिए ध्वनि भाषा की मूल इकाई मानी जाती है। मनुष्य जब बोलता है, तब उसके शरीर के भीतर स्थित विभिन्न अंगों के सहयोग से ध्वनियों का निर्माण होता है। इन ध्वनियों का उच्चारण, उनका वायु में संचार और श्रोता द्वारा उनका श्रवण इन तीनों प्रक्रियाओं का अध्ययन ध्वनिविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। इस प्रकार ध्वनिविज्ञान भाषिक ध्वनियों को उनके वास्तविक भौतिक रूप में समझने का प्रयास करता है। ध्वनिविज्ञान का संबंध उस प्रक्रिया से है जिसमें फेफड़ों से निकलने वाली वायु कठ ठ, स्वर-तंत्रियों, मुख-विवर और नासिका-विवर से होकर विभिन्न ध्वनियों का रूप ग्रहण करती है। जब मनुष्य श्वास बाहर छोड़ता है, तब वही वायु ध्वनि-निर्माण की मूल शक्ति बनती है। स्वर-तंत्रियों की स्थिति के अनुसार ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। यदि स्वर-तंत्रियाँ क्लृप्त करती हैं तो घोष ध्वनियाँ बनती हैं और यदि वे क्लृप्त नहीं करती तो अघोष ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। यह संपूर्ण प्रक्रिया ध्वनिविज्ञान के अध्ययन का प्रमुख विषय है। ध्वनिविज्ञान में ध्वनियों का अध्ययन उनके उच्चारण-स्थान और उच्चारण-प्रकार के आधार पर किया जाता है। मुख-विवर में स्थित जिह्वा, ओष्ठ, दाँत, तालु आदि की सहायता से ध्वनियाँ भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती हैं। जिह्वा की स्थिति बदलने से ध्वनि का स्वरूप भी बदल जाता है। इसी प्रकार ओष्ठों के संकुचन या प्रसार से अलग-अलग प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। ध्वनिविज्ञान इन सभी क्रियाओं का सूक्ष्म और व्यवस्थित अध्ययन करता है।

ध्वनिविज्ञान का स्वरूप पूर्णतः वैज्ञानिक है। इसमें ध्वनियों का अध्ययन किसी भावनात्मक या साहित्यिक दृष्टि से नहीं, बल्कि शारीरिक और भौतिक तथ्यों के आधार पर किया जाता है। इसमें यह देखा जाता है कि ध्वनि उत्पन्न करते समय कौन-सा अंग सक्रिय रहता है, कौन-सा अंग स्थिर रहता है और वायु किस मार्ग से होकर गुजरती है। यही कारण है कि ध्वनिविज्ञान को भाषा-विज्ञान की आधारशिला माना जाता है, क्योंकि बिना ध्वनि के भाषा की कल्पना नहीं की जा सकती। ध्वनिविज्ञान में यह भी स्पष्ट किया जाता है कि ध्वनि केवल मुख से नहीं, बल्कि संपूर्ण वाग्यंत्र के सहयोग से उत्पन्न होती है। वाग्यंत्र में फेफड़े, श्वासनली,

कंठ, स्वर-तंत्रियाँ, मुख-विवर और नासिका-विवर सम्मिलित होते हैं। इन सभी अंगों का सामूहिक कार्य ध्वनि को जन्म देता है। यदि इनमें से किसी एक अंग में भी व्यवधान उत्पन्न हो जाए, तो ध्वनि-उच्चारण प्रभावित होता है। इस दृष्टि से ध्वनिविज्ञान मानव शरीर की रचना और भाषा के संबंध को भी स्पष्ट करता है। ध्वनिविज्ञान का उद्देश्य केवल ध्वनियों की सूची बनाना नहीं है, बल्कि यह समझना है कि ध्वनियाँ कैसे बनती हैं और वे एक-दूसरे से कैसे भिन्न होती हैं। इसी अध्ययन के माध्यम से स्वर और व्यंजन ध्वनियों में अंतर स्पष्ट होता है। स्वर ध्वनियाँ अपेक्षाकृत स्वतंत्र रूप से निकलती हैं, जबकि व्यंजन ध्वनियों के निर्माण में किसी न किसी अवरोध की आवश्यकता होती है। यह अवरोध जिह्वा, ओष्ठ, दाँत या तालु द्वारा उत्पन्न किया जाता है। ध्वनिविज्ञान का स्वरूप सार्वभौमिक भी है, क्योंकि इसमें किसी एक भाषा की नहीं, बल्कि मानव-भाषा में संभव सभी ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है। इसी कारण ध्वनिविज्ञान के सिद्धांत विभिन्न भाषाओं पर समान रूप से लागू किए जा सकते हैं। भाषाओं में ध्वनियों का अंतर अवश्य होता है, किंतु ध्वनि-निर्माण की मूल प्रक्रिया सभी भाषाओं में समान रहती है। इस तथ्य को समझना ध्वनिविज्ञान का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। ध्वनिविज्ञान में ध्वनि को केवल सुनने की वस्तु नहीं माना जाता, बल्कि उसे एक भौतिक घटना के रूप में देखा जाता है। ध्वनि वायु में तरंगों के रूप में फैलती है और श्रोता के कान तक पहुँचती है। कान के माध्यम से ध्वनि मस्तिष्क तक पहुँचती है और तब उसका अर्थ ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार ध्वनिविज्ञान ध्वनि के उत्पादन से लेकर उसके ग्रहण तक की संपूर्ण प्रक्रिया को अपने अध्ययन क्षेत्र में सम्मिलित करता है।

5.4 ध्वनि-अध्ययन के प्रमुख आधार और शाखाएँ

ध्वनि-अध्ययन भाषा-विज्ञान, का महत्वपूर्ण क्षेत्र है क्योंकि भाषा का मौखिक रूप पूरी तरह ध्वनियों पर आधारित होता है। ध्वनियों का अध्ययन केवल यह जानने तक सीमित नहीं है कि ध्वनि कैसी सुनाई देती है, बल्कि यह भी समझना आवश्यक है कि ध्वनि कैसे उत्पन्न होती है, किस प्रकार माध्यम में संचरित होती है और श्रोता उसे कैसे ग्रहण करता है। इसी समग्र अध्ययन को स्पष्ट करने के लिए ध्वनिविज्ञान को विभिन्न शाखाओं में विभाजित किया गया है। ध्वनि-अध्ययन के प्रमुख आधार इन्हीं शाखाओं के माध्यम से समझे जाते हैं, जिनमें औच्चारणिक, सांवाहनिक या प्रासरणिक तथा श्रावणिक ध्वनिविज्ञान प्रमुख हैं। इन तीनों शाखाओं के माध्यम से ध्वनि के उत्पादन, प्रसार और ग्रहण की पूरी प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है।

5.4.1 औच्चारणिक ध्वनिविज्ञान

औच्चारणिक ध्वनिविज्ञान, ध्वनिविज्ञान की वह शाखा है जिसमें ध्वनियों के उच्चारण-प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है। इसमें यह देखा जाता है कि मानव शरीर के कौन-कौन से अंग ध्वनि-निर्माण में भाग लेते हैं और उनकी भूमिका क्या होती है। जब मनुष्य बोलता है, तब फेफड़ों से निकली वायु श्वासनली से होती हुई कंठ तक पहुँचती है। कंठ में स्थित स्वर-तंत्रियाँ इस वायु के प्रवाह को नियंत्रित करती हैं। स्वर-तंत्रियों के कंपन या अकंपन से ध्वनियों का स्वरूप निर्धारित होता है। औच्चारणिक ध्वनिविज्ञान में मुख-विवर और नासिका-विवर की भूमिका का भी अध्ययन किया जाता है। जिह्वा, ओष्ठ, दाँत, तालु और जबड़ा जैसे उच्चारण-अवयव ध्वनियों को विभिन्न रूप प्रदान करते हैं। जिह्वा की स्थिति बदलने से ध्वनि में परिवर्तन हो जाता है। कभी जिह्वा आगे की ओर जाती है, कभी पीछे की ओर और कभी ऊपर या नीचे की ओर उठती-गिरती है। इसी प्रकार ओष्ठों के संकुचन या प्रसार से ध्वनियों का स्वरूप बदलता है। औच्चारणिक ध्वनिविज्ञान का मुख्य उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि ध्वनियाँ किस प्रकार शारीरिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती हैं। इसमें यह भी देखा जाता है कि कौन-सा अंग चल अवयव के रूप में कार्य करता है और कौन-सा

अचल अवयव के रूप में कार्य करता है। ध्वनि-निर्माण की प्रक्रिया को समझने के लिए यह शाखा अत्यंत उपयोगी है, क्योंकि इसके माध्यम से ध्वनियों का वास्तविक और प्रत्यक्ष स्वरूप सामने आता है। भाषा-शिक्षण और शुद्ध उच्चारण के अध्ययन में औच्चारणिक ध्वनिविज्ञान का विशेष महत्व है।

5.4.2 सांवहनिक या प्रासरणिक ध्वनिविज्ञान

सांवहनिक या प्रासरणिक ध्वनिविज्ञान, ध्वनिविज्ञान की वह शाखा है जिसमें ध्वनियों के भौतिक स्वरूप और उनके प्रसार का अध्ययन किया जाता है। जब ध्वनि उत्पन्न होती है, तो वह वायु में तरंगों के रूप में फैलती है। इन तरंगों की गति, तीव्रता और स्वर-ऊँचाई जैसी विशेषताओं का अध्ययन सांवहनिक ध्वनिविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। इस शाखा में ध्वनि को एक भौतिक घटना के रूप में देखा जाता है। ध्वनि-तरंगें जब वायु में आगे बढ़ती हैं, तो वे दाब और कणन के माध्यम से संचरित होती हैं। इन तरंगों के गुणों के आधार पर ध्वनि के तेज या मंद, ऊँची या नीची होने का पता लगाया जाता है। इस प्रकार सांवहनिक ध्वनिविज्ञान ध्वनि के उस रूप का अध्ययन करता है जो उच्चारण और श्रवण के बीच स्थित होता है। सांवहनिक ध्वनिविज्ञान का महत्व इस बात में है कि यह ध्वनि को मापने और विश्लेषण करने का वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है। इसके माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि अलग-अलग ध्वनियाँ भौतिक रूप से एक-दूसरे से कैसे भिन्न होती हैं। ध्वनि-अध्ययन में यह शाखा इसलिए आवश्यक मानी जाती है, क्योंकि यह ध्वनि को केवल अनुभव की वस्तु न मानकर, मापनीय और विश्लेषण योग्य घटना के रूप में प्रस्तुत करती है।

5.4.3 श्रावणिक ध्वनिविज्ञान

श्रावणिक ध्वनिविज्ञान, ध्वनिविज्ञान की वह शाखा है जिसमें ध्वनियों के श्रवण और ग्रहण की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है। इसमें यह देखा जाता है कि श्रोता ध्वनियों को किस प्रकार सुनता है और उन्हें कैसे पहचानता है। जब ध्वनि तरंगें श्रोता के कान तक पहुँचती हैं, तब वे कान के विभिन्न भागों के माध्यम से मस्तिष्क तक पहुँचती हैं। मस्तिष्क में पहुँचने के बाद ही ध्वनि का बोध होता है। श्रावणिक ध्वनिविज्ञान का संबंध ध्वनि के मानसिक प्रभाव से भी है। एक ही ध्वनि अलग-अलग व्यक्तियों को अलग-अलग रूप में अनुभव हो सकती है। यह शाखा यह स्पष्ट करने का प्रयास करती है कि ध्वनियों का श्रवण कैसे होता है और ध्वनियों की पहचान किन आधारों पर की जाती है। इसमें ध्वनि की तीव्रता, अवधि और स्वर-ऊँचाई जैसी विशेषताओं की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है। श्रावणिक ध्वनिविज्ञान का महत्व इस बात में है कि भाषा केवल उच्चारण से ही पूर्ण नहीं होती, बल्कि उसके सफल संप्रेषण के लिए श्रोता द्वारा सही ग्रहण भी आवश्यक होता है। यदि ध्वनि सही रूप में सुनी और समझी नहीं जाती, तो संप्रेषण बाधित हो जाता है। इस दृष्टि से श्रावणिक ध्वनिविज्ञान ध्वनि-अध्ययन की एक अनिवार्य शाखा है, जो ध्वनि के अंतिम चरण अर्थात् उसके ग्रहण को स्पष्ट करती है।

5.5 उच्चारण अवयव और उनका वर्गीकरण

भाषा के मौखिक रूप का आधार ध्वनि है और ध्वनि का निर्माण मानव शरीर के विभिन्न अंगों के सहयोग से होता है। जिन अंगों की सहायता से भाषिक ध्वनियों का उच्चारण किया जाता है, उन्हें उच्चारण अवयव कहा जाता है। जब मनुष्य बोलता है, तब फेफड़ों से निकली वायु श्वासनली से होकर कंठ में पहुँचती है और आगे मुख-विवर तथा नासिका-विवर से होकर बाहर निकलती है। इस पूरी प्रक्रिया में कई अंग सहायक भूमिका निभाते हैं। इन अंगों की स्थिति, गति और परस्पर संबंध के कारण ही विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न

होती हैं। उच्चारण अवयवों का अध्ययन ध्वनिविज्ञान में इसलिए आवश्यक है, क्योंकि इसके माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि ध्वनियाँ किस प्रकार शारीरिक क्रियाओं का परिणाम हैं। प्रत्येक ध्वनि के निर्माण में किसी न किसी अवयव की भूमिका अवश्य होती है। इन्हीं भूमिकाओं के आधार पर उच्चारण अवयवों का वर्गीकरण किया जाता है। सामान्यतः उच्चारण अवयवों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है चल अवयव और अचल अवयव। यह वर्गीकरण ध्वनि-निर्माण की प्रक्रिया को सरलता से समझने में सहायक होता है।

5.5.1 चल अवयव

चल अवयव वे उच्चारण अंग होते हैं जो ध्वनि-उच्चारण के समय सक्रिय रूप से गति करते हैं। ये अंग अपनी स्थिति बदलकर वायु के प्रवाह को नियंत्रित करते हैं और ध्वनि के स्वरूप में परिवर्तन लाते हैं। ध्वनि-निर्माण की प्रक्रिया में चल अवयवों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि इन्हीं की सक्रियता से ध्वनियों में विविधता उत्पन्न होती है। जिह्वा चल अवयवों में सबसे प्रमुख मानी जाती है। जिह्वा की गति और स्थिति के आधार पर अनेक प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। जिह्वा कभी आगे की ओर जाती है, कभी पीछे की ओर और कभी ऊपर या नीचे की ओर उठती-गिरती है। जिह्वा के इन विभिन्न स्थानों पर जाने से वायु के मार्ग में परिवर्तन होता है और उसी के अनुसार ध्वनि का स्वरूप भी बदल जाता है। इसलिए जिह्वा को उच्चारण प्रक्रिया का सबसे सक्रिय और प्रभावशाली अवयव माना जाता है। ओष्ठ भी महत्वपूर्ण चल अवयव हैं। ओष्ठों के आपस में मिलने, फैलने या दाँतों से स्पर्श करने से विभिन्न ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। कभी ओष्ठ पूरी तरह बंद हो जाते हैं, कभी आंशिक रूप से खुले रहते हैं और कभी गोलाकार हो जाते हैं। ओष्ठों की इन स्थितियों के कारण ध्वनियों में भिन्नता आती है। इस प्रकार ओष्ठ ध्वनि-निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

निचला जबड़ा भी एक चल अवयव है। जबड़े की गति से मुख-विवर का आकार छोटा या बड़ा हो जाता है। जबड़ा नीचे की ओर गिरता है तो मुख-विवर खुला होता है और जब ऊपर की ओर उठता है तो मुख-विवर संकुचित हो जाता है। इस परिवर्तन का प्रभाव ध्वनि के उच्चारण पर पड़ता है। इसलिए जबड़े की भूमिका भी चल अवयवों में गिनी जाती है। कोमल तालु भी चल अवयव के रूप में कार्य करता है। कोमल तालु ऊपर उठकर नासिका-विवर को बंद कर देता है या नीचे गिरकर उसे खुला रहने देता है। इससे यह निर्धारित होता है कि वायु मुख-विवर या नासिका-विवर से निकलेगी। इस प्रकार कोमल तालु ध्वनियों के स्वरूप को प्रभावित करता है। स्वर-तंत्रियाँ भी चल अवयवों में सम्मिलित होती हैं। स्वर-तंत्रियाँ कभी कण्ठपन करती हैं और कभी शिथिल रहती हैं। उनके कण्ठपन की स्थिति में घोष ध्वनियाँ और उनके अकण्ठपन की स्थिति में अघोष ध्वनियाँ बनती हैं।

5.5.2 अचल अवयव

अचल अवयव वे उच्चारण अंग होते हैं, जो स्वयं गति नहीं करते, किंतु चल अवयवों के साथ मिलकर ध्वनि-निर्माण में सहायक होते हैं। ये अंग वायु के प्रवाह के लिए निश्चित स्थान और आधार प्रदान करते हैं। यद्यपि ये स्वयं सक्रिय रूप से नहीं चलते, फिर भी इनके बिना ध्वनि-निर्माण संभव नहीं होता। दाँत अचल अवयवों में प्रमुख स्थान रखते हैं। जब जिह्वा या ओष्ठ दाँतों के संपर्क में आते हैं, तब विशिष्ट प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। दाँत स्वयं स्थिर रहते हैं, किंतु चल अवयवों के स्पर्श से ध्वनि के स्वरूप को प्रभावित करते हैं। कठोर तालु भी एक महत्वपूर्ण अचल अवयव है। जिह्वा जब कठोर तालु की ओर उठती है या उससे संपर्क करती है, तब वायु के प्रवाह में अवरोध उत्पन्न होता है और ध्वनि का रूप बदल जाता है। कठोर तालु स्वयं स्थिर रहता है, परंतु चल अवयवों के सहयोग से ध्वनि-निर्माण में सहायता करता है। ऊपरी मसूड़े और अलिजिह्वा भी अचल अवयवों में गिने जाते

हैं। ये अंग अपनी स्थिर स्थिति में रहकर जिह्वा या अन्य चल अवयवों के लिए आधार का कार्य करते हैं। इनके संपक्क से ध्वनियों के उच्चारण में भिन्नता आती है। मुख-विवर की स्थिर संरचना भी अचल अवयवों के अंतर्गत आती है। मुख-विवर का आकार और बनावट ध्वनि के अनुनाद को प्रभावित करती है। यद्यपि मुख-विवर स्वयं गति नहीं करता, फिर भी उसकी संरचना ध्वनि के स्वरूप को निर्धारित करने में सहायक होती है। अचल अवयवों का महत्व इस बात में निहित है कि ये ध्वनि-निर्माण के लिए आवश्यक स्थिर आधार प्रदान करते हैं। चल अवयव जब इन अचल अवयवों के साथ संपक्क स्थापित करते हैं, तभी स्पष्ट और विशिष्ट ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार अचल अवयव ध्वनि-निर्माण की प्रक्रिया में सहायक और पूरक भूमिका निभाते हैं।

5.6 वाग्यंत्र की संरचना और कार्य-प्रणाली

मानव भाषा के मौखिक रूप का आधार वाग्यंत्र है। वाग्यंत्र उन सभी अंगों का सामूहिक रूप है, जिनकी सहायता से भाषिक ध्वनियों का निर्माण किया जाता है। जब मनुष्य बोलता है, तब उसके शरीर के भीतर स्थित विभिन्न अंग एक निश्चित क्रम और समन्वय के साथ कार्य करते हैं। इस समन्वित प्रक्रिया के परिणामस्वरूप ही स्पष्ट और अर्थपूर्ण ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। वाग्यंत्र की संरचना और उसकी कार्य-प्रणाली को समझे बिना ध्वनिविज्ञान का अध्ययन अधूरा माना जाता है। वाग्यंत्र की संरचना मुख्यतः श्वसन-तंत्र, कंठ तथा मुख-नासिका विवर पर आधारित होती है। ध्वनि-निर्माण की प्रक्रिया श्वसन से आरंभ होती है। फेफड़ों में संचित वायु जब बाहर की ओर प्रवाहित होती है, तभी ध्वनि-निर्माण की संभावना उत्पन्न होती है। यह वायु श्वासनली से होकर कंठ तक पहुँचती है। कंठ वाग्यंत्र का एक अत्यंत महत्वपूर्ण भाग है, क्योंकि यहीं स्वर-तंत्रियाँ स्थित होती हैं। कंठ से आगे यह वायु मुख-विवर या नासिका-विवर से होकर बाहर निकलती है और ध्वनि का अंतिम रूप ग्रहण करती है। वाग्यंत्र की कार्य-प्रणाली को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि ध्वनि-निर्माण एक सतत और क्रमिक प्रक्रिया है। सबसे पहले फेफड़ों से वायु बाहर की ओर जाती है। यह वायु बिना किसी अबरोध के केवल श्वास का कार्य भी कर सकती है, किंतु जब यही वायु कण्ठ में स्थित स्वर-तंत्रियों से होकर गुजरती है, तब वह ध्वनि-निर्माण में सहायक बन जाती है। स्वर-तंत्रियों की स्थिति के अनुसार वायु का प्रवाह नियंत्रित होता है और उसी के आधार पर ध्वनियों का स्वरूप निर्धारित होता है।

कंठ के ऊपर स्थित मुख-विवर और नासिका-विवर वाग्यंत्र के वे भाग हैं, जहाँ ध्वनि को उसका अंतिम रूप प्राप्त होता है। मुख-विवर में जिह्वा, ओष्ठ, तालु, दाँत और जबड़ा जैसे उच्चारण अवयव स्थित होते हैं। ये अवयव वायु के प्रवाह को रोककर, मोड़कर या संकुचित कर विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न करते हैं। नासिका-विवर की भूमिका तब सामने आती है, जब कोमल तालु नीचे की ओर होता है और वायु नासिका-मार्ग से होकर निकलती है। इस प्रकार वाग्यंत्र की संरचना ध्वनि-निर्माण के लिए पूर्ण व्यवस्था प्रदान करती है। वाग्यंत्र की कार्य-प्रणाली में श्वसन और उच्चारण के बीच घनिष्ठ संबंध होता है। सामान्य श्वसन में वायु बिना किसी विशेष नियंत्रण के भीतर और बाहर जाती है, किंतु बोलते समय वायु का प्रवाह नियंत्रित होता है। यह नियंत्रण कण्ठ और स्वर-तंत्रियों द्वारा किया जाता है। इसी नियंत्रित वायु से भाषिक ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। इस दृष्टि से वाग्यंत्र केवल शारीरिक संरचना नहीं, बल्कि एक सक्रिय प्रणाली है।

5.6.1 स्वर-तंत्रियाँ और अभिकाकल

स्वर-तंत्रियाँ वाग्यंत्र का सबसे महत्वपूर्ण अंग मानी जाती हैं। ये कण्ठ के भीतर स्थित होती हैं और ध्वनि-निर्माण में केंद्रीय भूमिका निभाती हैं। स्वर-तंत्रियाँ लचीली पेशियों के रूप में होती हैं, जो आवश्यकतानुसार फैल, सिकुड़ सकती हैं और क्लृप्त कर सकती हैं। जब

फेफड़ों से निकली वायु स्वर-तंत्रियों के बीच से गुजरती है, तब उनकी स्थिति के अनुसार ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। स्वर-तंत्रियों की स्थिति ध्वनि के घोष या अघोष होने का निर्धारण करती है। जब स्वर-तंत्रियाँ पास आकर कृपण करती हैं, तब वायु के प्रवाह से घोष ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। इसके विपरीत, जब स्वर-तंत्रियाँ शिथिल रहती हैं और कृपण नहीं करती, तब अघोष ध्वनियाँ बनती हैं। इस प्रकार स्वर-तंत्रियाँ ध्वनियों के स्वरूप को निर्धारित करने वाला प्रमुख तत्व हैं। स्वर-तंत्रियों की कार्य-प्रणाली केवल कृपण तक सीमित नहीं है। ये वायु के प्रवाह को नियंत्रित कर उसकी तीव्रता और निरंतरता को भी प्रभावित करती हैं। स्वर-तंत्रियों के तनाव में परिवर्तन से ध्वनि की ऊँचाई में भी अंतर आता है। इस प्रकार स्वर-तंत्रियाँ न केवल ध्वनि के अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं, बल्कि उसके गुणों को भी प्रभावित करती हैं।

अभिकाकल वाग्यंत्र का एक महत्वपूर्ण सहायक अंग है। यह कंठ के ऊपरी भाग में स्थित होता है और उसका मुख्य कार्य श्वसन तथा भोजन-ग्रहण की प्रक्रियाओं के बीच संतुलन बनाए रखना है। जब मनुष्य भोजन करता है, तब अभिकाकल श्वासनली के मुख को ढँक लेता है, जिससे भोजन श्वासनली में न जाकर भोजन-नली में चला जाए। इस प्रकार अभिकाकल शरीर की सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ध्वनि-निर्माण के संदर्भ में अभिकाकल अप्रत्यक्ष रूप से सहायक होता है। यह कृठ की संरचना को सुरक्षित रखता है, जिससे स्वर-तंत्रियाँ अपना कार्य सुचारु रूप से कर सकें। यदि अभिकाकल की कार्य-प्रणाली में बाधा उत्पन्न हो, तो न केवल श्वसन और भोजन-ग्रहण प्रभावित होता है, बल्कि ध्वनि-उच्चारण भी बाधित हो सकता है। स्वर-तंत्रियाँ और अभिकाकल मिलकर वाग्यंत्र की कार्य-प्रणाली को संतुलित और प्रभावी बनाते हैं। स्वर-तंत्रियाँ ध्वनि-निर्माण का कार्य करती हैं, जबकि अभिकाकल वाग्यंत्र की संरचना की रक्षा करता है। इन दोनों की संयुक्त भूमिका से ही मनुष्य स्पष्ट, सुरक्षित और निरंतर रूप से बोलने में सक्षम होता है। वाग्यंत्र की संरचना और कार्य-प्रणाली यह स्पष्ट करती है कि ध्वनि-निर्माण एक जटिल किंतु सुव्यवस्थित प्रक्रिया है। फेफड़ों से लेकर मुख-नासिका विवर तक सभी अंग एक निश्चित क्रम में कार्य करते हैं। स्वर-तंत्रियाँ और अभिकाकल इस प्रक्रिया के केंद्र में स्थित होकर वाग्यंत्र को पूर्णता प्रदान करते हैं। ध्वनिविज्ञान में वाग्यंत्र का अध्ययन भाषा की ध्वन्यात्मक संरचना को समझने का आधार प्रस्तुत करता है।

5.7 सारबिंदु

- भाषा की ध्वन्यात्मक व्यवस्था मानव संप्रेषण की सबसे आधारभूत इकाई मानी जाती है। ध्वनि के बिना भाषा की कल्पना नहीं की जा सकती, क्योंकि ध्वनि ही वह माध्यम है जिसके द्वारा विचार, भाव और अर्थ एक व्यक्ति से दूसरे तक पहुँचते हैं।
- ध्वनि-अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि भाषिक ध्वनियाँ कैसे उत्पन्न होती हैं, उनका भौतिक स्वरूप क्या होता है और श्रोता उन्हें किस प्रकार ग्रहण करता है। इसी क्रम में ध्वनिविज्ञान के विभिन्न आधारों और शाखाओं का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है। ध्वनि का उत्पादन मानव के वाक्-अंगों द्वारा होता है। फेफड़ों से निकली वायु कृठ, तालु, दाँत, होंठ, जिह्वा आदि अंगों से होकर गुजरती है और विभिन्न प्रकार की ध्वनियों को जन्म देती है। इन अंगों की स्थिति, गति और परस्पर संपर्क से ध्वनियों में भिन्नता आती है। कुछ ध्वनियाँ अवरोध के साथ बनती हैं, कुछ बिना अवरोध के और कुछ में नासिका का प्रयोग प्रमुख होता है।
- इस प्रकार ध्वनि-निर्माण की प्रक्रिया को समझना भाषा की संरचना को समझने की दिशा में पहला कदम है। ध्वनियों का केवल उच्चारण ही नहीं, बल्कि उनका भौतिक रूप भी अध्ययन का विषय होता है।

- जब ध्वनि उत्पन्न होती है, तो वह तरंगों के रूप में वायु में प्रसारित होती है। इन तरंगों की आवृत्ति, तीव्रता और अवधि के आधार पर ध्वनियों की पहचान की जाती है। यही विशेषताएँ ध्वनि के तीव्र या मंद, ऊँची या नीची, लंबी या छोटी होने का निर्धारण करती हैं। ध्वनि का यह भौतिक पक्ष भाषा को वैज्ञानिक दृष्टि से समझने में सहायता करता है।
- ध्वनि-अध्ययन का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष श्रवण से संबंधित है। जब ध्वनि तरंगें श्रोता के कान तक पहुँचती हैं, तो कान और मस्तिष्क की संयुक्त प्रक्रिया के माध्यम से उनका बोध होता है। श्रोता ध्वनियों को केवल सुनता ही नहीं, बल्कि उन्हें अर्थ से भी जोड़ता है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति की भाषिक आदतें, अनुभव और मानसिक संरचना भी भूमिका निभाती हैं। यही कारण है कि एक ही ध्वनि को अलग-अलग भाषाओं या संदर्भों में भिन्न रूप में समझा जा सकता है।
- भाषिक ध्वनियों का अध्ययन भाषा के अन्य स्तरों से भी जुड़ा हुआ है। शब्द-रचना, रूप-रचना और वाक्य-रचना सभी में ध्वनियों की भूमिका स्पष्ट दिखाई देती है।
- ध्वनियों के परिवर्तन से अर्थ में परिवर्तन आ सकता है, जिससे भाषा की अर्थवत्ता सिद्ध होती है। इसी कारण ध्वनि-अध्ययन न केवल भाषाविज्ञान की एक शाखा है, बल्कि भाषा के समग्र अध्ययन का आधार भी है।

5.8 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

• बोध प्रश्न

(क) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न।

1. ध्वनिविज्ञान का स्वरूप स्पष्ट करते हुए उसकी परिभाषा दीजिए तथा भाषा-विज्ञान में इसके महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. ध्वनि-अध्ययन की प्रमुख शाखाओं का परिचय देते हुए औच्चारणिक, सांवाहनिक (प्रासरणिक) तथा श्रावणिक ध्वनिविज्ञान का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।
3. उच्चारण अवयवों से आप क्या समझते हैं? उनके वर्गीकरण (चल एवं अचल अवयव) को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
4. वाग्यंत्र की संरचना एवं कार्य-प्रणाली का क्रमबद्ध वर्णन कीजिए तथा यह स्पष्ट कीजिए कि ध्वनि-निर्माण की प्रक्रिया कैसे सम्पन्न होती है।
5. स्वर-तंत्रियों और अभिकाकल की भूमिका का विस्तार से वर्णन करते हुए ध्वनि-निर्माण में उनके महत्व को स्पष्ट कीजिए।

(ख) लघु उत्तरीय प्रश्न।

1. ध्वनिविज्ञान किसे कहते हैं?
2. औच्चारणिक ध्वनिविज्ञान का मुख्य अध्ययन-क्षेत्र क्या है?
3. सांवाहनिक ध्वनिविज्ञान को भौतिक विज्ञान से क्यों जोड़ा जाता है?
4. श्रावणिक ध्वनिविज्ञान का भाषा-संप्रेषण में क्या महत्व है?
5. चल उच्चारण अवयवों में जिह्वा का महत्व स्पष्ट कीजिए।
6. अचल उच्चारण अवयवों के दो उदाहरण दीजिए।
7. घोष और अघोष ध्वनियों में अंतर किस आधार पर किया जाता है?

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न।

1. ध्वनि के अध्ययन से संबद्ध शास्त्र को अंग्रेज़ी में क्या कहा जाता है?
(क) फोनेटिक्स
(ख) फोनोलॉजी
(ग) 'क' और 'ख' दोनों
(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं
2. 'आधुनिक भाषाविज्ञान' पुस्तक के लेखक हैं-
(क) राजमल बोरा
(ख) राजमणि शर्मा
(ग) भोलानाथ तिवारी
(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं
3. मानव द्वारा उच्चरित ध्वनियों का अध्ययन भाषाविज्ञान की किस शाखा में किया जाता है?
(क) ध्वनिविज्ञान
(ख) रूपविज्ञान
(ग) अर्थविज्ञान
(घ) वाक्यविज्ञान
4. वाग्यंत्रों का सम्बन्ध किस प्रक्रिया से है?
(क) उच्चारण
(ख) श्रवण
(ग) संवहन
(घ) उपर्युक्त सभी
5. निम्नलिखित में से कौन सा चल वाग्यंत्र है?
(क) दाँत
(ख) तालु
(ग) अभिकाकल
(घ) ओष्ठ

5.9 उपयोगी पाठ्यसामग्री

(क) उपयोगी ग्रंथ

1. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, (1997), भाषाविज्ञान सैद्धान्तिक चिन्तन, दिल्ली-51, राधाकृष्ण प्रकाशन, 81-7119-339-0।
2. देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1966
3. सक्सेना, बाबूराम, (1995), सामान्य भाषाविज्ञान, प्रयाग, हिंदी साहित्य सम्मेलन।
4. तिवारी, भोलानाथ, (1993), भाषाविज्ञान, नई दिल्ली, किताब महल।

5. शर्मा, डॉ. राजमणि, (2009), आधुनिक भाषा-विज्ञान, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 81-7055-483-7।
6. शर्मा, डॉ. हरीश, (1997), भाषाविज्ञान की रूपरेखा, गाजियाबाद, अमित प्रकाशन, 81-85309-15-9।
7. त्रिपाठी, आचार्य रामदेव, (1990), हिंदी भाषाविज्ञान, राजेन्द्र नगर, पटना, बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी

(ख) वेब सदर्थ

1. हिंदी निदेशालय, भारत सरकार <https://hindinideshalaya.nic.in>
2. केंद्रीय हिंदी संस्थान <https://www.kendriyahindisansthan.org>
3. ई-पाठशाला (NCERT) <https://epathshala.nic.in>
4. राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय <https://ndl.iitkgp.ac.in>
5. भारतकोश (हिंदी ज्ञानकोश) <https://bharatdiscovery.org>
6. <http://epgpinfibnet.ac.in>
7. <http://www.hindsamay.com>
8. <http://hindnest.acom>
9. <http://www.di.emt.in>
10. <http://www.archive.org>

इकाई 6 पदविज्ञान

रूपरेखा

- 6.1 उद्देश्य
- 6.2 प्रस्तावना
- 6.3 पद और शब्द का स्वरूप
 - 6.3.1 शब्द का स्वरूप
 - 6.3.2 पद का स्वरूप
 - 6.3.3 शब्द और पद में अन्तर
 - 6.3.4 विभिन्न भाषाओं में शब्द और पद
 - 6.3.5 पद के प्रकार
 - 6.3.6 शब्द से पद बनने की प्रक्रिया
- 6.4 अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व
- 6.5 सम्बन्धतत्त्व के प्रकार
 - 6.5.1 कर्ता-सम्बन्ध
 - 6.5.2 कर्म-सम्बन्ध
 - 6.5.3 करण-सम्बन्ध
 - 6.5.4 सम्प्रदान-सम्बन्ध
 - 6.5.5 अपादान-सम्बन्ध
 - 6.5.6 सम्बन्ध-सम्बन्ध
 - 6.5.7 अधिकरण-सम्बन्ध
 - 6.5.8 विशेषण-विशेष्य सम्बन्ध
 - 6.5.9 क्रिया-विशेषण सम्बन्ध
 - 6.5.10 काल, लिंग और वचन से सम्बन्धित सम्बन्ध
- 6.6 हिंदी में सम्बन्धतत्त्व और रूप-परिवर्तन के कारण
- 6.7 सम्बन्धतत्त्व के कार्य
- 6.8 सारबिंदु
- 6.9 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली
- 6.10 उपयोगी पाठ्यसामग्री

6.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थियों को अधोलिखित उद्देश्य प्राप्त होंगे :-

- विद्यार्थी 'पद' और 'शब्द' के बीच के अंतर को समझ सकेंगे।
- पद और शब्द के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- विद्यार्थी अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व को समझ सकेंगे।
- विद्यार्थी सम्बन्धतत्त्व के कार्यों का विश्लेषण कर सकेंगे।

6.2 प्रस्तावना

भाषा-विज्ञान के अंतर्गत रूपविज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान है। भाषा केवल ध्वनियों का समूह नहीं होती, बल्कि वह सुव्यवस्थित इकाइयों शब्द, पद, रूप और प्रत्ययों से मिलकर बनती है। रूपविज्ञान का सम्बन्ध भाषा की उन्हीं आंतरिक संरचनाओं से है जिनके माध्यम से शब्दों का निर्माण होता है और वे वाक्य में अर्थपूर्ण ढंग से प्रयुक्त होते हैं। इस इकाई में शब्द और पद के स्वरूप, अर्थतत्त्व तथा सम्बन्धतत्त्व जैसे मूलभूत पक्षों का विवेचन किया गया है जो भाषा की संरचनात्मक और व्याकरणिक समझ के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। रूपविज्ञान में यह स्पष्ट किया जाता है कि भाषा की सबसे छोटी अर्थपूर्ण इकाई क्या है और वह वाक्य में किस प्रकार कार्य करती है? शब्द जब तक स्वतंत्र रूप से प्रयोग में आता है, तब तक वह केवल शब्द रहता है; किंतु जैसे ही वह वाक्य में किसी अन्य शब्द से सम्बन्ध स्थापित करता है, वह पद का रूप ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार शब्द और पद का भेद रूपविज्ञान का केंद्रीय विषय बन जाता है। इसके साथ ही यह भी समझना आवश्यक हो जाता है कि शब्दों के बीच जो सम्बन्ध स्थापित होते हैं, वे केवल अर्थ के आधार पर नहीं, बल्कि व्याकरणिक संकेतों के माध्यम से भी व्यक्त होते हैं।

इसी संदर्भ में अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व की अवधारणाएँ सामने आती हैं। अर्थतत्त्व किसी शब्द या पद के मूल अर्थ को प्रकट करता है, जबकि सम्बन्धतत्त्व वाक्य में विभिन्न शब्दों के आपसी सम्बन्ध को स्पष्ट करता है। सम्बन्धतत्त्व के बिना वाक्य में अर्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति संभव नहीं होती। भाषा में काल, लिंग, वचन, पुरुष, कारक आदि की अभिव्यक्ति मुख्यतः सम्बन्धतत्त्व के माध्यम से ही होती है। इस कारण भाषा की व्याकरणिक संरचना को समझने के लिए सम्बन्धतत्त्व का अध्ययन अनिवार्य हो जाता है। भिन्न-भिन्न भाषाओं में सम्बन्धतत्त्व की अभिव्यक्ति के साधन भी भिन्न होते हैं। कहीं प्रत्यय, कहीं उपसर्ग, कहीं शब्द-क्रम, तो कहीं ध्वनि-परिवर्तन के माध्यम से सम्बन्ध प्रकट किया जाता है। हिंदी में 'ने', 'को', 'से', 'में', 'का' आदि परसर्गों, क्रिया-रूपों तथा रूप-परिवर्तन के द्वारा सम्बन्धतत्त्व कार्य करता है। इन रूप-परिवर्तनों के कारण भाषा में लचीलापन और अभिव्यंजना की व्यापकता आती है।

इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को रूपविज्ञान की इन आधारभूत संकल्पनाओं से परिचित कराना है, ताकि वे शब्द, पद, अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व के आपसी सम्बन्ध को स्पष्ट रूप से समझ सकें। यह अध्ययन न केवल व्याकरणिक दृष्टि से उपयोगी है, बल्कि भाषिक विश्लेषण, तुलनात्मक अध्ययन तथा भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में भी अत्यंत सहायक सिद्ध होता है। इस प्रकार प्रस्तुत इकाई भाषा की संरचना को वैज्ञानिक दृष्टि से समझने की दिशा में एक सुदृढ़ आधार प्रदान करती है।

6.3 पद और शब्द का स्वरूप

भाषा-विज्ञान में शब्द और पद की संकल्पनाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। सामान्यतः दैनिक व्यवहार में इन दोनों को समानार्थक समझ लिया जाता है, किंतु भाषावैज्ञानिक दृष्टि से शब्द और पद में स्पष्ट भेद है। रूपविज्ञान के अध्ययन में इस भेद को समझा जाता है, क्योंकि इसी के आधार पर भाषा की आंतरिक संरचना, वाक्य-निर्माण तथा अर्थ-प्रकाशन की प्रक्रिया को सही रूप में समझा जा सकता है।

6.3.1 शब्द का स्वरूप

शब्द भाषा की एक स्वतंत्र इकाई है जो ध्वनियों के संयोजन से बनती है और अपने आप में किसी न किसी अर्थ को प्रकट करती है। शब्द को भाषा की सबसे छोटी स्वतंत्र अर्थपूर्ण इकाई माना जाता है। शब्द का अस्तित्व शब्दकोशीय होता है, अर्थात् वह वाक्य में

प्रयुक्त हो या न हो, तब भी उसका अर्थ बना रहता है। उदाहरण के लिए 'राम', 'लड़का', 'घर', 'खाना' आदि शब्द अपने आप में अर्थपूर्ण हैं और वाक्य के बाहर भी पहचाने जा सकते हैं। शब्दों का निर्माण एक या अधिक ध्वनियों से होता है। ध्वनियाँ मिलकर अक्षर बनाती हैं, अक्षरों से शब्द बनते हैं और शब्दों से वाक्य की रचना होती है। इस प्रकार शब्द भाषा-रचना की एक मूलभूत कड़ी है। शब्द का अध्ययन मुख्यतः उसके रूप, रचना और मूल अर्थ के आधार पर किया जाता है। शब्द-रचना में धातु, मूल, उपसर्ग और प्रत्यय की भूमिका का विशेष महत्व है, जैसे- 'लिख' धातु से लिखना, लिखा, लेखक, लेखन आदि शब्द बनते हैं।

भाषावैज्ञानिक दृष्टि से शब्द दो प्रकार के माने जाते हैं-

1. मूल शब्द
2. व्युत्पन्न शब्द

मूल शब्द वे होते हैं जो बिना किसी रूप-परिवर्तन के प्रयोग में आते हैं जबकि व्युत्पन्न शब्द किसी मूल शब्द या धातु में प्रत्यय या उपसर्ग जोड़ने से बनते हैं। किंतु इन सभी अवस्थाओं में शब्द तब तक केवल शब्द ही रहता है, जब तक वह किसी वाक्य में अन्य शब्दों के साथ सम्बन्ध स्थापित नहीं करता।

6.3.2 पद का स्वरूप

जब कोई शब्द वाक्य में प्रयुक्त होकर अन्य शब्दों के साथ व्याकरणिक सम्बन्ध स्थापित करता है तब वही शब्द पद कहलाता है। इस प्रकार पद शब्द का वह रूप है जो वाक्य में प्रयोग योग्य बन जाता है। सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि वाक्य में प्रयुक्त शब्द ही पद होता है। पद का अस्तित्व वाक्य पर निर्भर होता है, जबकि शब्द का अस्तित्व स्वतंत्र होता है।

उदाहरण के लिए -

'राम' एक शब्द है, लेकिन वाक्य में-

'राम पुस्तक पढ़ता है।'

यहाँ राम पद है क्योंकि वह वाक्य में कर्ता के रूप में प्रयुक्त हुआ है और अन्य पदों यथा 'पुस्तक', 'पढ़ता', 'है' से उसका व्याकरणिक सम्बन्ध स्थापित हुआ है। पद बनने के लिए शब्द में किसी न किसी प्रकार का सम्बन्धतत्त्व जुड़ता है। यह सम्बन्धतत्त्व कारक-चिह्न, परसर्ग, प्रत्यय, ध्वनि-परिवर्तन या शब्द-स्थान के माध्यम से व्यक्त हो सकता है, जैसे-

लड़का - लड़के ने

घर - घर में

राम - राम को

यहाँ स्पष्ट है कि शब्द अपने मूल रूप में वही रहता है किंतु वाक्य में प्रयुक्त होने पर वह पद का रूप ग्रहण कर लेता है।

6.3.3 शब्द और पद में अंतर

शब्द और पद के अंतर को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है-

स्वतंत्रता - शब्द स्वतंत्र होता है, जबकि पद वाक्य पर आश्रित होता है।

प्रयोग - शब्द शब्दकोशीय इकाई है, पद वाक्यात्मक इकाई है।

सम्बन्ध - शब्द में सम्बन्ध आवश्यक नहीं, पद में सम्बन्ध अनिवार्य होता है।

रूप-परिवर्तन - शब्द अपने मूल रूप में रहता है, पद में रूप-परिवर्तन संभव होता है।

व्याकरणिक भूमिका - शब्द केवल अर्थ देता है, पद अर्थ के साथ-साथ व्याकरणिक कार्य भी करता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि शब्द और पद का सम्बन्ध होते हुए भी दोनों समान नहीं हैं।

6.3.4 विभिन्न भाषाओं में शब्द और पद

सभी भाषाओं में शब्द और पद का भेद समान रूप से स्पष्ट नहीं मिलता। संस्कृत और हिंदी जैसी विभक्तिप्रधान भाषाओं में शब्द और पद का अंतर अधिक स्पष्ट है क्योंकि यहाँ विभक्ति-चिह्नों और प्रत्ययों के माध्यम से शब्द पद में परिवर्तित होता है। उदाहरण के लिए संस्कृत में-

रामः, रामम्, रामेण - ये सभी राम शब्द के विभिन्न पद-रूप हैं।

इसके विपरीत चीनी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में शब्द-रूप में अधिक परिवर्तन नहीं होता। वहाँ पद-निर्धारण में शब्द-स्थान की भूमिका अधिक होती है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी में-

Ram killed Mohan.

Mohan Killed Ram.

यहाँ शब्द वही रहते हैं परंतु उनके स्थान बदलने से पद-सम्बन्ध बदल जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि पद-निर्माण का आधार सभी भाषाओं में समान नहीं होता।

6.3.5 पद के प्रकार

व्याकरणिक दृष्टि से पद को उनके कार्य के आधार पर विभिन्न वर्गों में बाँटा जा सकता है-

संज्ञा-पद

सर्वनाम-पद

विशेषण-पद

क्रिया-पद

अव्यय-पद

इन सभी पदों का निर्माण मूलतः शब्दों से ही होता है किंतु वाक्य में प्रयुक्त होकर ही वे पद कहलाते हैं।

6.3.6 शब्द से पद बनने की प्रक्रिया

शब्द से पद बनने की प्रक्रिया मुख्यतः तीन स्तरों पर होती है-

1। रूपात्मक परिवर्तन जैसे- प्रत्यय, विभक्ति आदि

2। स्थान-परिवर्तन

3। ध्वनि-परिवर्तन

हिंदी में अधिकतर पद-निर्माण रूपात्मक परिवर्तन द्वारा होता है जबकि अंग्रेजी में स्थान-परिवर्तन की भूमिका अधिक है। कुछ भाषाओं में ध्वनि-परिवर्तन द्वारा भी पद-सम्बन्ध व्यक्त किया जाता है।

6.4 अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व

भाषा में शब्द केवल ध्वनियों का समूह नहीं होता, बल्कि वह अर्थ से युक्त एक इकाई

होता है। शब्द का जो पक्ष उसके अर्थ से सम्बन्धित होता है उसे अर्थतत्त्व कहा जाता है। जब वही शब्द वाक्य में प्रयुक्त होकर अन्य शब्दों से सम्बन्ध स्थापित करता है, तब उसमें सम्बन्धतत्त्व सक्रिय हो जाता है। इस प्रकार अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व दोनों मिलकर भाषा को अर्थपूर्ण और व्याकरणिक बनाते हैं। अर्थतत्त्व शब्द का वह मूल पक्ष है जो यह बताता है कि शब्द किस वस्तु, गुण, क्रिया या भाव का बोध करा रहा है। इसके विपरीत सम्बन्धतत्त्व शब्दों के बीच स्थापित होने वाले पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करता है। किसी भी वाक्य में केवल अर्थतत्त्व के आधार पर पूर्ण अभिव्यक्ति संभव नहीं होती, जब तक सम्बन्धतत्त्व के द्वारा शब्दों को परस्पर न जोड़ा जाए। अर्थतत्त्व का सम्बन्ध शब्द के मूल अर्थ से होता है। शब्द जब स्वतंत्र रूप में रहता है, तब उसमें अर्थतत्त्व विद्यमान रहता है, किंतु वह किसी अन्य शब्द से जुड़ा हुआ नहीं होता। जैसे 'राम', 'पुस्तक', 'जाना', 'अच्छा'- ये सभी शब्द अपने-अपने अर्थ को व्यक्त करते हैं, परंतु इनसे कोई वाक्य नहीं बनता। यहाँ केवल अर्थतत्त्व उपस्थित है।

जब यही शब्द वाक्य में आते हैं-

'राम पुस्तक पढ़ता है।'

तो यहाँ शब्द केवल अर्थ ही नहीं देते, बल्कि एक-दूसरे से सम्बन्ध भी स्थापित करते हैं। राम कर्ता है, पुस्तक कर्म है और पढ़ता है क्रिया है। इन सम्बन्धों को प्रकट करने वाला तत्त्व सम्बन्धतत्त्व कहलाता है।

अर्थतत्त्व शब्द का स्थायी पक्ष होता है। शब्द के रूप बदल सकते हैं, पर उसका मूल अर्थ प्रायः बना रहता है। जैसे - 'लड़का', 'लड़के', 'लड़कों' - इन तीनों रूपों में 'लड़का' का मूल अर्थ समान है। इसके विपरीत सम्बन्धतत्त्व परिवर्तनशील होता है। वाक्य में शब्द का सम्बन्ध बदलते ही सम्बन्धतत्त्व भी बदल जाता है। अर्थतत्त्व का कार्य वस्तु, व्यक्ति, क्रिया या भाव का बोध कराना है। भाषा में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया- सभी में अर्थतत्त्व पाया जाता है। प्रत्येक शब्द किसी न किसी अर्थ का वाहक होता है। यदि शब्द में अर्थतत्त्व न हो, तो वह भाषा की इकाई नहीं माना जा सकता। सम्बन्धतत्त्व का मुख्य कार्य शब्दों के बीच सम्बन्ध स्थापित करना है। यह सम्बन्ध कर्ता-कर्म, कर्म-क्रिया, विशेषण-विशेष्य, सम्बन्ध, अधिकरण आदि रूपों में प्रकट होता है। सम्बन्धतत्त्व के बिना वाक्य में शब्द असंबद्ध रह जाते हैं और अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता। हिंदी भाषा में सम्बन्धतत्त्व प्रकट करने के अनेक साधन हैं। इनमें परसर्ग, विभक्ति-चिह्न, क्रिया-रूप, लिंग, वचन और काल आदि प्रमुख हैं। जैसे-

राम ने - यहाँ 'ने' कर्ता सम्बन्ध को प्रकट करता है।

सीता को - यहाँ 'को' कर्म सम्बन्ध को व्यक्त करता है।

घर में - यहाँ 'में' अधिकरण सम्बन्ध का बोध कराता है।

अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। अर्थतत्त्व बिना सम्बन्धतत्त्व के अपूर्ण रहता है और सम्बन्धतत्त्व बिना अर्थतत्त्व के निरर्थक होता है। दोनों मिलकर ही भाषा को पूर्ण बनाते हैं। शब्द जब तक केवल अर्थ देता है, तब तक वह सीमित रहता है, पर जैसे ही वह सम्बन्ध में आता है, भाषा की संप्रेषणीयता बढ़ जाती है। सम्बन्धतत्त्व शब्द के साथ जुड़कर उसे पद का रूप देता है। शब्द और पद का मुख्य अंतर यही है कि शब्द में केवल अर्थतत्त्व होता है, जबकि पद में अर्थतत्त्व के साथ-साथ सम्बन्धतत्त्व भी होता है। वाक्य में प्रयुक्त प्रत्येक इकाई पद होती है, क्योंकि वह किसी न किसी सम्बन्ध को व्यक्त कर रही होती है। अर्थतत्त्व मुख्यतः शब्दकोश से सम्बन्धित होता है, जबकि सम्बन्धतत्त्व व्याकरण से। शब्दकोश शब्द के अर्थ को स्पष्ट करता है, पर यह नहीं बताता कि वह शब्द वाक्य में कैसे प्रयुक्त होगा। यह कार्य व्याकरण करता है, और व्याकरण का यह पक्ष सम्बन्धतत्त्व के अंतर्गत आता है।

वाक्य-निर्माण की प्रक्रिया में पहले शब्द का चयन होता है, फिर उन्हें उचित सम्बन्धतत्त्व के माध्यम से जोड़ा जाता है। यदि सम्बन्धतत्त्व का प्रयोग सही न हो, तो वाक्य अशुद्ध हो जाता है। उदाहरण के लिए-

‘राम सीता बुलाया’

यहाँ अर्थतत्त्व मौजूद है, पर सम्बन्धतत्त्व अस्पष्ट है।

जब कहा जाता है-

‘राम ने सीता को बुलाया।’

तो सम्बन्धतत्त्व स्पष्ट हो जाता है और वाक्य पूर्ण बन जाता है।

अर्थतत्त्व स्थिर होता है, किंतु सम्बन्धतत्त्व सापेक्ष होता है। एक ही शब्द अलग-अलग वाक्यों में अलग-अलग सम्बन्ध प्रकट कर सकता है। जैसे-

राम ने फल खाया।

राम को फल पसंद है।

यहाँ ‘राम’ का अर्थ वही है, पर उसका सम्बन्ध अलग-अलग है।

हिंदी में सम्बन्धतत्त्व के माध्यम से काल, लिंग और वचन का भी बोध होता है। क्रिया के रूप बदलने से यह स्पष्ट होता है कि कार्य कब हुआ, कौन कर रहा है और कितने लोग उसमें सम्मिलित हैं। यह सब सम्बन्धतत्त्व के अंतर्गत आता है। अर्थतत्त्व भाषा को अर्थ देता है और सम्बन्धतत्त्व उस अर्थ को व्यवस्थित करता है। भाषा में दोनों की भूमिका समान रूप से आवश्यक है। केवल अर्थ होने से भाषा नहीं बनती और केवल सम्बन्ध होने से भी भाषा संभव नहीं है। दोनों के समन्वय से ही भाषा प्रभावी बनती है। अर्थतत्त्व शब्द का आंतरिक और स्थायी पक्ष है, जबकि सम्बन्धतत्त्व उसका बाह्य और प्रयोगात्मक पक्ष है। शब्द से पद बनने की प्रक्रिया में अर्थतत्त्व आधार बनता है और सम्बन्धतत्त्व उसे वाक्य में स्थापित करता है। भाषा की संरचना को समझने के लिए इन दोनों तत्वों को जानना आवश्यक है।

6.5 सम्बन्धतत्त्व के प्रकार

भाषा में जब शब्द वाक्य में प्रयुक्त होते हैं तब वे एक-दूसरे से विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करते हैं। शब्दों के बीच स्थापित इन सम्बन्धों को ही सम्बन्धतत्त्व कहा जाता है। सभी शब्द समान प्रकार के सम्बन्ध नहीं बनाते, बल्कि वाक्य में उनके कार्य और भूमिका के अनुसार उनके सम्बन्ध भिन्न-भिन्न होते हैं। इन्हीं भिन्नताओं के आधार पर सम्बन्धतत्त्व के प्रकार निर्धारित किए जाते हैं। सम्बन्धतत्त्व के प्रकारों का निर्धारण इस आधार पर किया जाता है कि शब्द वाक्य में किस प्रकार का कार्य कर रहा है और अन्य शब्दों से उसका सम्बन्ध किस रूप में व्यक्त हो रहा है।

6.5.1 कर्ता-सम्बन्ध

कर्ता-सम्बन्ध वह सम्बन्धतत्त्व है जिसके द्वारा यह स्पष्ट होता है कि वाक्य में क्रिया करने वाला कौन है। जिस शब्द के द्वारा क्रिया का संपादन होता है, वही कर्ता कहलाता है। कर्ता और क्रिया के बीच जो सम्बन्ध होता है, उसे कर्ता-सम्बन्ध कहा जाता है। हिंदी में कर्ता-सम्बन्ध प्रायः क्रिया के रूप से व्यक्त होता है। कई स्थितियों में कर्ता के साथ ‘ने’ का प्रयोग करके भी कर्ता-सम्बन्ध स्पष्ट किया जाता है। कर्ता-सम्बन्ध के माध्यम से यह जानकारी मिलती है कि कार्य किसके द्वारा किया गया है। कर्ता-सम्बन्ध वाक्य की संरचना का मूल आधार है, क्योंकि इसके बिना क्रिया का अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता।

6.5.2 कर्म-सम्बन्ध

कर्म-सम्बन्ध वह सम्बन्धतत्त्व है जिसके द्वारा यह बताया जाता है कि क्रिया का प्रभाव किस पर पड़ रहा है। जिस शब्द पर क्रिया का परिणाम पड़ता है, वह कर्म कहलाता है। क्रिया और कर्म के बीच स्थापित सम्बन्ध को कर्म-सम्बन्ध कहा जाता है। हिंदी में कर्म-सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए प्रायः 'को' का प्रयोग किया जाता है। कर्म-सम्बन्ध के द्वारा वाक्य में क्रिया का लक्ष्य स्पष्ट होता है और अर्थ अधिक पूर्ण बनता है। यदि कर्म-सम्बन्ध न हो, तो कई क्रियाओं का अभिप्राय अधूरा रह जाता है।

6.5.3 करण-सम्बन्ध

करण-सम्बन्ध उस स्थिति को प्रकट करता है जिसमें यह बताया जाता है कि क्रिया किस माध्यम से संपन्न हुई है। जिस साधन के द्वारा कार्य किया जाता है, वही करण कहलाता है। हिंदी में करण-सम्बन्ध प्रायः 'से', 'द्वारा' शब्द के माध्यम से व्यक्त होता है। करण-सम्बन्ध से यह स्पष्ट होता है कि क्रिया किस साधन के द्वारा पूरी हुई है। यह सम्बन्धतत्त्व क्रिया की प्रक्रिया को समझने में सहायक होता है।

6.5.4 सम्प्रदान-सम्बन्ध

सम्प्रदान-सम्बन्ध वह सम्बन्धतत्त्व है जिसके द्वारा यह बताया जाता है कि क्रिया किसके लिए की गई है। जिस व्यक्ति या वस्तु के हित में कार्य होता है, वही सम्प्रदान कहलाता है। हिंदी में सम्प्रदान-सम्बन्ध को व्यक्त करने के लिए 'के लिए' का प्रयोग किया जाता है। सम्प्रदान-सम्बन्ध से यह स्पष्ट होता है कि क्रिया का उद्देश्य या लाभार्थी कौन है। यह सम्बन्धतत्त्व वाक्य में उद्देश्यबोध उत्पन्न करता है।

6.5.5 अपादान-सम्बन्ध

अपादान-सम्बन्ध उस स्थिति को व्यक्त करता है जिसमें यह बताया जाता है कि क्रिया किससे अलग होने को प्रकट कर रही है। जिससे पृथक् होने का बोध हो, वही अपादान कहलाता है। हिंदी में अपादान-सम्बन्ध 'से' के माध्यम से व्यक्त होता है। यह सम्बन्धतत्त्व गति, परिवर्तन या अलगाव की स्थिति को स्पष्ट करता है।

6.5.6 सम्बन्ध-सम्बन्ध

सम्बन्ध-सम्बन्ध वह सम्बन्धतत्त्व है जिसके द्वारा दो संज्ञाओं के बीच अधिकार, अपनत्व या पारस्परिक सम्बन्ध प्रकट किया जाता है। यह सम्बन्ध व्यक्ति-व्यक्ति, व्यक्ति-वस्तु या वस्तु-वस्तु के बीच हो सकता है। हिंदी में सम्बन्ध-सम्बन्ध 'का', 'की', 'के' के माध्यम से व्यक्त होता है। यह सम्बन्धतत्त्व सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने में सहायक होता है।

6.5.7 अधिकरण-सम्बन्ध

अधिकरण-सम्बन्ध उस स्थिति को दर्शाता है जिसमें यह बताया जाता है कि क्रिया कहाँ हो रही है या किस स्थान पर घटित हो रही है। क्रिया के स्थान का बोध कराने वाला शब्द अधिकरण कहलाता है। हिंदी में अधिकरण-सम्बन्ध 'में', 'पर' आदि शब्दों के माध्यम से प्रकट होता है। यह सम्बन्धतत्त्व वाक्य को स्थानिक स्पष्टता प्रदान करता है। अधिकरण-सम्बन्ध के बिना क्रिया की स्थिति अस्पष्ट रह जाती है।

6.5.8 विशेषण-विशेष्य सम्बन्ध

जब कोई शब्द किसी संज्ञा की विशेषता बताता है, तब उनके बीच विशेषण-विशेष्य सम्बन्ध होता है। विशेषण शब्द विशेष्य शब्द के गुण, संख्या या अवस्था को प्रकट करता

है। यह सम्बन्धतत्त्व अर्थ को अधिक स्पष्ट और सीमित बनाता है तथा संज्ञा के स्वरूप को विस्तार देता है।

6.5.9 क्रिया-विशेषण सम्बन्ध

क्रिया-विशेषण सम्बन्ध वह सम्बन्धतत्त्व है जिसमें क्रिया के ढंग, समय या स्थिति का बोध होता है। यह सम्बन्धतत्त्व क्रिया की प्रकृति को स्पष्ट करता है। इसके द्वारा यह जानकारी मिलती है कि कार्य किस प्रकार, कब या किस अवस्था में हुआ।

6.5.10 काल, लिंग और वचन से सम्बन्धित सम्बन्ध

काल, लिंग और वचन के आधार पर भी शब्दों में सम्बन्ध स्थापित होता है। क्रिया अपने कर्ता के लिंग और वचन के अनुसार रूप ग्रहण करती है। इसी के माध्यम से वाक्य में सामंजस्य बना रहता है। यह सम्बन्धतत्त्व वाक्य को व्याकरणिक रूप से शुद्ध और अर्थपूर्ण बनाता है।

6.6 हिंदी में सम्बन्धतत्त्व और रूप-परिवर्तन के कारण

हिंदी भाषा में शब्द जब वाक्य में प्रयुक्त होते हैं, तब वे अपने मूल रूप में न रहकर विभिन्न प्रकार के रूप-परिवर्तन को प्राप्त करते हैं। यह रूप-परिवर्तन शब्दों के बीच स्थापित होने वाले सम्बन्धतत्त्व के कारण होता है। शब्द का मूल अर्थ सामान्यतः स्थिर रहता है, किंतु वाक्य में उसका सम्बन्ध बदलते ही उसका रूप भी बदल जाता है। इस प्रकार हिंदी में रूप-परिवर्तन का सीधा सम्बन्ध सम्बन्धतत्त्व से जुड़ा हुआ है। हिंदी में सम्बन्धतत्त्व शब्दों के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करता है। यही सम्बन्धतत्त्व शब्दों को पद का रूप प्रदान करता है। पद बनने की प्रक्रिया में शब्द अपने मूल रूप से हटकर विभक्ति, परसर्ग या क्रिया-रूप के माध्यम से परिवर्तित होता है। इस परिवर्तन के पीछे मुख्य कारण शब्द का अन्य शब्दों से सम्बन्ध स्थापित करना होता है। हिंदी में रूप-परिवर्तन का पहला और प्रमुख कारण कारक-सम्बन्ध है। जब संज्ञा या सर्वनाम वाक्य में कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अधिकरण या अपादान के रूप में प्रयुक्त होते हैं, तब उनके साथ परसर्ग या विभक्ति-चिह्न जुड़ जाते हैं। जैसे ही ये चिह्न जुड़ते हैं, शब्द का रूप बदल जाता है। उदाहरण के रूप में, 'राम' शब्द अपने मूल रूप में एक शब्द है, किंतु 'राम ने', 'राम को', 'राम से', 'राम में' जैसे प्रयोगों में वह अलग-अलग रूप ग्रहण करता है। यह रूप-परिवर्तन सम्बन्धतत्त्व के कारण ही संभव होता है।

दूसरा प्रमुख कारण सम्बन्ध-सम्बन्ध है। जब दो संज्ञाओं के बीच अधिकार या अपनत्व का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है, तब 'का, के, की' जैसे शब्दों का प्रयोग होता है। इनके प्रयोग से शब्द के रूप में परिवर्तन होता है। जैसे- 'राम का घर', 'लड़की की पुस्तक'। यहाँ संज्ञाएँ अपने मूल अर्थ को बनाए रखती हैं, परंतु सम्बन्धतत्त्व के कारण उनके रूप में परिवर्तन दिखाई देता है। हिंदी में रूप-परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारण लिंग है। जब शब्द स्त्रीलिंग या पुल्लिंग के अनुसार प्रयुक्त होता है, तब उसके रूप में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन भी सम्बन्धतत्त्व से जुड़ा होता है, क्योंकि वाक्य में शब्द का सम्बन्ध अन्य शब्दों से सामंजस्य स्थापित करता है। जैसे- 'लड़का गया' और 'लड़की गई'। यहाँ क्रिया का रूप कर्ता के लिंग के अनुसार बदल गया। यह परिवर्तन कर्ता-सम्बन्ध के कारण हुआ है।

इसी प्रकार वचन भी रूप-परिवर्तन का एक प्रमुख कारण है। एकवचन और बहुवचन के अनुसार संज्ञा, सर्वनाम और क्रिया के रूप बदल जाते हैं। जैसे- 'लड़का आता है' और 'लड़के आते हैं'। यहाँ संज्ञा और क्रिया दोनों में रूप-परिवर्तन हुआ है। यह परिवर्तन कर्ता और क्रिया के बीच स्थापित सम्बन्धतत्त्व के कारण संभव हुआ है। काल भी हिंदी में रूप-परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारण है। क्रिया जब भूत, वर्तमान या भविष्य काल में प्रयुक्त

होती है, तब उसके रूप में परिवर्तन होता है। जैसे- ‘वह पढ़ता है’, ‘वह पढ़ रहा था’, ‘वह पढ़ेगा’। यहाँ क्रिया का मूल अर्थ समान है, किंतु काल-सम्बन्ध के कारण उसके रूप बदल गए हैं। यह रूप-परिवर्तन सम्बन्धतत्त्व के अंतर्गत आता है, क्योंकि क्रिया का सम्बन्ध समय से जुड़ जाता है। हिंदी में पुरुष के कारण भी रूप-परिवर्तन होता है। प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष के अनुसार क्रिया के रूप बदल जाते हैं। जैसे- ‘मैं जाता हूँ’, ‘तुम जाते हो’, ‘वह जाता है’। यहाँ कर्ता बदलने के साथ-साथ क्रिया का रूप भी बदल गया। यह परिवर्तन कर्ता-सम्बन्ध और पुरुष-सम्बन्ध के कारण हुआ है।

परसर्गों का प्रयोग हिंदी में रूप-परिवर्तन का एक स्पष्ट कारण है। ‘ने’, ‘को’, ‘से’, ‘में’, ‘पर’ आदि परसर्ग शब्दों के साथ जुड़कर उनके रूप को परिवर्तित कर देते हैं। इन परसर्गों के बिना सम्बन्धतत्त्व की अभिव्यक्ति अधूरी रह जाती है। परसर्गों के जुड़ने से शब्द पद का रूप ग्रहण करता है और वाक्य में उसका स्थान निश्चित हो जाता है। रूप-परिवर्तन का एक अन्य कारण वाक्य में शब्द-स्थान भी है। यद्यपि हिंदी में शब्द-स्थान अपेक्षाकृत स्वतंत्र है, फिर भी कई स्थितियों में शब्दों का स्थान बदलने से उनके सम्बन्ध और अर्थ में परिवर्तन आ जाता है। यह परिवर्तन भी सम्बन्धतत्त्व से जुड़ा हुआ होता है, क्योंकि शब्दों का स्थान उनके पारस्परिक सम्बन्ध को प्रभावित करता है। हिंदी में रूप-परिवर्तन का उद्देश्य केवल व्याकरणिक नहीं होता, बल्कि अर्थ की स्पष्टता भी होता है। जब शब्दों के रूप में परिवर्तन होता है, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि कौन-सा शब्द कर्ता है, कौन-सा कर्म है, किससे क्रिया हो रही है और किसके लिए हो रही है। इस प्रकार रूप-परिवर्तन भाषा में अर्थ की सुस्पष्टता और व्यवस्था बनाए रखता है।

सम्बन्धतत्त्व और रूप-परिवर्तन के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। सम्बन्धतत्त्व बिना रूप-परिवर्तन के स्पष्ट नहीं हो सकता और रूप-परिवर्तन बिना सम्बन्धतत्त्व के निरर्थक हो जाता है। हिंदी भाषा में दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। शब्द जब तक अपने मूल रूप में रहता है, तब तक वह केवल अर्थ का बोध कराता है; किंतु जैसे ही वह सम्बन्धतत्त्व के प्रभाव में आता है, उसका रूप बदल जाता है और वह वाक्य में सक्रिय भूमिका निभाने लगता है।

6.7 सम्बन्धतत्त्व के कार्य

सम्बन्धतत्त्व भाषा में शब्दों के आपसी सम्बन्ध को स्पष्ट करने का कार्य करता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्द जब एक-दूसरे से जुड़ते हैं, तब उनके रूप में जो परिवर्तन दिखाई देता है, वह सम्बन्धतत्त्व के कारण होता है। सम्बन्धतत्त्व शब्दों को केवल जोड़ता ही नहीं, बल्कि उनके बीच के व्याकरणिक अर्थ - जैसे काल, लिंग, वचन आदि को भी व्यक्त करता है। इसी आधार पर वाक्य का अर्थ स्पष्ट, सुबोध और निश्चित बनता है। सम्बन्धतत्त्व का प्रमुख कार्य शब्दों के बीच समय-सूचक सम्बन्ध को प्रकट करना है, जिसे काल के रूप में जाना जाता है। क्रिया या क्रियात्मक पदों में होने वाला रूप-परिवर्तन यह बताता है कि कार्य वर्तमान में हो रहा है, हो चुका है या होने वाला है। इस प्रकार सम्बन्धतत्त्व काल की सूचना देकर वाक्य को अर्थपूर्ण बनाता है। काल-सम्बन्ध के बिना वाक्य अपूर्ण और अस्पष्ट प्रतीत होता है।

सम्बन्धतत्त्व का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य लिंग का बोध कराना है। हिंदी में शब्दों का रूप इस बात पर निर्भर करता है कि वह पुल्लिंग है या स्त्रीलिंग। विशेषण, सर्वनाम और क्रिया-तीनों अपने-अपने रूप में परिवर्तन करके लिंग-सामंजस्य स्थापित करते हैं। यह सामंजस्य सम्बन्धतत्त्व के माध्यम से ही संभव होता है। यदि लिंग-सम्बन्ध स्पष्ट न हो, तो वाक्य में भ्रम उत्पन्न हो सकता है। वचन का निर्धारण भी सम्बन्धतत्त्व का एक प्रमुख कार्य है। शब्द एकवचन में है या बहुवचन में यह बात उसके रूप से प्रकट होती है। संज्ञा, सर्वनाम और क्रिया के रूप में होने वाला यह परिवर्तन वाक्य के अन्य पदों के साथ सम्बन्ध स्थापित करता

है। वचन सम्बन्ध के कारण ही वाक्य में संख्या-बोध स्पष्ट होता है और भाषा की अभिव्यक्ति सटीक बनती है। सम्बन्धतत्त्व शब्दों के बीच पुरुष-सम्बन्ध को भी व्यक्त करता है। वाक्य में कर्ता प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष या उत्तम पुरुष है-इसका प्रभाव क्रिया के रूप पर पड़ता है। क्रिया का रूप कर्ता के अनुसार परिवर्तित होता है और यही परिवर्तन सम्बन्धतत्त्व द्वारा नियंत्रित होता है। इससे वाक्य में वक्ता, श्रोता और अन्य व्यक्ति के बीच का भेद स्पष्ट होता है।

सम्बन्धतत्त्व का एक अन्य कार्य शब्दों के बीच परस्पर निर्भरता को प्रकट करना है। विशेषण अपने विशेष्य के अनुसार और क्रिया अपने कर्ता या कर्म के अनुसार रूप ग्रहण करता है। यह निर्भरता सम्बन्धतत्त्व के बिना संभव नहीं होती। इसी के माध्यम से वाक्य में सामंजस्य और क्रमबद्धता बनी रहती है। कार्यार्थक सम्बन्ध भी सम्बन्धतत्त्व द्वारा स्पष्ट होता है। वाक्य में कौन-सा शब्द किस कार्य में संलग्न है - यह बात शब्द-रूपों के परिवर्तन से ज्ञात होती है। इससे कर्ता, कर्म आदि के बीच का सम्बन्ध स्पष्ट होता है और वाक्य का आशय ठीक प्रकार से समझ में आता है। सम्बन्धतत्त्व के कार्य बहुआयामी हैं। यह काल, लिंग, वचन, पुरुष आदि के माध्यम से शब्दों को परस्पर जोड़ता है और वाक्य को व्याकरणिक रूप से सुसंगठित करता है। शब्द-रूपों में होने वाला प्रत्येक परिवर्तन किसी न किसी सम्बन्ध का सूचक होता है, और वही सम्बन्ध भाषा की अर्थवत्ता को सुदृढ़ करता है।

6.8 सारबिंदु

- इस इकाई में भाषा की संरचना से सम्बन्धित मूलभूत अवधारणाओं का क्रमबद्ध और व्यवस्थित विवेचन प्रस्तुत किया गया है।
- संपूर्ण इकाई का केंद्रबिंदु शब्द, पद, अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व के आपसी सम्बन्धों को स्पष्ट करना है। इसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि भाषा केवल शब्दों का संकलन नहीं है, बल्कि वह नियमों और सम्बन्धों पर आधारित एक संगठित प्रणाली है।
- शब्द और पद के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए यह बताया गया है कि शब्द जब वाक्य-प्रयोग में आते हैं, तब वे पद का रूप ग्रहण करते हैं। पद के रूप में शब्द अन्य पदों से जुड़कर वाक्य में अर्थ का निर्माण करते हैं। इस प्रक्रिया में शब्द का स्वतंत्र अस्तित्व बना रहता है, किंतु उसका कार्य वाक्य-संरचना के अनुरूप निर्धारित होता है।
- अर्थतत्त्व के अंतर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि शब्द का अर्थ केवल शब्दकोशीय नहीं होता, बल्कि वह उसके प्रयोग और सम्बन्ध पर भी निर्भर करता है। शब्दों के बीच स्थापित सम्बन्ध अर्थ को स्पष्ट, विस्तृत और निश्चित बनाते हैं। इसी संदर्भ में अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व के पारस्परिक सम्बन्ध को रेखांकित किया गया है।
- सम्बन्धतत्त्व के विवेचन में यह बताया गया है कि शब्दों के रूप में होने वाला परिवर्तन व्याकरणिक आवश्यकताओं के कारण होता है। काल, लिंग, वचन और पुरुष जैसे तत्त्व शब्दों के बीच सामंजस्य स्थापित करते हैं और वाक्य को व्याकरणिक रूप से सुसंगठित बनाते हैं। इन तत्त्वों के माध्यम से वाक्य का आशय स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है। हिंदी भाषा में सम्बन्धतत्त्व और रूप-परिवर्तन भाषा-प्रयोग की आवश्यकताओं के अनुरूप होते हैं।

6.9 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

- बोध प्रश्न

(I) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न।

1. पद और शब्द की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए उनके स्वरूप, अंतर तथा परस्पर सम्बन्ध का भाषावैज्ञानिक विश्लेषण कीजिए।

2. अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व से आप क्या समझते हैं तथा भाषा और वाक्य-निर्माण में दोनों की भूमिका का उदाहरणों सहित विवेचन कीजिए।
3. सम्बन्धतत्त्व के प्रकारों का वर्गीकरण करते हुए कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अधिकरण, अपादान एवं सम्बन्ध-सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।
4. हिंदी भाषा में सम्बन्धतत्त्व और रूप-परिवर्तन के कारणों का काल, लिंग, वचन, पुरुष एवं परसर्गों के संदर्भ में विश्लेषण कीजिए।
5. सम्बन्धतत्त्व के कार्यों का विस्तार से विवेचन करते हुए स्पष्ट कीजिए कि यह काल, लिंग, वचन और पुरुष के माध्यम से वाक्य को किस प्रकार व्याकरणिक और अर्थपूर्ण बनाता है।

(II) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. शब्द और पद में अंतर स्पष्ट कीजिए।
2. अर्थतत्त्व का अर्थ और महत्व बताइए।
3. सम्बन्धतत्त्व की परिभाषा दीजिए।
4. सम्बन्धतत्त्व के प्रकारों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।
5. हिंदी में रूप-परिवर्तन क्यों आवश्यक है?

(II) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पद का अध्ययन किस विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है?
 - (क) ध्वनिविज्ञान
 - (ख) रूपविज्ञान
 - (ग) 'क' और 'ख' दोनों
 - (घ) वाक्यविज्ञान
2. 'आधुनिक भाषाविज्ञान' पुस्तक के लेखक हैं-
 - (क) राजमल बोरा
 - (ख) राजमणि शर्मा
 - (ग) भोलानाथ तिवारी
 - (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं
3. 'पद' के सम्बन्ध में कौन-सा कथन सही नहीं है -
 - (क) पद चलायमान होते हैं।
 - (ख) पद वाक्य में पाए जाते हैं।
 - (ग) शब्द और प्रत्यय मिलकर पद बनाते हैं।
 - (घ) पद वाक्य-निर्माण की प्रकार्यात्मक इकाई है।
4. "शब्द जब वाक्य-प्रयोग में आते हैं, तब वे पद का रूप ग्रहण करते हैं।" यह वाक्य है-
 - (क) सत्य
 - (ख) असत्य
 - (ग) अर्द्धसत्य
 - (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

5. शब्दों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने वाला तत्व है-

- (क) काल
- (ख) लिंग
- (ग) वचन
- (घ) उपर्युक्त सभी

6.10 उपयोगी पाठ्यसामग्री

(I) उपयोगी ग्रंथ

1. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, (1997), भाषाविज्ञान सैद्धान्तिक चिन्तन, दिल्ली-51, राधाकृष्ण प्रकाशन, 81-7119-339-0।
2. देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1966
3. सक्सेना, बाबूराम, (1995), सामान्य भाषाविज्ञान, प्रयाग, हिंदी साहित्य सम्मेलन
4. तिवारी, भोलानाथ, (1993), भाषाविज्ञान, नई दिल्ली, किताब महल
5. शर्मा, डॉ। राजमणि, (2009), आधुनिक भाषा-विज्ञान, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 81-7055-483-7
6. शर्मा, डॉ। हरीश, (1997), भाषाविज्ञान की रूपरेखा, गाजियाबाद, अमित प्रकाशन, 81-85309-15-9
7. त्रिपाठी, आचार्य रामदेव, (1990), हिंदी भाषाविज्ञान, राजेन्द्र नगर, पटना, बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी

(II) वेब संदर्भ

1. हिंदी निदेशालय, भारत सरकार <https://hindinideshalaya.nic.in>
2. केन्द्रीय हिंदी संस्थान <https://www.kendriyahindisansthan.org>
3. ई-पाठशाला <https://epathshala.nic.in>
4. राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय <https://ndl.iitkgp.ac.in>
5. भारतकोश (हिंदी ज्ञानकोश) <https://bharatdsicover.org>
6. <http://epgp.inflibnet.ac.in>
7. <http://www.hindsamay.com>
8. <http://hindnest.acom>
9. <http://www.di.emt.in>
10. <http://www.archive.org>

इकाई 7 वाक्यविज्ञान

रूपरेखा

- 7.1 उद्देश्य
- 7.2 प्रस्तावना
- 7.3 वाक्य की परिभाषा एवं स्वरूप
- 7.4 वाक्य की आवश्यकताएँ (अनिवार्य तत्व)
- 7.5 वाक्य के अंग (उद्देश्य और विधेय)
- 7.6 वाक्य के भेद (रचना और अर्थ के आधार पर)
- 7.7 पदक्रम, अन्वय और लोप
- 7.8 सारबिंदु
- 7.9 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली
- 7.10 उपयोगी पाठ्यसामग्री

7.1 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थियों को अधोलिखित उद्देश्य प्राप्त होंगे :-
- वाक्य की अवधारणा और भाषा विज्ञान में इसके महत्त्व को समझ सकेंगे।
 - वाक्य के अनिवार्य तत्वों (सार्थकता, योग्यता, आकांक्षा आदि) का विश्लेषण कर सकेंगे।
 - विभिन्न भाषाओं के संदर्भ में वाक्य रचना के नियमों (पदक्रम और अन्वय) में अंतर कर सकेंगे।
 - वाक्य के विभिन्न प्रकारों और उनके संरचनात्मक स्वरूप की पहचान कर सकेंगे।

7.2 प्रस्तावना

भाषा विज्ञान के विस्तृत फलक पर 'वाक्य विज्ञान' वह केंद्रीय अनुशासन है, जो भाषा की संरचनात्मक पूर्णता और संप्रेषणीयता का विश्लेषण करता है। मानवीय भाषा केवल ध्वनियों अथवा शब्दों का यादृच्छिक संचयन नहीं है, अपितु यह एक जटिल और सुव्यवस्थित व्यवस्था है, जहाँ शब्द एक निश्चित व्याकरणिक सांचे में ढलकर ही अर्थ की सार्थकता सिद्ध करते हैं। भाषा की लघुतम इकाई ध्वनि है और सार्थकता की दृष्टि से लघुतम इकाई शब्द या पद है, किंतु विचारों के पूर्ण प्रकटीकरण के लिए 'वाक्य' ही वह आधारभूत और सहज इकाई है जो वक्ता और श्रोता के मध्य वैचारिक सेतु का निर्माण करती है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो पाणिनी से लेकर आधुनिक भाषाविदों तक ने वाक्य को भाषा का वह प्राण माना है, जिसके बिना व्याकरणिक विन्यास की कल्पना असंभव है। वाक्य विज्ञान का मुख्य सरोकार केवल पदों के क्रम को निर्धारित करना नहीं है, बल्कि उन अंतर्निहित नियमों की खोज करना है जिनके माध्यम से सीमित शब्दों के प्रयोग द्वारा असीमित भावों की अभिव्यक्ति संभव हो पाती है। यह अनुशासन पदों के मध्य विद्यमान पारस्परिक संबंधों, उनके रूपात्मक परिवर्तनों और अर्थगत संगति का गहन अध्ययन करता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि कैसे एक पद दूसरे पद से जुड़कर एक समग्र इकाई के रूप में कार्य करता है।

अकादमिक और वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में, वाक्य विज्ञान का अध्ययन केवल एक भाषा की सीमाओं तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह विभिन्न भाषाओं की वाक्य-रचना का तुलनात्मक और वर्णनात्मक विश्लेषण भी प्रस्तुत करता है। जहाँ ध्वनि विज्ञान और पद विज्ञान भाषा के

बाहरी कलेवर और सूक्ष्म अंगों का विश्लेषण करते हैं, वहीं वाक्य विज्ञान उन अंगों के क्रियात्मक संयोजन (Functional Integration) का अध्ययन करता है। आधुनिक भाषाविज्ञान के विकास के साथ, वाक्य विज्ञान के क्षेत्र में ‘गहन संरचना’ और ‘बाहरी संरचना’ जैसे सिद्धांतों ने यह प्रतिपादित किया है कि वाक्यों का निर्माण केवल शब्दों को जोड़ने की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह एक मानसिक व्याकरण का परिणाम है। वाक्य में कर्ता, कर्म, क्रिया और अन्य घटकों का स्थान निर्धारण, लिंग-वचन-पुरुष के आधार पर उनका मेल और वाक्य में शब्दों का लोप या आगम जैसी प्रक्रियाएँ इस विज्ञान के महत्वपूर्ण विषय हैं। अंततः, वाक्य विज्ञान हमें यह समझाने की दृष्टि प्रदान करता है कि भाषा किस प्रकार अपनी संरचनात्मक जटिलता के बावजूद एक अर्थपूर्ण व्यवस्था बनाए रखती है, जो मानवीय चिंतन और सामाजिक विनिमय का मुख्य आधार है।

7.3 वाक्य की परिभाषा एवं स्वरूप

वाक्य विज्ञान के अंतर्गत वाक्य की परिभाषा और उसके वास्तविक स्वरूप को समझना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि यही भाषा की वह इकाई है जहाँ विचार पूर्णता प्राप्त करते हैं। ‘वाक्य’ को प्रायः सार्थक शब्दों का वह समूह माना जाता है जो किसी भाव को पूर्ण रूप से व्यक्त करने की क्षमता रखता है। व्याकरणिक और दार्शनिक परंपरा में इसकी परिभाषा को लेकर गहरा विमर्श रहा है। भारत में पतंजलि (150 ई।पू। के लगभग) और पश्चिम में यूनान के प्रथम आचार्य थ्रेक्स (लगभग पहली सदी ईस्वी पूर्व) दोनों ने ही ‘पूर्ण अर्थ की प्रतीति’ कराने वाले शब्द-समूह को वाक्य की संज्ञा दी है। वाक्यविज्ञान को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से परिभाषित किया है। अरस्तू के अनुसार, “A sentence is a composite significant sound, of sentences is composed from nouns and verbs, but there may be a which certian parts of themselves singnify themselves, for every sentence without verb.” अर्थात् “वाक्य सार्थक ध्वनियों का समूह है, जिससे किसी भाव की अभिव्यक्ति होती है। प्रत्येक वाक्य संज्ञा और क्रिया से बनता है, किंतु क्रिया के बिना भी वाक्य रचना हो सकती है।”

डॉ। भोलानाथ तिवारी ने ‘भाषाविज्ञान’ में वाक्य को परिभाषित करते हुए लिखा है, वाक्य भाषा की सहज इकाई है। जिसमें एक या अधिक शब्द हों। जो अर्थ की दृष्टि से पूर्ण हो या अपूर्ण हो या अपूर्ण व्याकरणिक दृष्टि से अपने विशिष्ट संदर्भ में अवश्य पूर्ण होती है, साथ ही परोक्ष रूप से कम से कम एक क्रिया का भाव अवश्य होता है।

आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा का मानना है कि, “भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक इकाई वाक्य है।”

संक्षेप में कहें तो, भाषा के व्यवहार में वाक्यों की प्रधानता होती है; हम शब्दों में नहीं बल्कि वाक्यों में सोचते और बोलते हैं। व्याकरणवेत्ताओं ने अपनी सुविधा के लिए वाक्यों को तोड़कर पदों या शब्दों में विभाजित किया है, लेकिन यथार्थ यह है कि वाक्य पदों का समूह मात्र नहीं है, बल्कि पद स्वयं वाक्यों के कृत्रिम खंड हैं। इसी विचार को पुष्ट करते हुए भर्तृहरि ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ ‘वाक्यपदीय’ में वाक्य की सत्ता को ही वास्तविक माना है, जो भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक सहज इकाई है। वाक्य के स्वरूप को लेकर भारतीय मीमांसकों में दो प्रमुख सिद्धांत प्रचलित रहे हैं: ‘अन्विताभिधानवाद’ और ‘अभिहितान्वयवाद’। अन्विताभिधानवाद के अनुसार वाक्य ही सार्थक सत्ता है और पद उसके तोड़े गए खंड मात्र हैं, जबकि अभिहितान्वयवाद पदों की स्वतंत्र सार्थक सत्ता स्वीकार करता है और मानता है कि पदों के जुड़ने से वाक्य बनता है। सामग्री में स्पष्ट किया गया है कि आधुनिक भाषा-विज्ञान भर्तृहरि और अन्विताभिधानवाद के मत को अधिक मान्यता देता है। वाक्य के स्वरूप

के दो मुख्य आधार हैं: पहला, वह शब्दों का समूह होता है और दूसरा, वह अपने आप में पूर्ण होता है। हालाँकि, यह कहना कि 'वाक्य हमेशा शब्दों का समूह होता है', पूर्णतः सत्य नहीं है। व्यवहार में एक शब्द का भी वाक्य हो सकता है। उदाहरण के लिए, यदि एक छोटा बच्चा 'बिछुयूट' (बिस्कुट) कहता है, तो वह एक ही शब्द से अपना पूरा भाव व्यक्त कर देता है। बातचीत के दौरान 'कल?', 'परसों', 'हाँ', 'आओ', 'जाओ' जैसे एकल शब्द भी पूर्ण वाक्य का कार्य करते हैं, जिनमें संदर्भ के अनुसार अन्य पदों का लोप होता है।

अर्थ की पूर्णता के दृष्टिकोण से वाक्य का स्वरूप और भी जटिल हो जाता है। सामग्री यह तक्क देती है कि पूर्णता एक सापेक्ष शब्द है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, यदि हम किसी उपन्यास के बीच से एक वाक्य उठाएँ जैसे- 'उसने उससे बहुत बात कह दी', तो व्याकरणिक रूप से यह पूर्ण है, किंतु अर्थ की दृष्टि से यह तब तक अपूर्ण है जब तक हमें इसके पीछे के संदर्भ का ज्ञान न हो। इसी कारण भाषाविदों ने वाक्य की एक 'कामचलाऊ' किंतु व्यापक परिभाषा विकसित की है। इस परिभाषा के अनुसार, वाक्य भाषा की वह सहज इकाई है जिसमें एक या अधिक शब्द (पद) होते हैं, जो अर्थ की दृष्टि से पूर्ण या अपूर्ण हो सकते हैं, किंतु व्याकरणिक दृष्टि से अपने विशिष्ट संदर्भ में अवश्य पूर्ण होते हैं। साथ ही, इसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कम-से-कम एक समापिका क्रिया का होना अनिवार्य है। यह परिभाषा वाक्य को केवल अर्थ के भरोसे न छोड़कर उसे व्याकरणिक सुसंगतता और संदर्भ से जोड़ती है।

अंतिम विश्लेषण में वाक्य के स्वरूप के कुछ विशिष्ट लक्षण उभरकर सामने आते हैं। प्रथम, वाक्य भाषा की सहज इकाई है, जबकि ध्वनि और पद उसके कृत्रिम विश्लेषण के परिणाम हैं। द्वितीय, वाक्य में अर्थ की पूर्णता अनिवार्य नहीं है, जैसा कि 'वह पुस्तक देती है' जैसे वाक्यों में दिखता है जो स्पष्ट होते हुए भी संदर्भ के बिना अपूर्ण हो सकते हैं। तृतीय, वाक्य की असली पहचान उसकी व्याकरणिक पूर्णता है। इसका अर्थ है कि विशिष्ट संदर्भ में वाक्य के लिए अपेक्षित सभी पद वहाँ उपस्थित होने चाहिए। कभी-कभी बोलचाल या साहित्य में अपेक्षित पदों का लोप हो जाता है, जिसे 'अध्याहार' कहा जाता है। जैसे 'तुमने खाना खा लिया?' के उत्तर में केवल 'हाँ' कहना। यहाँ 'हा' अपने आप में पूर्ण वाक्य है क्योंकि श्रोता संदर्भ के आधार पर लुप्त पदों को स्वयं जोड़ लेता है। अतः, वाक्य का स्वरूप उसकी आंतरिक व्याकरणिक संरचना और बाह्य संदर्भ के मेल से निर्धारित होता है, जहाँ समापिका क्रिया उसकी संरचनात्मक धुरी बनी रहती है।

7.4 वाक्य की आवश्यकताएँ (अनिवार्य तत्व)

भारतीय व्याकरणिक परंपरा और आचार्य विश्वनाथ जैसे विद्वानों के अनुसार, शब्दों के किसी भी समूह को वाक्य नहीं कहा जा सकता; एक सार्थक वाक्य के निर्माण के लिए पाँच अनिवार्य तत्वों का होना आवश्यक है: सार्थकता, योग्यता, आकांक्षा, सन्निधि और अन्वया। सर्वप्रथम 'सार्थकता' का अर्थ है कि वाक्य में प्रयुक्त शब्द अर्थवान होने चाहिए, क्योंकि निरर्थक शब्दों का समूह विचार संप्रेषण में अक्षम होता है। दूसरा महत्वपूर्ण तत्व 'योग्यता' है, जिसका तात्पर्य शब्दों के बीच पारस्परिक संगति से है। यदि कोई कहे कि 'वह आग से सींचता है', तो व्याकरणिक दृष्टि से यह सही लग सकता है, किंतु अर्थ के धरातल पर इसमें योग्यता का अभाव है क्योंकि सींचने का कार्य जल से होता है, आग से नहीं। अतः शब्दों में प्रसंगानुकूल भाव बोध कराने की क्षमता होनी चाहिए। तीसरा तत्व 'आकांक्षा' है, जिसे 'इच्छा' भी कहा जाता है। इसका अर्थ यह है कि वाक्य अपने आप में इतना पूर्ण होना चाहिए कि श्रोता के मन में और कुछ जानने की जिज्ञासा शेष न रहे। यदि कोई केवल 'आता है' कहे, तो पाठक के मन में 'कौन आता है?' की आकांक्षा बनी रहेगी, जिससे अर्थ की पूर्णता बाधित

होती है। अतः वाक्य को अर्थ की दृष्टि से परिनिष्ठित होना चाहिए ताकि वह एक पूरा भाव व्यक्त कर सके।

चौथा अनिवार्य तत्व 'सन्निधि' या 'आसत्ति' है, जिसका सीधा संबंध पदों की समीपता से है। यदि वाक्य के शब्द बहुत रुक-रुक कर बोले या लिखे जाएँ, तो वे मिलकर एक पूर्ण भाव व्यक्त नहीं कर पाते। उदाहरण के लिए, यदि 'राम' आज कहा जाए, 'घर' कल और 'जाता है' परसों, तो इसे वाक्य नहीं माना जाएगा क्योंकि पदों के बीच काल और स्थान का उचित सामंजस्य नहीं है। पाँचवाँ और अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व 'अन्वय' है, जिसका अर्थ है व्याकरणिक एकरूपता। वाक्य में कर्ता, कर्म, क्रिया, लिंग, वचन और पुरुष का परस्पर सही मेल होना अनिवार्य है। जैसे हिंदी में 'सीता गए' कहना गलत होगा क्योंकि यहाँ लिंग का क्रिया के साथ अन्वय (Agreement) नहीं है; सही रूप 'सीता गई' होगा। सामग्री के अनुसार, अन्वय के नियम हर भाषा में अलग-अलग होते हैं। जहाँ संस्कृत में विशेषणों में भी वचन और लिंग का अन्वय होता है, वहीं अंग्रेजी में विशेषण प्रायः अपरिवर्तित रहते हैं (जैसे: good boy, good girl, good boys)। अन्वय ही वह सूत्र है जो बिखरे हुए शब्दों को एक व्यवस्थित व्याकरणिक इकाई के रूप में पिरोता है।

इन पाँचों तत्वों के अतिरिक्त, वाक्य की संरचना में 'पदक्रम' (Word Order) और 'अध्याहार' (Ellipsis) की भी विशेष भूमिका होती है। पदक्रम का अर्थ है वाक्य में शब्दों का निश्चित स्थान। हिंदी और अंग्रेजी जैसी भाषाओं में पदक्रम बहुत महत्वपूर्ण है; जैसे 'राम ने मोहन को मारा' और 'मोहन ने राम को मारा' में केवल स्थान परिवर्तन से अर्थ पूरी तरह बदल जाता है। इसके विपरीत, संस्कृत जैसी विभक्ति-प्रधान भाषाओं में पदक्रम लचीला होता है। वहीं 'अध्याहार' या 'लोप' की प्रक्रिया बोलचाल की भाषा में अनिवार्य हो जाती है, जहाँ वक्ता कम-से-कम शब्दों का प्रयोग कर संदर्भ के आधार पर पूर्ण अर्थ संप्रेषित करता है। उदाहरण के लिए, 'तुम कहाँ गए थे?' के उत्तर में केवल 'ऑफिस' कहना यहाँ 'मैं ऑफिस गया था' का बोध कराता है। सामग्री स्पष्ट करती है कि पूर्ण वाक्य वह है जहाँ व्याकरणिक और अर्थगत दोनों स्तरों पर अपेक्षित पदों की उपस्थिति या उनके संदर्भ की स्पष्टता हो। इस प्रकार, सार्थकता से लेकर अन्वय तक के ये तत्व मिलकर ही एक भाषाई संरचना को 'वाक्य' का गौरव प्रदान करते हैं और उसे केवल शब्द-समूह होने से बचाते हैं।

7.5 वाक्य के अंग (उद्देश्य और विधेय)

वाक्य विज्ञान के सैद्धांतिक पक्ष में वाक्य की संरचना का विश्लेषण करने पर यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि प्रत्येक वाक्य, अपनी बाह्य विविधता के बावजूद, आंतरिक रूप से दो मूलभूत घटकों में विभाजित होता है: 'उद्देश्य' (Subject) और 'विधेय' (Predicate)। सामग्री के अनुसार, वाक्य का वह अनिवार्य भाग जिसके विषय में कोई विधान किया जाता है या जिसके संदर्भ में सूचना संप्रेषित की जाती है, उसे 'उद्देश्य' की संज्ञा दी जाती है। तकनीकी दृष्टि से, वाक्य का वह संज्ञा-पद या सर्वनाम-पद जो क्रिया के संपादक के रूप में उभरता है या जिसके इर्द-गिर्द संपूर्ण विमर्श बुना जाता है, वही उद्देश्य है। उदाहरण स्वरूप, यदि हम कहे 'मोहन पुस्तक पढ़ता है', तो यहाँ 'मोहन' वह आधारभूत तत्व है जिसके बारे में जानकारी दी जा रही है। उद्देश्य के बिना वाक्य का अस्तित्व ही संभव नहीं है क्योंकि किसी भी विचार के प्रकटीकरण के लिए एक 'कर्ता' या 'विषय' की उपस्थिति अनिवार्य होती है। प्राचीन भारतीय व्याकरण परंपरा में इसे 'अन्य' भी कहा गया है, जिसकी महत्ता वाक्य के आरंभिक बिंदु के रूप में सर्वोपरि मानी गई है।

वाक्य का दूसरा और क्रियात्मक अंग 'विधेय' है। सामग्री स्पष्ट करती है कि उद्देश्य के संबंध में जो कुछ भी कहा जाता है या जो सूचना विस्तार से दी जाती है, उसे विधेय

कहते हैं। विधेय ही वह खंड है जो वाक्य को गतिशीलता प्रदान करता है और उसे एक 'घटना' या 'स्थिति' के रूप में स्थापित करता है। 'मोहन पुस्तक पढ़ता है' वाक्य में 'पुस्तक पढ़ता है' वह संपूर्ण अंश है जो उद्देश्य (मोहन) की क्रिया और उसके कर्म को रेखांकित कर रहा है। विधेय के अभाव में उद्देश्य केवल एक मृत संज्ञा बनकर रह जाता है, क्योंकि जब तक उस संज्ञा के बारे में कोई विधान नहीं किया जाता, तब तक वह अर्थपूर्ण संप्रेषण का हिस्सा नहीं बन सकता। भाषा विज्ञान की दृष्टि से, विधेय वाक्य का वह हिस्सा है जिसमें अनिवार्य रूप से एक समापिका क्रिया (Finite Verb) अंतर्निहित होती है। सामग्री यह भी संकेत देती है कि विधेय का मुख्य कार्य उद्देश्य की अवस्था, कार्य या स्थिति को पूर्णता प्रदान करना है, जिससे श्रोता को वक्ता के अभिप्राय का बोध हो सके।

इन दोनों अंगों की संरचना केवल एकल पदों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि इनका 'विस्तार' (Expansion) वाक्य को सूक्ष्मता और गहराई प्रदान करता है। 'उद्देश्य का विस्तार' वह प्रक्रिया है जिसमें मुख्य कर्ता के साथ उसके विशेषण, संबंध-कारक या अन्य परिचयात्मक शब्द जोड़ दिए जाते हैं। उदाहरण के लिए, 'दशरथ-पुत्र राम ने वन प्रस्थान किया' वाक्य में केवल 'राम' उद्देश्य नहीं है, बल्कि 'दशरथ-पुत्र राम' का पूरा समूह उद्देश्य के अंतर्गत आता है। यहाँ 'दशरथ-पुत्र' मुख्य उद्देश्य 'राम' की विशिष्टता प्रकट कर रहा है। ठीक इसी प्रकार 'विधेय का विस्तार' भी होता है, जहाँ मुख्य क्रिया के साथ कर्म, कर्म के विशेषण, क्रिया-विशेषण और पूरक शब्दों का संयोजन किया जाता है। 'राम धीरे-धीरे पैदल चलता है' में 'धीरे-धीरे पैदल चलता है' विधेय का विस्तृत रूप है। सामग्री के अनुसार, यह विस्तार वाक्य की अर्थवक्ता को बढ़ाता है, किंतु वाक्य के मूल ढाँचे को विखंडित नहीं करता। अंततः उद्देश्य और विधेय का यह संतुलित संयोजन ही वाक्य को एक सुसंगत व्याकरणिक इकाई बनाता है।

यह समझना आवश्यक है कि उद्देश्य और विधेय के बीच का संबंध ही 'अन्वय' का आधार बनता है। सामग्री के अनुसार, वाक्य में लिंग, वचन और पुरुष का निर्धारण अक्सर उद्देश्य के स्वरूप पर निर्भर करता है, जिसे विधेय की क्रिया प्रतिबिंबित करती है। कभी-कभी साहित्य या सामान्य बोलचाल में उद्देश्य या विधेय के कुछ हिस्सों का 'लोप' (Ellipsis) कर दिया जाता है, जिसे अध्याहार की प्रक्रिया कहते हैं। जैसे- 'कहाँ जा रहे हो?' इस वाक्य में 'तुम' उद्देश्य छिपा हुआ है, लेकिन व्याकरणिक दृष्टि से उसकी सत्ता विद्यमान मानी जाती है। वाक्य विज्ञान हमें सिखाता है कि चाहे वाक्य छोटा हो या महाकाव्यात्मक रूप से बड़ा, उसकी आत्मा इन दो अंगों- उद्देश्य और विधेय- के आपसी सामंजस्य में ही निवास करती है। इन अंगों का विभाजन केवल विश्लेषण की सुविधा के लिए नहीं है, बल्कि यह मानवीय चिंतन की उस प्रक्रिया का प्रतिबिंब है जहाँ हम पहले किसी विषय (उद्देश्य) को चुनते हैं और फिर उसके बारे में कोई सूचना (विधेय) जोड़ते हैं।

7.6 वाक्य के भेद (रचना और अर्थ के आधार पर)

भाषाविज्ञान में वाक्य को भाषा की सबसे महत्वपूर्ण और पूर्ण इकाई माना गया है, क्योंकि भाषा का वास्तविक प्रयोग शब्दों में नहीं, बल्कि वाक्यों में होता है। दी गई सामग्री के अनुसार वाक्य वह भाषिक इकाई है जिसमें एक या अधिक शब्द परस्पर व्याकरणिक संबंध में बँधकर किसी पूर्ण और सार्थक भाव की अभिव्यक्ति करते हैं। केवल शब्दों का समूह वाक्य नहीं कहलाता, जब तक उसमें अर्थ की पूर्णता, व्याकरणिक संगति और भाव-समाप्ति न हो। जैसे 'कहाँ', 'क्यों', 'जाओ', 'आओ' आदि शब्द अपने आप में वाक्य नहीं हैं, किंतु प्रसंग विशेष में वे वाक्य का कार्य करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वाक्य की पहचान केवल शब्द-संख्या से नहीं, बल्कि भाव-बोध से होती है। इसी आधार पर वाक्य के भेद निर्धारित किए जाते हैं। सामग्री में वाक्य के भेदों का विवेचन मुख्यतः दो दृष्टियों से किया गया है

- रचना के आधार पर और अर्थ के आधार पर। रचना के आधार पर वाक्य की आंतरिक संरचना, पद-क्रम, उपवाक्यों की संख्या और उनका आपसी संबंध देखा जाता है, जबकि अर्थ के आधार पर यह स्पष्ट किया जाता है कि वक्ता वाक्य के माध्यम से कौन-सा भाव, सूचना या उद्देश्य व्यक्त कर रहा है। इस प्रकार वाक्य-भेद का यह अध्ययन भाषा की संरचनात्मक और भावात्मक- दोनों प्रवृत्तियों को समझने में सहायक होता है।

रचना के आधार पर वाक्यों का वर्गीकरण करते समय यह देखा जाता है कि वाक्य में कितने उपवाक्य हैं और वे किस प्रकार एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। दी गई सामग्री के अनुसार सरल वाक्य वह होता है जिसमें केवल एक ही उपवाक्य होता है और एक ही क्रिया द्वारा भाव की पूर्ति होती है। ऐसे वाक्य संरचना की दृष्टि से सरल और स्पष्ट होते हैं तथा दैनिक भाषा में इनका प्रयोग अधिक होता है। इसके विपरीत संयुक्त वाक्य में दो या अधिक स्वतंत्र उपवाक्य होते हैं, जो समान स्तर के होते हैं और 'और', 'या', 'लेकिन' जैसे समुच्चयबोधक अव्ययों द्वारा जुड़े रहते हैं। ऐसे वाक्यों में प्रत्येक उपवाक्य अपने आप में पूर्ण होता है, किंतु मिलकर एक व्यापक अर्थ की रचना करता है। मिश्र वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य और एक या अधिक आश्रित उपवाक्य होते हैं। आश्रित उपवाक्य प्रधान वाक्य पर निर्भर रहता है और उसके बिना पूर्ण अर्थ व्यक्त नहीं कर सकता। सामग्री में बताया गया है कि आश्रित उपवाक्य संज्ञा, विशेषण या क्रिया की विशेषता बताने का कार्य करता है। इस प्रकार रचना के आधार पर वाक्य-भेद भाषा की व्याकरणिक संरचना को समझने में अत्यंत सहायक सिद्ध होते हैं।

अर्थ के आधार पर वाक्य भेद का निर्धारण इस बात पर किया जाता है कि वाक्य के द्वारा कौन-सा भाव या उद्देश्य व्यक्त किया जा रहा है। दी गई सामग्री के अनुसार अर्थ की दृष्टि से वाक्य कथनात्मक, प्रश्नवाचक, आज्ञार्थक, निषेधात्मक, इच्छावाचक, विस्मयादिबोधक आदि हो सकते हैं। कथनात्मक वाक्य में किसी तथ्य या स्थिति का साधारण कथन किया जाता है, जैसे- 'राम घर जाता है।' प्रश्नवाचक वाक्य में जिज्ञासा या प्रश्न का भाव होता है, जैसे- 'राम कहाँ जाता है?' आज्ञार्थक वाक्य में आदेश, विनय या परामर्श व्यक्त किया जाता है, जैसे- 'तुम घर जाओ।' निषेधात्मक वाक्य में किसी कार्य का निषेध किया जाता है, जैसे- 'राम घर नहीं जाता।' इच्छावाचक वाक्य में कामना या इच्छा प्रकट होती है, जबकि विस्मयादिबोधक वाक्य में आश्चर्य, दुःख या हर्ष का भाव व्यक्त होता है। सामग्री में यह भी स्पष्ट किया गया है कि कई बार एक ही वाक्य रचना की दृष्टि से सरल होता है, किंतु अर्थ की दृष्टि से वह प्रश्नवाचक या आज्ञार्थक हो सकता है। इससे सिद्ध होता है कि रचना और अर्थ- दोनों आधार स्वतंत्र होते हुए भी परस्पर संबंधित हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वाक्य के भेदों का अध्ययन केवल व्याकरणिक नियमों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह भाषा के व्यवहारिक और भावात्मक पक्ष को भी उजागर करता है। दी गई सामग्री में यह प्रतिपादित किया गया है कि भाषा का उद्देश्य केवल सूचना देना नहीं, बल्कि भावों का संप्रेषण भी है, और यह कार्य वाक्य के माध्यम से ही संभव होता है। रचना के आधार पर वाक्य हमें भाषा की आंतरिक बनावट और नियमबद्धता से परिचित कराते हैं, जबकि अर्थ के आधार पर वाक्य भाषा के जीवंत और संप्रेषणात्मक स्वरूप को स्पष्ट करते हैं। दोनों आधारों का संयुक्त अध्ययन भाषा-विज्ञान के लिए अनिवार्य है, क्योंकि इससे न केवल वाक्य की संरचना स्पष्ट होती है, बल्कि यह भी समझ में आता है कि विभिन्न परिस्थितियों में वक्ता किस प्रकार भाषा का प्रयोग करता है। इस प्रकार 'वाक्य के भेद (रचना और अर्थ के आधार पर)' का अध्ययन भाषा को वैज्ञानिक, व्यवस्थित और व्यवहारिक दृष्टि से समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

7.7 पदक्रम, अन्वय और लोप

भाषा में वाक्य की स्पष्टता और अर्थबोध के लिए पदों का एक निश्चित क्रम अत्यंत आवश्यक होता है। दी गई सामग्री के अनुसार वाक्य में शब्दों या पदों की जो क्रमबद्ध व्यवस्था होती है, उसे पदक्रम कहा जाता है। हिंदी भाषा में सामान्यतः कर्ता-कर्म-क्रिया का क्रम पाया जाता है, जिससे वाक्य का अर्थ सहज रूप से स्पष्ट हो जाता है। पदक्रम के माध्यम से ही यह निर्धारित होता है कि वाक्य में कौन-सा पद किस पद से संबद्ध है और उसका व्याकरणिक कार्य क्या है। यदि पदक्रम में परिवर्तन कर दिया जाए, तो कई बार वाक्य का अर्थ अस्पष्ट या परिवर्तित हो जाता है। सामग्री में यह स्पष्ट किया गया है कि पदक्रम केवल यांत्रिक व्यवस्था नहीं है, बल्कि अर्थ-निर्माण की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। हिंदी में अपेक्षाकृत पदक्रम की स्वतंत्रता पाई जाती है, किंतु फिर भी अर्थ की स्पष्टता के लिए एक सामान्य क्रम का पालन किया जाता है। इस प्रकार पदक्रम भाषा की संरचना को संतुलित और बोधगम्य बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अन्वय का संबंध वाक्य में प्रयुक्त पदों के आपसी संबंध और उनके अर्थात्मक समन्वय से है। दी गई सामग्री के अनुसार अन्वय का आशय यह है कि वाक्य के विभिन्न पद किस प्रकार एक-दूसरे से जुड़कर संपूर्ण अर्थ की रचना करते हैं। जब किसी वाक्य का सामान्य पदक्रम उलट जाता है या जटिल हो जाता है, तब अन्वय के माध्यम से पदों का सही संबंध स्थापित किया जाता है। विशेष रूप से काव्यात्मक भाषा में पदक्रम प्रायः उलट-पुलट होता है, जिससे अर्थ समझने में कठिनाई आती है। ऐसे में अन्वय के द्वारा पदों को उनके स्वाभाविक क्रम में रखकर अर्थ स्पष्ट किया जाता है। सामग्री में बताया गया है कि अन्वय न केवल वाक्य के अर्थ को स्पष्ट करता है, बल्कि भाषा की सूक्ष्मता और अभिव्यंजना-शक्ति को भी उजागर करता है। अन्वय के बिना जटिल वाक्यों या काव्य-पंक्तियों का सही अर्थ ग्रहण करना कठिन हो जाता है। इसलिए व्याकरण और साहित्य-दोनों दृष्टियों से अन्वय का अध्ययन आवश्यक माना गया है।

लोप भाषा की एक स्वाभाविक और अर्थपूर्ण प्रवृत्ति है, जिसमें वाक्य के कुछ पद या अवयव प्रयुक्त न होकर भी अर्थ स्पष्ट रहता है। दी गई सामग्री के अनुसार जब वाक्य में किसी पद का प्रयोग न करके भी उसका अर्थ संदर्भ से समझ में आ जाता है, तो उसे लोप कहा जाता है। उदाहरण स्वरूप, संवाद में कई बार कर्ता या क्रिया का प्रयोग नहीं किया जाता, फिर भी श्रोता अर्थ को सहज रूप से ग्रहण कर लेता है। लोप भाषा को संक्षिप्त, प्रभावी और प्रवाहपूर्ण बनाता है। सामग्री में यह भी बताया गया है कि लोप का प्रयोग सामान्य बोलचाल की भाषा में अधिक होता है, किंतु साहित्यिक भाषा में भी इसका सौंदर्यात्मक प्रयोग देखा जाता है। लोप के कारण वाक्य बोझिल नहीं होते और भावों की अभिव्यक्ति सरल ढंग से हो जाती है। इस प्रकार लोप भाषा की अर्थग्रहण-क्षमता और संदर्भ-बोध पर आधारित होता है।

पदक्रम, अन्वय और लोप- तीनों तत्व परस्पर संबंधित होकर वाक्य की संरचना और अर्थ को स्पष्ट करते हैं। दी गई सामग्री के अनुसार पदक्रम वाक्य की बाहरी व्यवस्था को नियंत्रित करता है, अन्वय आंतरिक अर्थ-संबंध को स्पष्ट करता है और लोप भाषा को संक्षिप्त एवं प्रभावशाली बनाता है। तीनों का संतुलित प्रयोग भाषा को न केवल व्याकरणिक रूप से सही बनाता है, बल्कि संप्रेषण की दृष्टि से भी सशक्त करता है। यदि पदक्रम अव्यवस्थित हो, अन्वय अस्पष्ट हो और लोप का प्रयोग अनुचित हो, तो वाक्य का अर्थ भ्रमपूर्ण हो सकता है। इसलिए भाषा के अध्ययन में इन तीनों का सम्यक् ज्ञान आवश्यक है। इस प्रकार 'पदक्रम, अन्वय और लोप' भाषा की संरचनात्मक स्पष्टता, अर्थबोध और अभिव्यक्ति-शैली को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण विषय हैं।

7.8 सारबिंदु

- वाक्य भाषा की वह मूल इकाई है जिसके माध्यम से पूर्ण और अर्थपूर्ण संप्रेषण संभव होता है। शब्द और पद अपने आप में अर्थ की संभावना रखते हैं, किंतु वे तभी सार्थक बनते हैं जब व्याकरणिक संबंध में बँधकर वाक्य का रूप ग्रहण करते हैं।
- वाक्य की पूर्णता उसके अर्थबोध, संरचनात्मक संगति और भाव-समाप्ति से निर्धारित होती है। यही कारण है कि भाषा का वास्तविक प्रयोग वाक्य के स्तर पर ही होता है।
- वाक्य न केवल सूचना के संप्रेषण का साधन है, बल्कि वह वक्ता के विचार, भावना, इच्छा, आदेश और प्रतिक्रिया को भी अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार वाक्य भाषा की संप्रेषणात्मक शक्ति का केंद्रीय आधार है।
- वाक्य का स्वरूप उसकी आंतरिक संरचना, पदों की व्यवस्था और अर्थगत संगठन से निर्मित होता है। सामान्यतः कर्ता, कर्म और क्रिया के पारस्परिक संबंध से वाक्य की संरचना पूर्ण होती है, किंतु प्रयोग के अनुसार इसमें लचीलापन भी पाया जाता है।
- वाक्य का स्वरूप स्थिर न होकर संदर्भ और प्रयोजन के अनुसार परिवर्तनीय होता है। कथन, प्रश्न, आदेश, निषेध या विस्मय जैसी स्थितियों में वाक्य की रचना भिन्न हो सकती है, परंतु उसका मूल उद्देश्य सदैव स्पष्ट और प्रभावी अर्थ-प्रेषण ही रहता है। इस दृष्टि से वाक्य संरचनात्मक और भावात्मक - दोनों पक्षों को समाहित करता है।
- रचना के आधार पर वाक्य की संरचना, उपवाक्यों की संख्या और उनके आपसी संबंध को समझा जाता है, जिससे भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था स्पष्ट होती है। वहीं अर्थ के आधार पर वाक्य का वर्गीकरण वक्ता के उद्देश्य और भाव की पहचान कराता है। इन दोनों दृष्टियों से किया गया वाक्य-अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भाषा केवल नियमों का ढाँचा नहीं है, बल्कि वह व्यवहार और संप्रेषण से जुड़ी हुई जीवंत प्रक्रिया है।
- एक ही वाक्य संरचना की दृष्टि से सरल हो सकता है, किंतु अर्थ की दृष्टि से वह जटिल भावों को व्यक्त कर सकता है।
- वाक्य की स्पष्टता और प्रभावशीलता में पदक्रम, अन्वय और लोप की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
- पदक्रम वाक्य में पदों की क्रमबद्ध व्यवस्था को नियंत्रित करता है, जिससे अर्थ सहज और स्पष्ट बनता है।
- अन्वय के माध्यम से पदों के आपसी संबंध को स्थापित कर अर्थ को स्पष्ट किया जाता है, विशेष रूप से तब जब संरचना जटिल हो जाती है।
- लोप भाषा की वह प्रवृत्ति है जिसमें कुछ पदों के अभाव में भी संदर्भ के आधार पर अर्थ ग्रहण किया जा सकता है। इन तीनों तत्वों का संतुलित प्रयोग भाषा को संक्षिप्त, सुस्पष्ट और प्रभावशाली बनाता है।

समग्र रूप से वाक्य का अध्ययन भाषा की संरचना, अर्थ और प्रयोग- तीनों स्तरों को समझने में सहायक है। वाक्य के बिना न तो भाषा का व्यवस्थित स्वरूप स्पष्ट होता है और न ही भावों का सार्थक संप्रेषण संभव होता है। इस प्रकार वाक्य भाषा-विज्ञान का केंद्रीय विषय है, जो भाषा को वैज्ञानिक और व्यावहारिक-दोनों दृष्टियों से समझने का आधार प्रदान करता है।

7.9 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

- बोध प्रश्न

(I) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न।

1. वाक्य की परिभाषा देते हुए उसके प्रमुख अंगों (उद्देश्य और विधेय) की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
2. वाक्य के अनिवार्य तत्वों (सार्थकता, योग्यता, आकांक्षा, सन्निधि, अन्वय) पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
3. रचना के आधार पर वाक्य के भेदों का सोदाहरण वर्णन कीजिए।

(II) लघु उत्तरीय प्रश्न।

- निम्नलिखित बिन्दुओं पर टिप्पणी लिखिए।

1. वाक्य विज्ञान का स्वरूप।
2. अन्वय और पदक्रम का महत्त्व।
3. क्रियायुक्त बनाम क्रियाविहीन वाक्य।
4. पदबंध की अवधारणा।
5. लोप और अध्याहार।
6. उपवाक्य के प्रकार।

(III) वस्तुनिष्ठ प्रश्न।

1. वाक्य के कितने अंग हैं?
(क) दो (ख) तीन
(ग) चार (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं
2. 'भाषाविज्ञान की रूपरेखा' पुस्तक के लेखक हैं-
(क) राजमल बोरा (ख) हरीश शर्मा
(ग) भोलानाथ तिवारी (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं
3. हिंदी भाषा में मान्य पदक्रम है -
(क) क्रिया-कर्ता-कर्म (ख) कर्ता-क्रिया-कर्म
(ग) कर्म-कर्ता-क्रिया (घ) कर्ता-कर्म-क्रिया
4. वाक्य का वह अनिवार्य भाग जिसके विषय में कोई विधान किया जाता है या जिसके संदर्भ में सूचना संप्रेषित की जाती है, उसे की संज्ञा दी जाती है।
(क) उद्देश्य (ख) विधेय
(ग) 'क' और 'ख' दोनों (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

7.10 उपयोगी पाठ्यसामग्री

(क) उपयोगी ग्रंथ

1. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, (1997), भाषाविज्ञान सैद्धान्तिक चिन्तन, दिल्ली-51, राधाकृष्ण प्रकाशन, 81-7119-339-0।

2. देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1966
3. सक्सेना, बाबूराम, (1995), सामान्य भाषाविज्ञान, प्रयाग, हिंदी साहित्य सम्मेलन।
4. तिवारी, भोलानाथ, (1993), भाषाविज्ञान, नई दिल्ली, किताब महल।
5. शर्मा, डॉ। राजमणि, (2009), आधुनिक भाषा-विज्ञान, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 81-7055-483-7।
6. शर्मा, डॉ। हरीश, (1997), भाषाविज्ञान की रूपरेखा, गाजियाबाद, अमित प्रकाशन, 81-85309-15-9।
7. त्रिपाठी, आचार्य रामदेव, (1990), हिंदी भाषाविज्ञान, राजेन्द्र नगर, पटना, बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी

(ख) वेब संदर्भ

1. हिंदी निदेशालय, भारत सरकार <https://hindinideshalaya.nic.in>
2. केंद्रीय हिंदी संस्थान <https://www.kendriyahindisansthan.org>
3. ई-पाठशाला (NCERT) <https://epathshala.nic.in>
4. राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय <https://ndl.iitkgp.ac.in>
5. भारतकोश (हिंदी ज्ञानकोश) <https://bharatdiscovery.org>
6. <http://epgpinflibnet.ac.in>
7. <http://www.hindsamay.com>
8. <http://hindnest.com>
9. <http://www.di.emt.in>
10. <http://www.archive.org>

इकाई 8 अर्थविज्ञान

रूपरेखा

- 8.1 उद्देश्य
- 8.2 प्रस्तावना
- 8.3 अर्थविज्ञान की परिभाषा एवं स्वरूप
- 8.4 अर्थ की अवधारणा
- 8.5 अर्थ की प्रतीति
- 8.6 शब्द और अर्थ का संबंध
- 8.7 अर्थबोध के साधन
- 8.8 अर्थ-परिवर्तन
- 8.9 अर्थ-परिवर्तन की दिशाएँ
 - 8.9.1 अर्थ-विस्तार
 - 8.9.2 अर्थ-संकोच
 - 8.9.3 अर्थादेश/अर्थांतरण
- 8.10 अर्थ-परिवर्तन के कारण
 - 8.10.1 बल का अपसरण
 - 8.10.2 वातावरण में परिवर्तन
 - 8.10.3 नम्रता-प्रदर्शन
 - 8.10.4 अशोभन के लिए शोभन का प्रयोग
 - 8.10.5 सादृश्य
 - 8.10.6 अज्ञान और अंधविश्वास
 - 8.10.7 शब्दों का अधिक प्रयोग और संक्षिप्तिकरण
- 8.11 सारबिंदु
- 8.12 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली
- 8.13 उपयोगी पाठ्यसामग्री

8.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थियों को अधोलिखित उद्देश्य प्राप्त होंगे :-

- विद्यार्थी भाषा-विज्ञान में अर्थविज्ञान की संकल्पना को समझ सकेंगे।
- विद्यार्थी अर्थ की प्रकृति, स्वरूप एवं उसकी प्रतीति के प्रकारों को समझ सकेंगे।
- विद्यार्थी शब्द और अर्थ के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट कर सकेंगे।
- विद्यार्थी अर्थबोध के साधनों तथा संदर्भ की भूमिका को समझ सकेंगे।
- विद्यार्थी अर्थ-परिवर्तन की दिशाओं, प्रकारों एवं कारणों का विश्लेषण कर सकेंगे।

8.2 प्रस्तावना

भाषा-विज्ञान की विविध शाखाओं में अर्थविज्ञान का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि भाषा का वास्तविक प्रयोजन केवल ध्वनियों, शब्दों अथवा वाक्य-रचनाओं का निर्माण नहीं, बल्कि उनके माध्यम से अर्थ का बोध कराना है। भाषा तभी सार्थक मानी जाती है जब वह

किसी विचार, अनुभव या भावना को अर्थपूर्ण ढंग से व्यक्त कर सके। अर्थविज्ञान इसी अर्थ-पक्ष का व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसके अंतर्गत यह विवेचना की जाती है कि अर्थ क्या है, उसकी प्रकृति क्या है तथा शब्दों और वाक्यों से अर्थ की प्रतीति किस प्रकार होती है। प्रारंभिक विचारधाराओं में शब्द और अर्थ के बीच स्वाभाविक संबंध माना गया, किंतु आधुनिक भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह संबंध प्राकृतिक न होकर सामाजिक और परंपरागत है। समाज किसी विशेष ध्वनि-समूह को किसी निश्चित अर्थ का प्रतीक स्वीकार करता है और इसी स्वीकृति से शब्दार्थ की स्थापना होती है। भारतीय वैयाकरण परंपरा में भर्तृहरि जैसे आचार्यों ने भी अर्थ की समस्या पर गहन विचार किया है। उनके अनुसार शब्द के उच्चारण से जो बोध श्रोता के मन में उत्पन्न होता है, वही उसका अर्थ है। किंतु यह बोध केवल शब्द-रूप पर निर्भर नहीं करता, बल्कि संदर्भ, मानसिक स्थिति, अनुभव और सामाजिक पृष्ठभूमि से भी प्रभावित होता है। इस प्रकार अर्थविज्ञान भाषा के उस सूक्ष्म पक्ष का अध्ययन करता है जो शब्द और मनुष्य के बोध के बीच सेतु का कार्य करता है।

अर्थविज्ञान का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि वह अर्थ को स्थिर न मानकर परिवर्तनशील मानता है। भाषा एक जीवंत सामाजिक व्यवस्था है और समाज में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव भाषा और उसके अर्थों पर स्वाभाविक रूप से पड़ता है। समय के साथ शब्दों के अर्थों में विस्तार, संकोच अथवा स्थानांतरण जैसी प्रक्रियाएँ घटित होती रहती हैं, जिन्हें अर्थ-परिवर्तन कहा जाता है। ये परिवर्तन सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक तथा भाषिक कारणों से उत्पन्न होते हैं। अर्थबोध की प्रक्रिया में केवल शब्दकोशीय अर्थ पर्याप्त नहीं होता, बल्कि व्यवहार, संदर्भ, व्याकरणिक संरचना और सामाजिक अनुभव की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अनेक शब्द ऐसे होते हैं जिनका सही अर्थ केवल संदर्भ के माध्यम से ही स्पष्ट हो पाता है। इसी कारण अर्थविज्ञान अर्थ के व्यावहारिक पक्ष पर भी विशेष ध्यान देता है। अर्थबोध के साधनों जैसे अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के माध्यम से यह स्पष्ट किया जाता है कि भाषा कैसे सीमित शब्दों में व्यापक अर्थ को व्यक्त करने में सक्षम होती है। इस प्रकार अर्थविज्ञान न केवल शब्द और अर्थ के संबंध को स्पष्ट करता है, बल्कि यह भी बताता है कि अर्थ कैसे निर्मित होता है, कैसे परिवर्तित होता है और किस प्रकार सामाजिक जीवन के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़कर भाषा को जीवंत एवं प्रभावी बनाता है।

8.3 अर्थविज्ञान की परिभाषा एवं स्वरूप

अर्थविज्ञान भाषा-विज्ञान की वह शाखा है जिसमें भाषा के अर्थ-पक्ष का व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है। भाषा की सार्थकता का आधार उसका अर्थ ही है, क्योंकि बिना अर्थ के न तो शब्द का अस्तित्व उपयोगी माना जा सकता है और न ही भाषा का कोई सामाजिक महत्व स्थापित हो सकता है। अर्थविज्ञान के अंतर्गत यह स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है कि शब्द, पद अथवा वाक्य से अर्थ की प्रतीति कैसे होती है और वह प्रतीति किन तत्त्वों पर आधारित होती है। अर्थविज्ञान का मुख्य कार्य अर्थ की व्याख्या करना नहीं, बल्कि अर्थ की प्रक्रिया को समझना है। जब कोई व्यक्ति किसी शब्द को सुनता या पढ़ता है, तब उसके मन में जो बोध उत्पन्न होता है, वही अर्थ कहलाता है। यह बोध केवल शब्द-रूप से नहीं, बल्कि उस शब्द से जुड़े अनुभव, ज्ञान और संदर्भ से भी निर्मित होता है। इस प्रकार अर्थविज्ञान अर्थ को एक मानसिक और भाषिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करता है। यहाँ अर्थ को वस्तु या पदार्थ के रूप में न मानकर बोध या प्रतीति के रूप में देखा जाता है। शब्द स्वयं अर्थ नहीं होता, बल्कि वह अर्थ का बोध कराने वाला साधन होता है। इसी कारण एक ही शब्द भिन्न-भिन्न संदर्भों में भिन्न अर्थों की प्रतीति करा सकता है।

अर्थविज्ञान के स्वरूप को समझने के लिए शब्द और अर्थ के संबंध को समझना आवश्यक है। शब्द और अर्थ के बीच संबंध स्वाभाविक नहीं, बल्कि परंपरागत और सामाजिक होता है। समाज किसी विशेष ध्वनि-समूह को किसी विशेष अर्थ का प्रतीक मान लेता है और यही मान्यता भाषा में शब्दार्थ के रूप में स्थापित हो जाती है। इस दृष्टि से अर्थविज्ञान भाषा को एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में देखता है। अर्थविज्ञान का स्वरूप यह स्पष्ट करता है कि अर्थ स्थिर नहीं होता, बल्कि वह प्रयोग और संदर्भ के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। शब्दार्थ का निर्धारण केवल शब्दकोश के माध्यम से नहीं किया जा सकता, क्योंकि शब्दकोश केवल सामान्य अर्थ प्रदान करता है, जबकि वास्तविक अर्थ का बोध प्रयोग की स्थिति में होता है। व्यवहार, संदर्भ, वक्ता की मानसिक अवस्था और श्रोता का अनुभव ये सभी अर्थ-प्रतीति को प्रभावित करते हैं। इसी कारण अर्थविज्ञान केवल शब्दार्थ तक सीमित न रहकर वाक्य और कथन के स्तर पर भी अर्थ का अध्ययन करता है। अर्थ का स्वरूप बहुआयामी होता है और वह भाषा के व्यावहारिक प्रयोग से गहराई से जुड़ा रहता है। अर्थविज्ञान का स्वरूप यह भी स्पष्ट करता है कि भाषा एक गतिशील व्यवस्था है और उसके साथ-साथ अर्थ भी परिवर्तनशील होता है। समय, समाज और संस्कृति के परिवर्तन के साथ शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन होता रहता है। कभी किसी शब्द का अर्थ विस्तृत हो जाता है, कभी संकुचित हो जाता है और कभी वह एक अर्थ से हटकर दूसरे अर्थ को ग्रहण कर लेता है। यह प्रक्रिया अर्थ-परिवर्तन कहलाती है और यही भाषा की जीवंतता का प्रमाण है। यदि अर्थ स्थिर होता तो भाषा समाज की बदलती आवश्यकताओं को व्यक्त नहीं कर पाती। अर्थविज्ञान इस परिवर्तनशीलता को भाषा का स्वाभाविक गुण मानता है। इसके साथ ही अर्थबोध के साधनों जैसे संदर्भ, व्यवहार और भाषिक प्रयोग की भूमिका को भी स्वीकार करता है। इस प्रकार अर्थविज्ञान का स्वरूप केवल सैद्धांतिक नहीं, बल्कि प्रयोगात्मक और सामाजिक भी है। यह भाषा के अर्थ-पक्ष को एक समग्र दृष्टि से देखने का प्रयास करता है जिसमें शब्द, मनुष्य और समाज तीनों की भूमिका समान रूप से महत्वपूर्ण मानी जाती है।

8.4 अर्थ की अवधारणा

‘अर्थ’ की अवधारणा भाषा-विज्ञान की जटिल अवधारणाओं में से एक है। भाषा का मूल उद्देश्य विचारों, भावनाओं और अनुभवों को व्यक्त करना है और यह कार्य अर्थ के माध्यम से ही संभव हो पाता है। अर्थ किसी वस्तु, व्यक्ति या क्रिया का प्रत्यक्ष रूप नहीं होता, बल्कि वह उस शब्द या कथन से उत्पन्न होने वाला मानसिक बोध है। जब कोई शब्द हमारे कानों तक पहुँचता है या आँखों के सामने आता है तब वह हमारे मन में किसी प्रकार की अनुभूति, कल्पना या ज्ञान को जाग्रत करता है यही अनुभूति अर्थ कहलाती है। इस दृष्टि से अर्थ कोई भौतिक सत्ता नहीं, बल्कि एक मानसिक प्रक्रिया है। शब्द स्वयं अर्थ नहीं होता, वह केवल अर्थ की प्रतीति कराने का साधन होता है। इसी कारण एक ही शब्द अलग-अलग व्यक्तियों के लिए या अलग-अलग परिस्थितियों में भिन्न अर्थों की अनुभूति करा सकता है। अतः अर्थ को केवल शब्द से जोड़कर नहीं देखा जा सकता, बल्कि उसे श्रोता या पाठक के मन, अनुभव और ज्ञान से भी जोड़कर समझना आवश्यक है। अर्थ की अवधारणा को समझने के लिए शब्द और अर्थ के संबंध को समझना अनिवार्य है। शब्द और अर्थ के बीच कोई प्राकृतिक या जन्मजात संबंध नहीं होता, बल्कि यह संबंध सामाजिक और परंपरागत होता है। समाज किसी विशेष ध्वनि-समूह को किसी निश्चित अर्थ का प्रतीक मान लेता है और उसी मान्यता के आधार पर भाषा में शब्दार्थ की स्थापना होती है। यदि शब्द और अर्थ का संबंध स्वाभाविक होता तो सभी भाषाओं में एक ही वस्तु के लिए एक ही शब्द प्रयुक्त होता, किंतु वास्तविकता इसके विपरीत है। इससे स्पष्ट होता है कि अर्थ का निर्धारण सामाजिक स्वीकृति और प्रयोग के आधार पर होता है। इस प्रकार अर्थ को एक सामाजिक अवधारणा

भी कहा जा सकता है। अर्थ तभी सार्थक होता है जब वह समाज में प्रचलित हो और वक्ता तथा श्रोता दोनों के लिए समान रूप से बोधगम्य हो। इसलिए अर्थ की अवधारणा में समाज, परंपरा और व्यवहार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

अर्थ की अवधारणा का एक महत्वपूर्ण पक्ष 'अर्थ-प्रतीति' से जुड़ा हुआ है। अर्थ वही है जो श्रोता के मन में शब्द या वाक्य को सुनकर उत्पन्न होता है। यह प्रतीति केवल शब्द के उच्चारण से नहीं, बल्कि संदर्भ, परिस्थिति और मानसिक अवस्था से भी प्रभावित होती है। कभी-कभी एक ही शब्द अलग-अलग संदर्भों में भिन्न अर्थों की प्रतीति कराता है। उदाहरण के रूप में, किसी शब्द का सामान्य अर्थ और उसका व्यावहारिक अर्थ भिन्न हो सकता है। इसी कारण अर्थ को स्थिर या एकरूप नहीं माना जा सकता। अर्थ का स्वरूप गतिशील होता है और वह प्रयोग के साथ बदलता रहता है। अर्थ-प्रतीति में व्यक्ति का पूर्वज्ञान, अनुभव और संस्कार महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि किसी व्यक्ति के पास किसी शब्द से जुड़ा अनुभव नहीं है, तो उस शब्द का अर्थ उसके लिए अस्पष्ट या अधूरा रह सकता है। इस प्रकार अर्थ केवल भाषा की संरचना से नहीं, बल्कि मानव मन की प्रक्रिया से भी गहराई से जुड़ा होता है। अर्थ की अवधारणा को व्यापक रूप में देखने पर यह स्पष्ट होता है कि अर्थ भाषा की आत्मा है। बिना अर्थ के शब्द केवल ध्वनियों का समूह रह जाता है और भाषा अपनी सम्प्रेषणीयता खो देती है। अर्थ न केवल शब्दों को अर्थपूर्ण बनाता है, बल्कि भाषा को सामाजिक जीवन से भी जोड़ता है। अर्थ के माध्यम से ही मनुष्य अपने अनुभवों, विचारों और भावनाओं को दूसरों तक पहुँचाता है। साथ ही अर्थ समय के साथ परिवर्तित भी होता है। सामाजिक परिवर्तन, सांस्कृतिक विकास और मानवीय आवश्यकताओं के बदलने के साथ-साथ शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तनशीलता के कारण ही भाषा जीवंत बनी रहती है। अतः अर्थ की अवधारणा को स्थिर, सीमित या केवल शब्दकोशीय रूप में नहीं देखा जा सकता। अर्थ एक जीवंत, मानसिक, सामाजिक और संदर्भ-सापेक्ष प्रक्रिया है, जो भाषा को सार्थकता प्रदान करती है और उसे मानव जीवन से गहराई से जोड़ती है।

8.5 अर्थ की प्रतीति

अर्थ की प्रतीति भाषा-विज्ञान, विशेषतः अर्थविज्ञान का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है। अर्थ स्वयं शब्द में निहित कोई स्थिर तत्व नहीं होता, बल्कि वह श्रोता या पाठक के मन में उत्पन्न होने वाला बोध है। जब कोई शब्द, पद या वाक्य प्रयोग में आता है तब वह सीधे अर्थ को प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि मन में एक विशेष प्रकार की अनुभूति या बोध को जाग्रत करता है। यही अनुभूति अर्थ-प्रतीति कहलाती है। इस दृष्टि से अर्थ को किसी बाह्य वस्तु या तथ्य से जोड़कर न देखकर उसे मानसिक प्रक्रिया के रूप में समझा जाता है। शब्द केवल एक संकेतक है जो मनुष्य के अनुभव, स्मृति और ज्ञान के सहारे अर्थ का बोध कराता है। अतः यह आवश्यक नहीं कि एक ही शब्द से सभी व्यक्तियों को समान अर्थ की प्रतीति हो। अलग-अलग व्यक्तियों की मानसिक स्थिति, अनुभव और ज्ञान-स्तर के अनुसार अर्थ-प्रतीति में अंतर संभव है। इस प्रकार अर्थ की प्रतीति भाषा और मानव-मन के पारस्परिक संबंध का परिणाम है। अर्थ-प्रतीति केवल शब्द-रूप पर निर्भर नहीं करती, बल्कि संदर्भ और परिस्थिति उसकी प्रमुख आधारशिला होती है। शब्द का वही अर्थ ग्रहण किया जाता है जो उस विशेष संदर्भ में उपयुक्त हो। बिना संदर्भ के शब्द का अर्थ अधूरा या भ्रमपूर्ण हो सकता है। उदाहरणस्वरूप, कोई शब्द सामान्य रूप में एक अर्थ देता है, किंतु विशेष परिस्थिति में वही शब्द भिन्न अर्थ की प्रतीति कराता है। इससे स्पष्ट होता है कि अर्थ-प्रतीति स्थिर न होकर सापेक्ष होती है। इसके साथ ही व्यवहार और प्रयोग भी अर्थ-प्रतीति को प्रभावित करते हैं। भाषा का वास्तविक अर्थ केवल शब्दकोशीय परिभाषा से स्पष्ट नहीं होता बल्कि प्रयोग की स्थिति में ही स्पष्ट होता है। अर्थ-प्रतीति का

अध्ययन केवल शब्दों के माध्यम से नहीं, बल्कि उनके प्रयोग, व्यवहार और सामाजिक संदर्भ के माध्यम से किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से अर्थ-प्रतीति एक जीवंत प्रक्रिया है जो भाषा के वास्तविक प्रयोग में ही पूर्ण रूप से सामने आती है।

अर्थ-प्रतीति के स्वरूप को समझने के लिए यह भी आवश्यक है कि इसे आत्मानुभव और परानुभव से जोड़कर देखा जाए। कई बार अर्थ की प्रतीति व्यक्ति के अपने अनुभवों से उत्पन्न होती है जिसे आत्मानुभवजन्य प्रतीति कहा जा सकता है। वहीं कुछ स्थितियों में व्यक्ति दूसरों के अनुभवों, कथनों या सामाजिक ज्ञान के आधार पर अर्थ को ग्रहण करता है जिसे परानुभवजन्य प्रतीति कहा जाता है। दोनों ही स्थितियों में अर्थ का निर्माण शब्द में न होकर मन में होता है। इसके अतिरिक्त अर्थ-प्रतीति में व्यक्ति का पूर्वज्ञान, संस्कार और मानसिक तैयारी भी भूमिका निभाते हैं। यदि श्रोता या पाठक के पास किसी शब्द या विषय से संबंधित पर्याप्त ज्ञान नहीं है तो अर्थ की प्रतीति अस्पष्ट या अपूर्ण रह सकती है। इस प्रकार अर्थ-प्रतीति को एक जटिल प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है जिसमें शब्द, संदर्भ, अनुभव और मन सभी की संयुक्त भूमिका होती है। यही कारण है कि अर्थविज्ञान में अर्थ की प्रतीति को भाषा की आत्मा के रूप में स्वीकार किया जाता है, क्योंकि इसके बिना भाषा का संप्रेषणात्मक उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता।

8.6 शब्द और अर्थ का संबंध

शब्द और अर्थ का संबंध अर्थविज्ञान की मूलभूत समस्याओं में से एक है। भाषा में शब्द वह माध्यम है जिसके द्वारा अर्थ की अभिव्यक्ति होती है, किंतु शब्द और अर्थ को एक-दूसरे से अभिन्न नहीं हैं और इन्हें स्वाभाविक रूप से जुड़ा हुआ भी नहीं माना जा सकता। शब्द केवल ध्वनियों या अक्षरों का एक निश्चित रूप होता है, जबकि अर्थ उस रूप से उत्पन्न होने वाला मानसिक बोध है। जब कोई व्यक्ति किसी शब्द को सुनता या पढ़ता है तब वह शब्द उसके मन में किसी वस्तु, विचार या अनुभव की प्रतीति कराता है। यही प्रतीति अर्थ कहलाती है। इस दृष्टि से शब्द और अर्थ का संबंध संकेतक और संकेतित का संबंध है। शब्द स्वयं अर्थ नहीं होता, बल्कि वह अर्थ की ओर संकेत करता है। इसी कारण यह संभव है कि एक ही शब्द अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग अर्थों की प्रतीति कराए। शब्द स्थिर होता है पर उसका अर्थ प्रयोग और संदर्भ के अनुसार परिवर्तित हो सकता है। इस प्रकार शब्द और अर्थ का संबंध भौतिक या प्राकृतिक आधार पर स्थापित न होकर एक मानसिक प्रक्रिया के माध्यम से स्थापित होता है। शब्द और अर्थ के संबंध को समझने में यह तथ्य अत्यंत महत्वपूर्ण है कि यह संबंध सामाजिक और परंपरागत होता है। किसी शब्द का अर्थ इस कारण नहीं होता कि वह वस्तु से स्वाभाविक रूप से जुड़ा है, बल्कि इस कारण होता है कि समाज ने उसे उस अर्थ का प्रतीक मान लिया है। यदि शब्द और अर्थ का संबंध प्राकृतिक होता तो सभी भाषाओं में एक ही वस्तु के लिए एक ही शब्द प्रयुक्त होता, किंतु वास्तविकता में ऐसा नहीं है। विभिन्न भाषाओं में एक ही वस्तु के लिए भिन्न-भिन्न शब्द मिलते हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि शब्द और अर्थ का संबंध सामाजिक स्वीकृति पर आधारित है। समाज के भीतर लंबे समय तक प्रयोग में आने से यह संबंध दृढ़ हो जाता है और वही शब्दार्थ के रूप में स्थापित हो जाता है। इस प्रकार शब्द और अर्थ का संबंध व्यक्ति विशेष की इच्छा पर नहीं, बल्कि सामाजिक परंपरा पर आधारित होता है। यही कारण है कि भाषा सीखने की प्रक्रिया में शब्दार्थ का ज्ञान आवश्यक होता है क्योंकि बिना सामाजिक परंपरा को जाने शब्द और अर्थ के संबंध को नहीं समझा जा सकता।

शब्द और अर्थ का संबंध संदर्भ और प्रयोग से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। शब्द का अर्थ केवल उसके स्वतंत्र रूप से नहीं, बल्कि वाक्य और स्थिति के भीतर प्रयोग से स्पष्ट

होता है। एक ही शब्द अलग-अलग वाक्यों में भिन्न अर्थ ग्रहण कर सकता है। इससे यह सिद्ध होता है कि शब्द और अर्थ का संबंध स्थिर न होकर गतिशील होता है। व्यवहार, परिस्थिति और वक्ता की मंशा भी इस संबंध को प्रभावित करती है। कभी-कभी शब्द का प्रचलित अर्थ गौण हो जाता है और संदर्भ के कारण कोई नया अर्थ प्रमुख हो उठता है। इस प्रकार शब्द और अर्थ के संबंध को केवल शब्दकोशीय अर्थ तक सीमित नहीं किया जा सकता। यह संबंध भाषा के प्रयोग में ही पूरी तरह से समझ में आता है। शब्द भाषा की बाह्य संरचना और अर्थ उसकी आंतरिक आत्मा है। दोनों का संबंध परस्पर पूरक है बिना शब्द के अर्थ की अभिव्यक्ति संभव नहीं और बिना अर्थ के शब्द निरर्थक हो जाता है। इसलिए शब्द और अर्थ का संबंध भाषा की संप्रेषणात्मक क्षमता का मूल आधार माना जाता है।

8.7 अर्थबोध के साधन

भाषा में शब्द या वाक्य का प्रयोग तभी सार्थक माना जाता है जब उससे श्रोता या पाठक के मन में अपेक्षित अर्थ का बोध हो सके। अर्थ स्वयं शब्द में निहित कोई स्थिर तत्व नहीं होता, बल्कि वह विभिन्न साधनों के माध्यम से ग्रहण किया जाता है। इन्हीं साधनों को अर्थबोध के साधन कहा जाता है। अर्थविज्ञान में यह माना जाता है कि केवल शब्द-रूप को जान लेना पर्याप्त नहीं है, बल्कि यह समझना भी आवश्यक है कि उस शब्द से अर्थ की प्रतीति किन माध्यमों से होती है। भाषा का वास्तविक अर्थ प्रयोग की स्थिति में प्रकट होता है और इस प्रक्रिया में अनेक भाषिक एवं अभाषिक तत्व सक्रिय रहते हैं। अर्थबोध के साधन भाषा को केवल संकेतों की प्रणाली न मानकर एक जीवंत सामाजिक प्रक्रिया के रूप में स्थापित करते हैं। अर्थबोध का सबसे प्रमुख साधन व्यवहार है। भाषा का प्रयोग मनुष्य अपने सामाजिक जीवन में करता है और व्यवहार के बिना शब्द का अर्थ पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो सकता। किसी शब्द का वास्तविक अर्थ उस स्थिति में सामने आता है जिसमें उसका प्रयोग किया जाता है। दैनिक जीवन में अनेक शब्द ऐसे होते हैं जिनका अर्थ व्यवहार के माध्यम से ही समझा जा सकता है। केवल शब्दकोशीय अर्थ कई बार अधूरा या भ्रमपूर्ण होता है, जबकि व्यवहार उस शब्द को जीवन से जोड़कर स्पष्ट अर्थ प्रदान करता है। व्यवहार यह भी निर्धारित करता है कि किसी शब्द का प्रयोग किस उद्देश्य से जैसे- सूचना देने के लिए, आदेश देने के लिए, प्रश्न करने के लिए या भावना व्यक्त करने के लिए किया गया है। इस प्रकार व्यवहार अर्थबोध को दिशा प्रदान करता है और शब्द के अर्थ को सजीव बनाता है।

अर्थबोध का दूसरा महत्वपूर्ण साधन संदर्भ या प्रकरण है। शब्द अपने आप में पूर्ण अर्थ नहीं देता, बल्कि वह संदर्भ के साथ जुड़कर अर्थपूर्ण बनता है। एक ही शब्द अलग-अलग संदर्भों में भिन्न अर्थ ग्रहण कर सकता है। वाक्य, स्थिति, वक्ता की मंशा और श्रोता की समझ ये सभी मिलकर संदर्भका निर्माण करते हैं। संदर्भ के अभाव में शब्द का अर्थ अस्पष्ट हो सकता है। इसी कारण भाषा में अर्थ को संदर्भ-सापेक्ष माना जाता है। संदर्भ यह स्पष्ट करता है कि शब्द का कौन-सा अर्थ ग्रहण किया जाना चाहिए। इस प्रकार संदर्भ अर्थबोध का वह साधन है जो शब्द के बहुविध अर्थों में से उपयुक्त अर्थ का चयन करने में सहायता करता है। कोश (शब्दकोश) भी अर्थबोध का एक महत्वपूर्ण साधन है। शब्दकोश शब्दों के सामान्य और प्रचलित अर्थों को प्रस्तुत करता है जिससे भाषा-उपयोगकर्ता को शब्दार्थ समझने में सहायता मिलती है। विशेष रूप से अध्ययन और लेखन के क्षेत्र में कोश का महत्व अधिक होता है। हालांकि यह स्वीकार किया जाता है कि कोश पूर्ण अर्थबोध का साधन नहीं है, क्योंकि वह शब्द के अर्थ को स्थिर रूप में प्रस्तुत करता है, जबकि वास्तविक अर्थ प्रयोग और संदर्भ के अनुसार बदलता रहता है। फिर भी कोश शब्द के मूल, सामान्य और प्रचलित अर्थ को जानने का आधार प्रदान करता है। इस दृष्टि से कोश अर्थबोध का सहायक साधन है जो भाषा-ज्ञान को व्यवस्थित करने में उपयोगी सिद्ध होता है।

अर्थबोध में व्याकरण की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। शब्दों का अर्थ केवल उनके स्वतंत्र रूप से नहीं, बल्कि वाक्य में उनके स्थान और रूप के अनुसार भी निर्धारित होता है। व्याकरण यह स्पष्ट करता है कि शब्द किस रूप, क्रम और संबंध के साथ प्रयुक्त हुआ है। शब्द-रूप में परिवर्तन होने से अर्थ में भी परिवर्तन हो सकता है। वाक्य-रचना के माध्यम से ही यह निर्धारित होता है कि कर्ता कौन है, कर्म क्या है और क्रिया किससे संबंधित है। इस प्रकार व्याकरण अर्थबोध को संरचनात्मक आधार प्रदान करता है और अर्थ की स्पष्टता सुनिश्चित करता है। अर्थबोध का एक महत्वपूर्ण साधन व्याख्या और उपमान भी है। जब किसी शब्द या कथन का अर्थ सीधे स्पष्ट न हो, तब उसकी व्याख्या की जाती है। व्याख्या के माध्यम से जटिल या सूक्ष्म अर्थ को सरल रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसी प्रकार उपमान के माध्यम से किसी अपरिचित या अमूर्त अर्थ को परिचित वस्तु से जोड़कर समझाया जाता है। ये दोनों साधन विशेष रूप से साहित्यिक और दार्शनिक भाषा में अधिक सक्रिय होते हैं, जहाँ अर्थ बहुस्तरीय और गूढ़ होता है।

इसके अतिरिक्त आत्मानुभव और ज्ञान का सामीप्य भी अर्थबोध के महत्वपूर्ण साधन माने जाते हैं। व्यक्ति अपने अनुभवों के आधार पर शब्दों के अर्थ को ग्रहण करता है। यदि किसी शब्द से जुड़ा अनुभव व्यक्ति के पास नहीं है तो उसका अर्थ अस्पष्ट रह सकता है। वहीं ज्ञान का सामीप्य यह दर्शाता है कि किसी विषय के बारे में पूर्वज्ञान होने से अर्थबोध अधिक सहज और स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार अर्थबोध केवल भाषिक संरचना पर निर्भर नहीं करता, बल्कि मानव अनुभव और ज्ञान से भी गहराई से जुड़ा होता है।

8.8 अर्थ-परिवर्तन

अर्थ-परिवर्तन भाषा की स्वाभाविक और अनिवार्य प्रक्रिया है। भाषा स्थिर नहीं होती, बल्कि समाज के साथ-साथ निरंतर विकसित और परिवर्तित होती रहती है। जब भाषा बदलती है तो उसके शब्दों के अर्थ भी उसी अनुपात में परिवर्तित होते हैं। अर्थविज्ञान के अंतर्गत अर्थ-परिवर्तन का अध्ययन इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि किसी शब्द का अर्थ सदा एक-सा नहीं रहता। समय के साथ शब्दों के अर्थों में परिवर्तन होना भाषा की जीवंतता का प्रमाण है। यदि शब्दों के अर्थ स्थिर और अपरिवर्तनीय होते तो भाषा नई परिस्थितियों, अनुभवों और विचारों को व्यक्त करने में असमर्थ हो जाती। अर्थ-परिवर्तन के माध्यम ही भाषा समाज की बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को ढालती है। इस प्रक्रिया में कभी शब्द का अर्थ व्यापक, कभी सीमित हो जाता है और कभी वह अपने मूल अर्थ से हटकर किसी नए अर्थ को ग्रहण कर लेता है। अर्थ-परिवर्तन का स्वरूप यह दर्शाता है कि शब्द और अर्थ का संबंध स्थायी नहीं, बल्कि प्रयोग-सापेक्ष होता है। किसी शब्द का प्रारंभिक अर्थ समय के साथ बदल सकता है क्योंकि समाज में उसके प्रयोग की परिस्थितियाँ बदल जाती हैं। जब किसी शब्द का प्रयोग नए संदर्भों में होने लगता है तो उसका अर्थ भी उसी अनुसार ढलने लगता है। कभी-कभी शब्द का पुराना अर्थ गौण हो जाता है और नया अर्थ प्रमुख हो उठता है। इस प्रक्रिया में अर्थ का विस्तार या संकोच होता है। अर्थ-विस्तार की स्थिति में शब्द अपने सीमित अर्थ से आगे बढ़कर व्यापक अर्थ ग्रहण कर लेता है जबकि अर्थ-संकोच में शब्द का अर्थ पहले की अपेक्षा अधिक सीमित हो जाता है। इस प्रकार अर्थ-परिवर्तन भाषा को अधिक सक्षम और प्रभावशाली बनाता है। यह परिवर्तन भाषा की सशक्तता का संकेत है, क्योंकि इसके माध्यम से भाषा नए अनुभवों और विचारों को व्यक्त करने योग्य बनती है।

अर्थ-परिवर्तन केवल भाषिक कारणों से ही नहीं होता, बल्कि इसके पीछे सामाजिक और सांस्कृतिक कारण भी सक्रिय रहते हैं। समाज में होने वाले परिवर्तनों का सीधा प्रभाव

भाषा और शब्दार्थ पर पड़ता है। सामाजिक जीवन की परिस्थितियाँ, मानवीय व्यवहार, मूल्य-मान्यताएँ और जीवन-पद्धति ये सभी अर्थ-परिवर्तन को प्रभावित करते हैं। जब समाज में किसी वस्तु, क्रिया या विचार का महत्व बदलता है तो उससे संबंधित शब्दों के अर्थ भी बदलने लगते हैं। इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक कारण भी अर्थ-परिवर्तन में भूमिका निभाते हैं। भाव-साहचर्य के कारण शब्द अपने मूल अर्थ से हटकर किसी नए अर्थ से जुड़ जाते हैं। इसी प्रकार बल का अपसरण भी अर्थ-परिवर्तन का एक कारण है, जिसमें शब्द का मुख्य अर्थ पीछे छूट जाता है और कोई गौण अर्थ प्रमुख बन जाता है। इस प्रकार अर्थ-परिवर्तन एक बहुआयामी प्रक्रिया है, जो भाषा और समाज के संबंध को उजागर करती है। अर्थ-परिवर्तन के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भाषा केवल शब्दों का संग्रह नहीं, बल्कि एक गतिशील सामाजिक प्रणाली है। शब्दों के अर्थ समय, समाज और प्रयोग के साथ निरंतर बदलते रहते हैं। यह परिवर्तन भाषा को न केवल जीवंत बनाए रखता है, बल्कि उसे नई पीढ़ियों के लिए भी उपयोगी और प्रासंगिक बनाता है। अर्थविज्ञान में अर्थ-परिवर्तन का अध्ययन भाषा के ऐतिहासिक विकास को समझने में भी सहायक होता है। इसके माध्यम से यह जाना जा सकता है कि किस प्रकार भाषा ने विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक चरणों से गुजरते हुए अपना स्वरूप बदला है। इस प्रकार अर्थ-परिवर्तन भाषा की स्वाभाविक प्रक्रिया है जो यह सिद्ध करती है कि भाषा स्थिर नहीं, बल्कि परिवर्तनशील, सजीव और समाज के साथ निरंतर गतिमान रहने वाली व्यवस्था है।

8.9 अर्थ-परिवर्तन की दिशाएँ

अर्थ-परिवर्तन की प्रक्रिया के अंतर्गत यह देखा जाता है कि समय और प्रयोग के साथ शब्दों के अर्थ किस प्रकार बदलते हैं और वे किन दिशाओं में विकसित होते हैं। भाषा के निरंतर प्रयोग में आने से शब्द केवल अपने मूल अर्थ तक सीमित नहीं रहते, बल्कि सामाजिक व्यवहार, अनुभव और परिस्थितियों के प्रभाव से उनके अर्थ में परिवर्तन होने लगता है। अर्थविज्ञान में इस परिवर्तन की कुछ प्रमुख दिशाओं या प्रकारों में समझा जाता है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि अर्थ किस प्रकार आगे बढ़ता है, सीमित होता है या एक अर्थ से दूसरे अर्थ में स्थानांतरित होता है। ये दिशाएँ भाषा की जीवंतता और अभिव्यक्ति क्षमता को दर्शाती हैं। अर्थ परिवर्तन की ये दिशाएँ यह भी सिद्ध करती हैं कि शब्द और अर्थ का संबंध स्थिर नहीं, बल्कि प्रयोग-सापेक्ष और परिवर्तनशील होता है।

8.9.1 अर्थ-विस्तार

अर्थ-परिवर्तन की पहली दिशा अर्थ-विस्तार है। अर्थ-विस्तार की स्थिति में किसी शब्द का अर्थ अपने मूल और सीमित दायरे से निकलकर व्यापक अर्थ को ग्रहण कर लेता है। प्रारंभ में शब्द किसी विशेष वस्तु, व्यक्ति या स्थिति के लिए प्रयुक्त होता है, किंतु समय के साथ उसका प्रयोग अनेक समान परिस्थितियों में होने लगता है जिससे उसका अर्थ फैल जाता है। अर्थ-विस्तार में शब्द का मूल अर्थ समाप्त नहीं होता, बल्कि उसके साथ नए अर्थ जुड़ जाते हैं। इस प्रक्रिया में शब्द अधिक व्यापक और सामान्य बन जाता है। सामाजिक जीवन के विस्तार, नए अनुभव और बदलती आवश्यकताओं के कारण शब्दों का प्रयोग नए संदर्भों में होने लगता है और यही प्रयोग धीरे-धीरे अर्थ-विस्तार का कारण बनता है। अर्थ-विस्तार भाषा की अभिव्यक्ति शक्ति को बढ़ाता है क्योंकि सीमित शब्द-संपदा के माध्यम से अधिक व्यापक अनुभवों को व्यक्त करना संभव हो जाता है।

8.9.2 अर्थ-संकोच

अर्थ-परिवर्तन की दूसरी दिशा अर्थ-संकोच है। अर्थ-संकोच में शब्द का अर्थ पहले की अपेक्षा अधिक सीमित हो जाता है। प्रारंभ में शब्द किसी व्यापक अर्थ को व्यक्त करता है,

किंतु समय के साथ उसका प्रयोग किसी विशेष अर्थ या संदर्भ तक सीमित हो जाता है। इस प्रक्रिया में शब्द अपने पुराने व्यापक अर्थ को खो देता है और किसी विशिष्ट अर्थ से जुड़ जाता है। अर्थ-संकोच के पीछे सामाजिक परिवर्तन, विशेष प्रयोग और व्यवहार की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। जब किसी शब्द का प्रयोग किसी विशेष वर्ग, वस्तु या परिस्थिति तक सीमित हो जाता है तो उसका अर्थ भी उसी सीमा में बंध जाता है। अर्थ-संकोच यह दर्शाता है कि भाषा केवल विस्तार की ओर ही नहीं बढ़ती, बल्कि आवश्यकता के अनुसार अपने अर्थ को सीमित भी करती है। यह प्रक्रिया भाषा को अधिक स्पष्ट और विशिष्ट बनाती है, जिससे संप्रेषण में भ्रम की संभावना कम हो जाती है।

8.9.3 अर्थादेश/अर्थांतरण

अर्थ-परिवर्तन की तीसरी और महत्वपूर्ण दिशा अर्थादेश या अर्थांतरण है। इस प्रक्रिया में शब्द अपने मूल अर्थ से हटकर किसी नए अर्थ को ग्रहण कर लेता है। अर्थांतरण प्रायः समानता, निकटता या भाव-संबंध के कारण होता है। जब किसी शब्द का प्रयोग किसी नई वस्तु या स्थिति के लिए किया जाने लगता है और वह प्रयोग प्रचलित हो जाता है तो वही नया अर्थ स्थापित हो जाता है। इस प्रक्रिया में पुराने और नए अर्थ के बीच किसी न किसी प्रकार का संबंध बना रहता है। अर्थादेश भाषा की रचनात्मकता का प्रमाण है, क्योंकि इसके माध्यम से भाषा सीमित शब्दों से नए अर्थों की सृष्टि करती है। यह प्रक्रिया भाषा को नवीन परिस्थितियों के अनुरूप ढालने में सहायक होती है और यह सिद्ध करती है कि अर्थ-परिवर्तन केवल क्षय नहीं, बल्कि विकास की प्रक्रिया है।

8.10 अर्थ-परिवर्तन के कारण

भाषा एक गतिशील इकाई है जिसमें समय के साथ ध्वन्यात्मक और व्याकरणिक परिवर्तनों के साथ-साथ अर्थ में भी निरंतर बदलाव आता रहता है। अर्थ-विज्ञान के विशेषज्ञों ने इस प्रक्रिया के पीछे कई ठोस कारण बताए हैं जो सामाजिक व्यवहार से लेकर मानवीय मनोविज्ञान तक विस्तृत हैं। अर्थ-परिवर्तन के प्रमुख कारणों को निम्नलिखित बिंदुओं में वर्गीकृत किया जा सकता है:

8.10.1 बल का अपसरण

अर्थ-परिवर्तन का एक प्रमुख कारण शब्द के किसी एक पक्ष पर अधिक बल देना है। जब किसी शब्द की मूल विशेषता के स्थान पर उसके किसी गौण पक्ष को प्रधानता मिल जाती है तो अर्थ बदल जाता है। उदाहरण के लिए ‘जुगुप्सा’ का मूल अर्थ ‘रक्षा करना’ था, जो बाद में ‘घृणा’ के अर्थ में रूढ़ हो गया।

8.10.2 वातावरण में परिवर्तन

शब्द जिस परिवेश में प्रयुक्त होता है, वहाँ का भौगोलिक या सामाजिक वातावरण उसके अर्थ को प्रभावित करता है। जैसे भौगोलिक वातावरण के कारण ‘कॉर्न’ (Corn) शब्द का अर्थ इंग्लैंड में ‘गेहूँ’, अमेरिका में ‘मक्का’ और स्कॉटलैंड में ‘जौ’ के लिए किया जाता है। एक ही शब्द भिन्न सामाजिक संदर्भों में अलग अर्थ रखता है। जैसे ‘भाई’ और ‘बहन’ का अर्थ घर में अलग है, जबकि कार्यालय या धार्मिक संस्थानों (चर्च आदि) में इनका अर्थ पूरी तरह भिन्न हो जाता है। अंतः सामाजिक वातावरण भी शब्द के अर्थ को प्रभावित करता है।

8.10.3 नम्रता-प्रदर्शन

मानवीय स्वभाव में नम्रता दिखाने की प्रवृत्ति भी अर्थ-परिवर्तन का कारण बनती है। समाज में प्रायः साधारण क्रियाओं के लिए उच्च या पवित्र शब्दों का प्रयोग किया जाता है, उदाहरण के लिए किसी के घर आने पर ‘कुटिया को पवित्र करना’ जैसे प्रयोग किए जाते

हैं। इसी प्रकार ‘अन्नदाता’ जैसे शब्द संबोधन के कारण अपना मूल अर्थ खोकर विशिष्ट सम्मानसूचक बन जाते हैं।

8.10.4 अशोभन के लिए शोभन का प्रयोग

समाज में अप्रिय, कड़वी या अश्लील बातों को सीधे न कहकर घुमा-फिराकर ‘सुरुचिपूर्ण’ ढंग से कहने से भी अर्थ-परिवर्तन होता है। जैसे ‘मरने’ के लिए ‘स्वर्गवासी होना’ जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

8.10.5 सादृश्य

कभी-कभी रूप या कार्य की समानता के कारण एक शब्द का अर्थ दूसरे शब्द पर आरोपित हो जाता है। जैसे अंग्रेजी शब्द ‘टिकट’ के सादृश्य पर देहाती क्षेत्रों में ‘टैक्स’ को ‘टिक्स’ या ‘टिकस’ कहा जाने लगा और उसका अर्थ रेल या डाक से संबंधित हो गया।

8.10.6 अज्ञान और अंधविश्वास

अज्ञानवश शब्दों का गलत प्रयोग भी अर्थ बदल देता है। जैसे संस्कृत के ‘धन्यवाद’ (प्रशंसा) का हिंदी में ‘शुक्रिया’ के अर्थ में रूढ़ होना। वहीं, अंधविश्वास के कारण समाज में पति, बड़े लड़के या गुरु का नाम लेना पाप माना जाता है। इस कारण लोग उन नामों के पर्यायवाची या प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग करने लगते हैं जिससे नए अर्थ विकसित होते हैं।

8.10.7 शब्दों का अधिक प्रयोग और संक्षिप्तिकरण

जब कोई शब्द अत्यधिक प्रयोग में आता है तो उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है, जैसे ‘बहुत’ के स्थान पर ‘अत्यंत’ या ‘अतिशय’ का प्रयोग होना। इसके अलावा संक्षिप्त करने की प्रवृत्ति के कारण भी अर्थ बदलते हैं। जैसे ‘रेलगाड़ी’ से ‘गाड़ी’ शब्द हटकर केवल ‘रेल’ रह गया।

8.11 सारबिंदु

- अर्थविज्ञान भाषा-विज्ञान की वह महत्वपूर्ण शाखा है जिसमें भाषा के अर्थ-पक्ष का व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है। भाषा की सार्थकता का मूल आधार अर्थ है, क्योंकि बिना अर्थ के न तो शब्द का कोई उपयोग होता है और न ही भाषा का सामाजिक महत्व स्थापित हो पाता है।
- अर्थविज्ञान का उद्देश्य अर्थ की व्याख्या करने से अधिक अर्थ की प्रक्रिया को समझना है। जब कोई व्यक्ति किसी शब्द या वाक्य को सुनता या पढ़ता है तो उसके मन में जो बोध उत्पन्न होता है, वही अर्थ कहलाता है। यह बोध शब्द-रूप के साथ-साथ व्यक्ति के अनुभव, ज्ञान और संदर्भ पर आधारित होता है।
- अर्थ को एक मानसिक और सामाजिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जाता है। शब्द स्वयं अर्थ नहीं होता, बल्कि वह अर्थ की प्रतीति कराने वाला साधन मात्र है। इसी कारण एक ही शब्द भिन्न-भिन्न संदर्भों में अलग-अलग अर्थों की अनुभूति करा सकता है।
- शब्द और अर्थ का संबंध स्वाभाविक नहीं, बल्कि सामाजिक और परंपरागत होता है। समाज किसी विशेष ध्वनि-समूह को किसी अर्थ से जोड़ देता है और वही संबंध भाषा में स्थापित हो जाता है।
- अर्थ को स्थिर न मानकर सापेक्ष और गतिशील माना गया है। अर्थबोध के प्रमुख साधनों में व्यवहार, संदर्भ, शब्दकोश, व्याकरण, व्याख्या, उपमान और व्यक्ति का आत्मानुभव शामिल हैं। ये सभी मिलकर शब्द या वाक्य के वास्तविक अर्थ को स्पष्ट करते हैं।

- अर्थ-परिवर्तन भाषा की स्वाभाविक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से शब्दों के अर्थ समय, समाज और संस्कृति के अनुसार बदलते रहते हैं। अर्थ-विस्तार, अर्थ-संकोच और अर्थान्तरण इसकी प्रमुख दिशाएँ हैं। अर्थ-परिवर्तन के पीछे बल का अपसरण, वातावरण में परिवर्तन, नम्रता-प्रदर्शन, अशोभन के लिए शोभन का प्रयोग, सादृश्य, अज्ञान, अंधविश्वास और शब्दों का अधिक प्रयोग और संक्षिप्तिकरण जैसे कारण सक्रिय रहते हैं।
- इस प्रकार अर्थविज्ञान भाषा को एक जीवंत, परिवर्तनशील और सामाजिक व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत करता है।

8.12 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

• बोध प्रश्न

(क) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न।

1. अर्थविज्ञान की परिभाषा देते हुए उसके स्वरूप की विस्तार से विवेचना कीजिए।
2. 'अर्थ' की अवधारणा को मानसिक, सामाजिक और संदर्भ-सापेक्ष प्रक्रिया के रूप में स्पष्ट कीजिए।
3. अर्थ-प्रतीति की प्रक्रिया का विवेचन करते हुए संदर्भ, अनुभव और पूर्वज्ञान की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
4. शब्द और अर्थ के संबंध की प्रकृति पर प्रकाश डालते हुए उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए कि यह संबंध स्थिर क्यों नहीं है?
5. अर्थ-परिवर्तन की दिशाओं एवं कारणों का क्रमबद्ध और विस्तृत वर्णन कीजिए।

(ख) लघु उत्तरीय प्रश्न।

1. अर्थविज्ञान से आप क्या समझते हैं?
2. अर्थ को मानसिक प्रक्रिया क्यों कहा जाता है?
3. शब्द और अर्थ के संबंध को सामाजिक एवं परंपरागत क्यों माना जाता है?
4. अर्थ-प्रतीति से क्या तात्पर्य है?
5. संदर्भ अर्थबोध को किस प्रकार प्रभावित करता है?
6. अर्थ-परिवर्तन भाषा की जीवंतता का प्रमाण कैसे है?
7. अर्थ-विस्तार और अर्थ-संकोच में क्या अंतर है?

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न।

1. भाषा के अर्थ पक्ष का व्यवधित अध्ययन किस विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है?
 (क) ध्वनिविज्ञान (ख) रूपविज्ञान
 (ग) अर्थविज्ञान (घ) वाक्यविज्ञान
2. 'आधुनिक भाषाविज्ञान' पुस्तक के लेखक हैं-
 (क) राजमल बोरा (ख) राजमणि शर्मा
 (ग) भोलानाथ तिवारी (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं
3. निम्नलिखित में से अर्थ परिवर्तन का कारण है -
 (क) नम्रता प्रदर्शन (ख) अशोभन के लिए शोभन का प्रयोग
 (ग) दृश्य (घ) उपर्युक्त सभी

4. वे शब्द जो पहले अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होते थे, अब बुरे अर्थ में प्रयोग होते हैं। वे किसके अन्तर्गत आते हैं?
- (क) अर्थदिश (ख) अर्थापकर्ष
(ग) अर्थविस्तार (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं
5. अपवित्र तथा अशुभ बातों का बुरापन कम करने के लिए अन्य शब्दों का प्रयोग यह कहलाता है -
- (क) अर्थापदेश (ख) अर्थादेश
(ग) अर्थ-संकोच (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

8.13 उपयोगी पाठ्यसामग्री

(क) उपयोगी ग्रंथ

1. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, (1997), भाषाविज्ञान सैद्धान्तिक चिन्तन, दिल्ली-51, राधाकृष्ण प्रकाशन, 81-7119-339-0
2. देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1966
3. सक्सेना, बाबूराम, (1995), सामान्य भाषाविज्ञान, प्रयाग, हिंदी साहित्य सम्मेलन
4. तिवारी, भोलानाथ, (1993), भाषाविज्ञान, नई दिल्ली, किताब महल
5. शर्मा, डॉ. राजमणि, (2009), आधुनिक भाषा-विज्ञान, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 81-7055-483-7
6. शर्मा, डॉ. हरीश, (1997), भाषाविज्ञान की रूपरेखा, गाजियाबाद, अमित प्रकाशन, 81-85309-15-9
7. त्रिपाठी, आचार्य रामदेव, (1990), हिंदी भाषाविज्ञान, राजेन्द्र नगर, पटना, बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी

(ख) वेब संदर्भ

1. हिंदी निदेशालय, भारत सरकार <https://hindinideshalaya.nic.in>
2. केंद्रीय हिंदी संस्थान <https://www.kendriyahindisansthan.org>
3. ई-पाठशाला (NCERT) <https://epathshala.nic.in>
4. राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय <https://ndl.iitkgp.ac.in>
5. भारतकोश (हिंदी ज्ञानकोश) <https://bharatdiscovery.org>
6. <http://epgpinflibnet.ac.in>
7. <http://www.hindsamay.com>
8. <http://hindnest.com>
9. <http://www.di.emt.in>
10. <http://www.archive.org>

इकाई 9 हिंदी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

रूपरेखा

- 9.1 उद्देश्य
- 9.2 प्रस्तावना
- 9.3 हिंदी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- 9.4 हिंदी की उपभाषाएँ (बोलियाँ)
- 9.5 हिंदी ध्वनियाँ और उनका वर्गीकरण
- 9.6 शब्द साधन/शब्द रचना
- 9.7 वाक्य विन्यास व विराम चिह्न
- 9.8 सारबिंदु
- 9.9 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली
- 9.10 उपयोगी पाठ्यसामग्री

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :-

- हिंदी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।
- हिंदी की बोलियों से परिचित होंगे।
- हिंदी की ध्वनि को समझते हुए उसका वर्गीकरण कर सकेंगे।
- विराम चिह्नों का सही प्रयोग करना सीख सकेंगे।

9.2 प्रस्तावना

समाज के लिए भाषा उसका अभिन्न अंग है। कोई भी समाज बिना भाषा के गूंगा बहरा होता है। आधुनिक हिंदी साहित्य के विद्वान लेखक भारतेन्दु जी ने “निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल” समाज के लिए कहा है उसकी अपनी भाषा हो और समाज को अपनी उन्नति का मार्ग अपनी भाषा में समाहित है सभी प्रकार उन्नति के मूल में उसकी अपनी भाषा होती है। कोई भी समाज अपनी बात तभी कह सकता है, जब उसकी अपनी भाषा हो और उसका अपना साहित्य हो, उसकी अपनी भाषा में प्रचुर मात्रा में वह लिखा पढ़ा जाता हो। आज हमारे देश में कई भाषाएँ हैं जिसमें शास्त्रीय भाषाएँ भारत में अब कुल 11 भाषाएँ ‘शास्त्रीय भाषा’ का दर्जा प्राप्त हैं। 3 अक्टूबर 2024 को कैबिनेट ने मराठी, पाली, प्राकृत, असमिया और बंगाली को इसमें शामिल किया। इससे पहले तमिल (2004), संस्कृत (2005), तेलुगु, कन्नड़, मलयालम और उड़िया इस सूची में थीं। ये भाषाएँ भारत की प्राचीन सांस्कृतिक विरासत को दर्शाती हैं। भारत में हिंदी का भी एक प्रमुख स्थान है भाषा के रूप में, हिंदी आज वैश्विक पहचान में तब्दील होने की ओर अग्रसर है। आज चाहे दूर संचार हो या पठन-पाठन और विदेश से भी लोग हिंदी के पठन-पाठन में उनकी दिलचस्पी बढ़ी है, हिंदी भाषा सीखकर अपने देश में रोजगार प्राप्त कर रहे हैं। हिन्दी भारोपीय (भारत-यूरोपीय) भाषा परिवार की आधुनिक भारतीय आर्य भाषा है। यह दुनिया के सबसे बड़े भाषा समूहों में से एक है, जो संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश (विशेषकर शौरसेनी) से विकसित होकर आज के रूप में आई है।

9.3 हिंदी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

आज के युग हिंदी का अपना एक वैशिष्ट्य है। हिंदी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अत्यंत समृद्ध और बहुआयामी है। इसका विकास एक लंबी भाषाई यात्रा का परिणाम है, जिसकी शुरुआत प्राचीन संस्कृत से मानी जाती है। संस्कृत, विशेषकर वैदिक और लौकिक रूपों में, भारतीय आर्य भाषाओं की मूल आधारशिला रही है। समय के साथ जब यह भाषा जनसामान्य के बीच सरल रूप में प्रयुक्त होने लगी, तब इससे प्राकृत भाषाओं का विकास हुआ। प्राकृत भाषाएँ आम जनता की बोलचाल की भाषा थीं और विभिन्न क्षेत्रों में इनके अलग-अलग रूप प्रचलित थे। प्राकृत से आगे चलकर अपभ्रंश का विकास हुआ, जो हिंदी सहित उत्तर भारत की कई आधुनिक भाषाओं का आधार बना। लगभग 6वीं से 10वीं शताब्दी के बीच अपभ्रंश का व्यापक प्रयोग हुआ और इसी काल में हिंदी के प्रारंभिक रूप उभरने लगे। इस समय की भाषा में लोकजीवन, संस्कृति और भावनाओं का स्पष्ट प्रतिबिंब मिलता है।

भारतीय आर्यभाषा काल 500 ई.पू. से 1000 ई.पू. तक माना जाता है।

आरंभिक (शिलालेखी प्राकृत तथा पालि), मध्यकालीन प्राकृत (महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, अर्द्धमागधी, पेशाची आदि) और उत्तरकालीन अपभ्रंश (नागर, उपनागर, ब्राह्म आदि अपभ्रंश)। इस विभाजन के अनुसार मध्य भारतीय आर्यभाषा के विकास का तृतीय सोपान अपभ्रंश काल है। जिस प्रकार प्राकृत का अर्थ स्वाभाविक या पहले से बनी हुई भाषा है, उसी प्रकार अपभ्रंश का अर्थ जनबोली अर्थात् जनसामान्य की बोलचाल की भाषा होती है। भरतमुनि के संदर्भों से ज्ञात होता है कि अपभ्रंश बोलचाल की भाषा थी। पतंजलि ने भी शब्द-संदर्भ में अपभ्रंश, अपशब्द या मलेच्छ की चर्चा की है। ऐसे शब्दों की पूर्णरूपेण अवहेलना न की जा सकी वरन् उन्हीं की बैसाखी पर नई भाषा चल निकली, जिसे अपभ्रंश अर्थात् तीसरी प्राकृत की संज्ञा दी गई। इसके पूर्व प्राकृत काल रहा। संस्कृत के अनेक नाटकों में प्राकृत भी मिलती है। संस्कृत के 'वाचस्पत्य कोश' में अपभ्रंश का अर्थ 'ग्राम्य भाषा' मिलता है। 'अपभ्रंश' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग पतंजलि द्वारा किया गया। उन्होंने एक शब्द के अनेक रूपों को देखा, परस्त्रा और उनको तिरस्कृत करते हुए अपभ्रंश की पदवी दे डाली। भारत में भाषा का प्राचीनतम रूप संस्कृत है जिसमें वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत। इस भाषा में वेद, वेदांग, अरण्यक लिखे गए।

डॉ. हरदेव बाहरी वैदिक संस्कृत में स्वरों की संख्या 14 मानते हैं। वैदिक संस्कृत अनुस्वार और अनुनासिक के रूप में विभाजित किया गया है।

लौकिक संस्कृत पश्चिमोत्तरी बोली पर आधारित थी। उस समय की प्रामाणिक भाषा पश्चिमोत्तरी बोली मानी जाती थी। लौकिक संस्कृत का प्राचीनतम काव्यग्रंथ रामायण माना जाता है। भाषा के विकास में वैदिक संस्कृत के बाद लौकिक संस्कृत जिसमें भाषिक विवेचन सर्वप्रथम पाणिनि कृत अष्टाध्यायी में मिलता है।

अष्टाध्यायी इसी भाषा का व्याकरण है।

प्राचीन आर्यभाषा

आर्य जब भारत में आए, उस समय उनकी भाषा तत्कालीन ईरानी भाषा से कदाचित् अलग नहीं थी। किंतु जैसे जैसे यहां के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव, विशेषतः आर्यतर लोगों से मिश्रण के कारण भाषा परिवर्तन होने लगी। वैदिक संहिताओं का काल मोटे रूप में 1200 ईसा पू. से 900 ईसा पू. के लगभग है। यों वैदिक संहिताओं की भाषा में भी एकरूपता नहीं है। कुछ की भाषा पूर्ववर्ती है। इस भाषा का काल 900 ई पू के बाद का है। भाषा का और विकसित रूप सूत्रों में मिलता है। यह संस्कृत पाणिनीय संस्कृत के काफी पास पहुंच

गई है यद्यपि उसमें पाणिनीय संस्कृत की एकरूपता नहीं है। इसी काल के अंत में, लगभग 5 वीं सदी में, पाणिनि ने अपने व्याकरण में, उदीच्य में प्रयुक्त संस्कृत के रूप से, अपेक्षाकृत अधिक परिनिष्ठत एवं पण्डितों में मान्य रूप को नियमबद्ध किया गया।

रूप रचना - वैदिक संस्कृत भाषा में लिंग तीन थे पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग।

वचन भी तीन थे - एकवचन, द्विवचन, बहुवचन

कारक विभक्तियाँ आठ थी कर्ता, संबोधन, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, संबद्ध, अधिकरण। वैदिक भाषा में उत्तम पुरुष में ही प्राचीन पण्डितों ने 'अस्मद्' को सभी रूपों का मूल माना है।

वैदिक भाषा में बोलियों की बात करें तो ब्राह्मण ग्रंथों से पता चलता है कि वैदिक काल में प्राचीन आर्यभाषा के कम से कम तीन रूप या तीन बोलियाँ अवश्य थे पश्चिमोत्तरी, मध्यवर्ती, पूर्वी। पहला अफगानिस्तानी से लेकर पंजाब तक था दूसरा पंजाब से मध्य उत्तर प्रदेश तक तीसरा उसके पूर्व।

लौकिक संस्कृत - भाषा के अर्थ में 'संस्कृत' (संस्कार की गई, शिष्ट या अप्रकृत) शब्द का प्रथम प्रयोग वाल्मीकि रामायण में मिलता है। वैदिक काल में भाषा के तीन भौगोलिक रूपों-उत्तरी, मध्यदेशी, पूर्वी का उल्लेख किया जा चुका है। लौकिक संस्कृत का मूल आधार इनमें उत्तरी बोली थी, क्योंकि वही प्रामाणिक मानी जाती थी। यों पाणिनि के अन्यो के भी कुछ रूप आदि लिये हैं और उन्हें वैकल्पिक कहा है। इस प्रकार मध्यदेशी तथा पूर्वी का भी संस्कृत पर कुछ प्रभाव है। लौकिक या क्लैसिकल संस्कृत साहित्यिक भाषा है। अतः जिस प्रकार हिन्दी में जयशंकर प्रसाद की गद्य या पद्य भाषा को बोलचाल की भाषा नहीं कह सकते, उसी प्रकार संस्कृत को भी बोलचाल की भाषा नहीं कह सकते। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जिस प्रकार प्रसाद जी की भाषा का आधार मानक खड़ी बोली हिन्दी है जो बोलचाल की भाषा है, उसी प्रकार पाणिनीय संस्कृत भी तत्कालीन पण्डित-समाज की बोलचाल की भाषा पर ही आधारित है। पाणिनि द्वारा उसके लिए 'नार्मल' (नार्मल बोलना) शब्द का प्रयोग, सूत्र 'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' (दूर से बुलाने में 'प्लुत' के प्रयोग) का उनके द्वारा उल्लेख, बोलचाल के कारण विकसित संस्कृत को व्याकरण की परिधि में बाँधने के लिए कात्यायन द्वारा वार्तिकों की रचना, ये बातें यह सिद्ध करती हैं कि संस्कृत कभी बोलचाल की भाषा अवश्य थी। अतः हार्नले, वेबर तथा ग्रियर्सन आदि पश्चिमी विद्वानों का वह कथन कि संस्कृत बोलचाल की भाषा नहीं थी, निराधार है।

बोलियाँ - वैदिक भाषा में प्रसंग के पश्चिमोत्तरी (या पश्चिमी या उत्तरी), मध्यदेशी (या मध्यवर्ती) तथा पूर्वी, इन तीन बोलियों का उल्लेख किया जा चुका है। मेरा अनुमान है कि संस्कृत-काल में आर्यभाषा-भाषी प्रदेश में कदाचित् एक दक्षिणी रूप भी जन्म ले चुका था।

मध्यकालीन आर्यभाषा

मध्यकालीन आर्यभाषा को प्राकृत भी कहा गया है। 'प्राकृत' शब्द के सम्बन्ध में दो मत हैं- (क) कुछ लोग इसकी व्युत्पत्ति 'प्राक् + कृत' अर्थात् (संस्कृत से) पहले की बनी हुई या 'पहले की की हुई' मानते हैं। दूसरे शब्दों में प्राकृत ('नैसर्गिक') 'प्रकृत या अकृत्रिम' भाषा है, और इसके विपरीत संस्कृत कृत्रिम या संस्कार की हुई भाषा है। नमि साधु ने 'काव्यालंकार' की टीका में लिखा है- प्राकृतेति, सकलजगज्जन्तूनां व्याकरणादिभिरनाहतसंस्कारः सहजो वचन-व्यापारः प्रकृतिः प्रकृति तत्र भवः सेव वा प्राकृतम्। इस रूप में प्राकृत पुरानी भाषा है, और संस्कृत उसका संस्कार करके बनाई हुई बाद की भाषा। ग्रियर्सन ने इसी को प्राइमरी प्राकृत

कहा है। इसका अर्थ यह है कि इस अर्थ में 'प्राकृत' शब्द का प्रयोग उस जनभाषा के लिए है, जो वैदिक एवं संस्कृत-काल में जनभाषा थी और जिसका कुछ परिनिष्ठित एवं पण्डितों द्वारा मान्य रूप वैदिक है, एवं परवर्ती काल में जिसका सुसंस्कृत साहित्यिक रूप 'संस्कृत' है। अर्थात् वह वैदिक की भी जननी है, और उसी का कुछ परवर्ती रूप संस्कृत की जननी है। (ख) दूसरे लोग प्राकृत की उत्पत्ति और ढंग से करते हैं। जैर-प्रकृति: संस्कृतं तत्र भव प्राकृतमुच्यते-माक्कण्डेय (प्रकृति या मूल संस्कृत है, उससे जन्मी भाषा को प्राकृत कहते हैं)। प्रकृति: संस्कृतम्। तत्र भवं तदागतं वा प्राकृतम्-हेमचन्द्र (प्रकृति या मूल संस्कृत है, और संस्कृत से जो आई है, प्राकृत है)। ये (क, ख) मत एक-दूसरे के विरोधी हैं। वस्तुतः अपने-अपने स्थान पर ये दोनों ही मत ठीक हैं।

प्रथम प्राकृत (500 ई. पू. से 1 ई. तक)

पालि बौद्ध धर्म (विशेषतः दक्षिणी बौद्धों) की भाषा है। मोटे रूप से इसका काल 5वीं सदी ई. पू. से पहली सदी तक है। 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों में बहुत मतभेद है। 'पालि' शब्द के पुराने प्रयोग 'भाषा' के अर्थ में नहीं मिलते। इसका प्राचीनतम प्रयोग चौथी सदी में लंका में लिखित ग्रन्थ 'दीपवंस' में हुआ है। वहाँ इसका अर्थ 'बुद्धवचन' है। बाद में प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष ने भी इसका प्रयोग लगभग इसी अर्थ में किया है। तब से लेकर काफी बाद तक 'पालि' शब्द का प्रयोग पालि साहित्य में हुआ है, किन्तु कभी भी भाषा के अर्थ में नहीं। भाषा के अर्थ में वहाँ मगध भाषा, मागधी, मागधिक भाषा आदि का प्रयोग हुआ है। सिंहल के लोग इसे अब भी मागधी कहते हैं। भाषा के अर्थ में 'पालि' का प्रयोग अत्याधुनिक है और यूरोप के लोगों द्वारा हुआ है। यहाँ कुछ प्रमुख मतों का उल्लेख किया जा रहा है। 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति श्री विधुशेखर भट्टाचार्य के अनुसार संस्कृत 'पंक्ति' (> पन्ति > पन्ति पट्टि पल्लि पालि) से है। एक मत के अनुसार वैदिक और संस्कृत आदि की तुलना में यह 'पल्लि' या 'गाँव' की भाषा थी और 'पल्लि' का ही विकास है, अर्थात् इसका अर्थ है 'गाँव की भाषा'। भण्डारकर तथा वाकरनागल के अनुसार 'पालि' शब्द 'प्राकृत' (> पाकट > पाअड > पाऊल > पालि) का ही विकसित रूप है। वस्तुतः ये ध्वन्यात्मक विकास बहुत तत्कालसम्मत नहीं हैं। कोसाम्बी नामक बौद्ध विद्वान् के अनुसार, इसका सम्बन्ध 'पाल' अर्थात् 'रक्षा करना' से है। इसने बुद्ध के उपदेशों को सुरक्षित रखा है, इसीलिए यह नाम पड़ा है। 'पा पालेति रक्खतीति' रूप में भी कुछ लोगों ने 'पा' में 'लि' प्रत्यय लगाकर इसकी व्युत्पत्ति दी है। अर्थात् यह अर्थों की रक्षा करती है, अतः पालि है। किन्तु यह भी कल्पना की दौड़ मात्र है। डॉ. मैक्सवेल्लेसर ने 'पालि' को 'पाटलि' (पाटलिपुत्र की भाषा) से व्युत्पन्न माना है। किन्तु जैसा कि हम आगे देखेंगे, पालि वहाँ की भाषा नहीं थी। सबसे प्रामाणिक व्युत्पत्ति भिक्षु जगदीश कश्यप द्वारा दी गई है। प्रायः बहुत से भारतीय विद्वान इससे सहमत हैं। इनके अनुसार 'पालि' का सम्बन्ध 'परियाय' (सा पर्याय) से है। 'धम्मपरियाय' या 'परियाय' का प्रयोग प्राचीन बौद्ध साहित्य में बुद्ध के उपदेश के लिए मिलता है। इनकी विकास-परम्परा परियाय > पलियाय > पालियाय > पालि है।

बोलियाँ एवं भाषा — रूप-पालि-काल में आर्यभाषी भारत में वे ही चार बोलियाँ थीं, जिनका उल्लेख लौकिक संस्कृत के प्रसंग में किया जा चुका है-पश्चिमोत्तरी दक्षिणी, मध्यवर्ती तथा पूर्वी। हाँ, संस्कृत-काल की तुलना में उनके अन्तर कुछ और उभर आए थे।

प्रथम प्राकृत के अन्तर्गत पालि के अतिरिक्त अभिलेखी प्राकृत भी आती है। इसके अधिकांश लेख शिला पर हैं, अतः इसकी एक संज्ञा शिलालेखी प्राकृत भी है। इसकी सामग्री है- (1) अशोकी अभिलेख, (2) अशोकेतर अभिलेख। अशोकी अभिलेखों से तीसरी सदी ई. पू. में एवं अशोकेतर से ई. पू. की अन्तिम तीन सदियों में भाषा की स्थिति तथा स्वरूप का पता चलता है। साथ

ही यह भी पता चलता है कि उस काल में मानक भाषा की कम-से-कम चार बोलियाँ थीं- पश्चिमोत्तरी, दक्षिणी-पश्चिमी, मध्यपूर्वी, पूर्वी।

द्वितीय प्राकृत (1 ई. से 500 ई.)

मध्यकालीन आर्यभाषा के प्रारम्भ में पीछे 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार किया गया है। ऐसा अनुमान लगता है कि जनभाषा का संस्कार करके जब उसे 'संस्कृत' संज्ञा से विभूषित किया गया तो वह जनभाषा, जो उसकी तुलना में असंस्कृत थी, और पण्डितों में प्रचलित इस भाषा के विरुद्ध, जो 'प्राकृत' या सामान्य लोगों में बोली जाती थी, सहज ही 'प्राकृत' नाम की अधिकारिणी बन बैठी। 'प्राकृत' शब्द के दो अर्थ हैं। पहले अर्थ में यह 5वीं सदी ई. पू. से 1000 ई. तक की भाषा है, जिसमें प्रथम प्राकृत में 'पालि' और 'अभिलेखी प्राकृत' हैं, द्वितीय प्राकृत में अपभ्रंश (एवं तथाकथित अवहट्ट) आती हैं। तृतीय प्राकृत में भारत एवं भारत के बाहर प्रयुक्त विभिन्न धार्मिक, साहित्यिक और अन्य प्राकृत हैं, केवल द्वितीय प्राकृत के लिए भी प्राकृत नाम का प्रयोग होता है।

प्राकृत के धर्म, प्रदेश, प्रयोग, लेखन-आधार आदि के आधार पर कई भेद किए गए हैं, जिनमें मुख्य शौरसेनी, पेशाची, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी, केकय, टक्क, ब्राचड, खस आदि हैं। आगे इन पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

शौरसेनी - यह प्राकृत मूलतः मथुरा या शूरसेन के आसपास की बोली थी। इसका विकास वहाँ की पालिकालीन स्थानीय बोली से हुआ था। मध्यदेश की भाषा होने के कारण इसे कुछ लोग संस्कृत की भाँति उस काल की मानक भाषा मानते हैं। मध्यदेश संस्कृत का केन्द्र था, इसी कारण शौरसेनी उससे बहुत प्रभावित है। इस प्रभाव के कारण शौरसेनी में अपेक्षाकृत प्राचीनता है तथा यह कुछ कृत्रिम है। संस्कृत नाटकों की गय की भाषा शौरसेनी ही है। 'कर्पूरमंजरी' का गद्य इसी में है। इसका प्राचीनतम रूप अश्वघोष के नाटकों में मिलता है। जैनो (दिगम्बर सम्प्रदाय) ने अपने साम्प्रदायिक ग्रन्थों के लेखन में भी इसका प्रयोग किया है। शौरसेनी में तत्सम शब्द अपेक्षाकृत अधिक हैं। शौरसेनी की प्रमुख विशेषताएँ ये हैं- (1) असंयुक्त तथा दो स्वरों के बीच में आने वाला सं। त् इसमें दू हो गया है और थू धू (गच्छति > गच्छदि, कचय > कधीहि)। (2) क्ष का विकास सामान्यतः क्खू में हुआ है (इक्षु > इक्खू, कुक्षि > कुक्खि)। यह उल्लेख्य है कि महाराष्ट्री में यह च्छू (इक्षु > उच्छु) हो जाता है। (3) ऋ का विकास इ है (गृद्ध गिद्ध)। (4) संयुक्त व्यंजनों के सरलीकरण की प्रवृत्ति है, किन्तु अर्द्धमागधी या महाराष्ट्री आदि से कम (कर्तुम > कादुं, उत्सव > उस्सव > ऊसव)। यह भी उल्लेख्य है कि ऐसी स्थिति में क्षतिपूरक दीर्घाकरण (अ > आ, उ > ऊ) की प्रवृत्ति भी है। (5) आदरार्थ आज्ञा के रूप महाराष्ट्री एवं अर्द्धमागधी की भाँति-एज्ज लगाकर (बट्टेज्ज) नहीं बनते। वे संस्कृत के अनुसार हैं-सं। (वर्तेत बट्टे)। (6) केवल परस्मैपद का प्रयोग मिलता है, आत्मनेपद का प्रायः नहीं। (7) रूपों की दृष्टि से यह कुछ बातों में संस्कृत की ओर झुकी है, जो मध्यदेश में रहने का प्रभाव है, किन्तु साथ ही, महाराष्ट्री का भी इससे काफी साम्य है।

पेशाची-महाभारत में 'पिशाच' जाति का उल्लेख है। ये उत्तर-पश्चिम में कश्मीर के पास रहते थे। ग्रियर्सन पेशाची को वहीं की 'दरद' से प्रभावित भाषा मानते हैं। हार्नले इसे द्रविड़ों द्वारा प्रयुक्त प्राकृत मानते हैं। पुरुषोत्तम देव ने अपने प्राकृतानुशासन में संस्कृत और शौरसेनी का इसे विकृत रूप माना है। इस प्रकार इसको लेकर काफी विवाद है। पेशाची में साहित्य नहीं के बराबर है। ऐसा अनुमान लगाने के आधार हैं कि कभी इसमें काफी साहित्य था। गुणादय का बृहत् कथा-संग्रह 'बृहत्कथा' मूलतः इसी में था। इसके अब केवल दो संस्कृत रूपान्तर ही बृहत्कथामंजरी, कथासरित्सागर-शेष हैं।

तृतीय प्राकृत (1500 ई. से 1000 ई. तक)

जैसा कि पीछे कहा गया है, तृतीय प्राकृत के अन्तर्गत अपभ्रंश भाषा आती है। अपभ्रंश का अर्थ है, 'गिरा हुआ', 'बिगड़ा हुआ'। प्राकृत की तुलना में भी जिस भाषा में ध्वन्यात्मक तथा व्याकरणिक परिवर्तन हो गया था, उसे पण्डितों ने 'अपभ्रंश' या 'अवहट्ट' ('अपभ्रष्ट') नाम से अभिहित किया। अपभ्रंश प्राकृत तथा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की कड़ी है। कुछ थोड़े से लोगों की धारणा यह है कि अपभ्रंश प्राकृत और आधुनिक भाषाओं के बीच की कड़ी नहीं है, अपितु वह भी प्राकृतकालीन ही एक क्षेत्रीय भाषा है, या एक प्राकृत है। किन्तु ऐसी संभावना है नहीं। अपभ्रंश प्राकृत और आधुनिक भाषाओं के बीच की कड़ी है, तथा हर आधुनिक भारतीय आर्यभाषा का जन्म किसी-न-किसी अपभ्रंश से हुआ है। भाषा के अर्थ में अपभ्रंश नाम का प्रयोग छठी सदी में मिलने लगता है।

बोलियाँ- यों तो 'प्राकृत-सर्वस्व' ग्रन्थ में अपभ्रंश के 27 भेद स्वीकार किए गए हैं, किन्तु मुख्य अपभ्रंश केकय, टक्क, ब्राचड, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी मानी जा सकती हैं। इनके स्थान वे ही थे जिनका उल्लेख पीछे प्राकृतों के प्रसंग में हो चुका है। डॉ. चटर्जी ने खरस नाम की एक अपभ्रंश की भी कल्पना की है जिसका स्थान पर्वतीय क्षेत्रों में माना है। यों याकोबी ने अपभ्रंश के चार भेद, तगारे ने तीन भेद तथा नामवर सिंह ने दो भेद किए हैं, किन्तु ये भेद साहित्य में प्रयुक्त भाषा के आधार पर किए गए हैं। प्राकृतों और आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच की कड़ी के रूप में अपभ्रंश के 6-7 भेद मानने ही पड़ेंगे।

अपभ्रंशों की सामान्य विशेषताएँ

(1) 'अ' का पूर्वी तथा पश्चिमी अपभ्रंशों में संवृत-विवृत का भेद था। (2) ऋ का लिखने में प्रयोग था, किन्तु उसका उच्चारण 'रि' होता था। (3) श् का प्रचार केवल मागधी (संभवतः पूर्वी मागधी) में था। (4) ल् महाराष्ट्री में तो था ही साथ ही उड़ीसा में बोली जाने वाली मागधी एवं गुजरात, राजस्थान, बाँगड़ू, पहाड़ी में बोली जाने वाली शौरसेनी में भी था। ल्ह भी कहीं-कहीं था। (5) स्वरों का अनुनासिक रूप (त्रऋ का नहीं) प्रयुक्त होने लगा था। (6) संगीतात्मक स्वराघात समाप्त हो चुका था। बलात्मक स्वराघात विकसित हो चुका था। (7) अपभ्रंश एक उकार-बहुला भाषा थी।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ

लगभग 1000 ई. के आसपास अपभ्रंश के विभिन्न रूपों से उपर्युक्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास हुआ। आधुनिक भाषाओं में भारतीय साहित्य-रचना तो 1100 ई. में या उसके भी बाद शुरू हुई, किन्तु उनका जन्म 1000 ई. के आस-पास हो चुका था। वस्तुतः कोई भी भाषा जन्म लेते ही साहित्य की भाषा नहीं बनती। पैदा होने के सौ-डेढ़ सौ वर्ष बाद स्वीकृति मिलने तथा उसका स्वरूप कुछ निश्चित होने पर ही लोग उसे साहित्य-रचना के लिए अपनाते हैं। यहाँ सभी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का परिचय दिया जा रहा है।

सिन्धी — 'सिन्धी' शब्द का सम्बन्ध सं. सिन्धु से है। सिन्धु नदी के कारण ही सिन्ध प्रदेश 'सिन्ध' कहलाया और वहाँ की भाषा 'सिन्धी' कहलाई। सिन्धी के अधिकांश बोलने वाले पाकिस्तान के सिन्ध प्रान्त में हैं, किन्तु कुछ भारत में भी हैं जो हैं वो मुख्यतः बम्बई, अजमेर तथा दिल्ली आदि में हैं। इसके बोलने वालों की ठीक संख्या अज्ञात है। सिन्धी का विकास ब्राचड प्राकृत से विकसित ब्राचड अपभ्रंश से हुआ है। सिन्धी बोलने वाले मुख्यतः मुसलमान रहे हैं, इसी कारण सिन्धी के शब्द-भण्डार में अन्य कई आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की तुलना में अरबी-फारसी-तुर्की शब्दों का आधिक्य है, फिर भी संस्कृत तद्भव शब्दों की संख्या पूरे शब्द-भण्डार का लगभग 75 प्रतिशत है। सिन्धी भाषा में ग, ज, ड, व विशेष प्रकार

की अन्तर्मुखी ध्वनियाँ हैं। सिन्धी की मुख्य बोलियाँ 5-6 हैं-विचौली, सिराईकी, थरेली, लासी, लाड़ी तथा कच्छी। सिन्धी भाषा की लिपि फारसी लिपि के आधार पर बनी हुई है। भारतीय सिन्धियों में कुछ लोग फारसी पर आधारित सिन्धी लिपि तथा कुछ लोग देवनागरी लिपि का प्रयोग करते हैं। पहले सिन्धी के लिए कहीं-कहीं गुरुमुखी का भी प्रयोग होता था। सिन्धी में प्राचीन साहित्य तो कम है, किन्तु आधुनिक साहित्य अच्छा है।

लहँदा — ‘लहँदा’ का शाब्दिक अर्थ है ‘पश्चिमी’। पश्चिम पंजाब में बोली जाने के कारण इसे ‘लहँदा’ अथवा ‘लहँदी’ कहते हैं। यह मुख्यतः पाकिस्तान में पंजाब प्रान्त में बोली जाती है। यों भारत में भी इसके कुछ बोलने वाले रहते हैं। 1961 की जनगणना के अनुसार पाकिस्तान में इसके बोलने वालों की संख्या 1 करोड़ 22 लाख थी। इसका विकास केकय प्राकृत से विकसित केकय अपभ्रंश से मूलतः हुआ है। यों इस पर ब्राचड, पैशाची (पश्चिमोत्तर प्रदेश के आर्यतर लोगों की भाषा) तथा टक्क का प्रयाप्त प्रभाव पड़ा है।

पंजाबी — ‘पंजाब’ फारसी शब्द है जिसका अर्थ है ‘पाँच नदियों का देश’। मुख्यतः पंजाब में बोली जाने के कारण इसका नाम पंजाबी है। पंजाबी के कुछ बोलने वाले पाकिस्तान में तथा अधिकांश भारत में हैं। 1961 की जनगणना के अनुसार भारत में पंजाबियों की संख्या दो करोड़ तीन लाख थी। इसका विकास टक्क प्राकृत से विकसित टक्क अपभ्रंश से माना जाता है, किन्तु साथ ही इस पर केकय, शौरसेनी तथा पैशाची (कुछ) का प्रभाव रहा है। इनमें सबसे अधिक प्रभाव शौरसेनी का है। पंजाबी की अपनी पुरानी लिपि लंडा थी जिसे देवनागरी की सहायता से सुधार कर गुरु अंगद ने गुरुमुखी लिपि बनाई है। अब पंजाबी गुरुमुखी लिपि में ही लिखी जाती है। पंजाबी में घ, झ, ढ, ध, भ का उच्चारण कुछ कह, च्ह, गूह, व्ह, फ़ जैसा होता है। इसकी मुख्य बोलियाँ माड़ी, डोगरी (अब इसे प्रायः भाषा की स्थिति प्राप्त हो गई है), दोआबी, राठी आदि हैं। पंजाबी में आधुनिक साहित्य तो पर्याप्त मात्रा में है, किन्तु प्राचीन साहित्य बहुत थोड़ा है।

हिन्दी — ‘हिन्दी’ का मूल अर्थ ‘हिन्द’ (सं। सिन्धु फ़ा। हिन्दू हिन्द) का है। इसीलिए हिन्द की केन्द्रीय भाषा के लिए इस नाम का प्रयोग हो रहा है। हिन्दी के अन्तर्गत पाँच उपभाषाएँ या बोली-वर्ग हैं-पश्चिम हिन्दी (खड़ी बोली हरियाणी, ब्रज, बुन्देली, कनौजी का समूह), पूर्वी हिन्दी (अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी का समूह), राजस्थानी (उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी राजस्थानी का समूह), पहाड़ी (पश्चिमी तथा मध्यवर्ती पहाड़ी का समूह), बिहारी (भोजपुरी, मगही, मैथिली का समूह)। 1961 की जनगणना के अनुसार हिन्दी भाषा तथा उसके विभिन्न रूप बोलने वालों की संख्या 22 करोड़ 52 लाख थी। इनमें पश्चिमी हिन्दी का विकास शौरसेनी प्राकृत से विकसित शौरसेनी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से हुआ है। वस्तुतः अपने-अपने काल की राष्ट्रभाषा परिनिष्ठित संस्कृत, परिनिष्ठित पालि, परिनिष्ठित अपभ्रंश इसी क्षेत्र की भाषाएँ थीं, उसी परम्परा में आज इस क्षेत्र की हिन्दी राष्ट्रभाषा है। ‘पूर्वी हिन्दी’ अर्धमागधी अपभ्रंश (अर्धमागधी प्राकृत से विकसित, जिसमें कुछ अंश शौरसेनी का तथा अधिकांश मागधी का था) से तथा ‘राजस्थानी’ शौरसेनी अपभ्रंश के उस रूप से जो राजस्थान में प्रचलित था (इसे उपनागर अपभ्रंश भी कहते हैं, इसका सम्बन्ध शौरसेनी प्राकृत से है), विकसित है। पहाड़ी के बारे में विवाद है। डॉ. चटर्जी इसे खस अपभ्रंश से जोड़ते हैं। मेरे विचार में शौरसेनी प्राकृत से विकसित शौरसेनी अपभ्रंश के उस रूप से जो राजस्थान में प्रचलित था।

गुजराती — ‘गुजरात’ नाम का सम्बन्ध ‘गुर्जर’ जाति से है-गुर्जर + त्रागज्जस्ता गुजरात। गुजरात की भाषा गुजराती है। 1961 की जनगणना के अनुसार गुजराती बोलने वाले लगभग 2 करोड़ 3 लाख थे। तैसितोरी के अनुसार प्रारम्भ में गुजराती तथा राजस्थानी एक ही भाषा के दो स्थानीय रूप थे। इस प्रकार इसका सम्बन्ध शौरसेनी अपभ्रंश के उस रूप से है जो गुजरात

में बोला जाता था। उस प्राकृत तथा अपभ्रंश को कुछ लोगों ने अलग नाम 'लाटी प्राकृत' और 'नागर अपभ्रंश' दिया है। गुजराती की लिपि अपनी है जिसमें शिरोरेखा नहीं होती। गुजराती साहित्य की दृष्टि से पर्याप्त सम्पन्न भाषा है। इसकी मुख्य बोलियाँ काठियावाड़ी, पट्टनी, सुरती आदि हैं।

मराठी — महाराष्ट्र की भाषा मराठी का नाम सं. शब्द 'महाराष्ट्रीय' से विकसित है। 1961 की गणना के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या लगभग 3 करोड़ 33 लाख थी। इसका विकास महाराष्ट्रीय प्राकृत से विकसित महाराष्ट्रीय अपभ्रंश से हुआ है। इसकी लिपि देवनागरी है किन्तु कुछ लोग मोड़ी का भी प्रयोग करते हैं। इसकी मुख्य बोलियाँ कोंकणी (इसे अब लोग भाषा मानने लगे हैं), नागपुरी, कोष्टी, माहारी आदि हैं। मराठी साहित्य बहुत सम्पन्न है।

बंगला — संस्कृत शब्द बंग + आल (प्रत्यय) से बंगाल बना है, और वहाँ की भाषा बंगाली अथवा बंगला है। अब बंगाली पश्चिमी बंगाल (भारत) तथा बांग्लादेश में बोली जाती है। 1961 की गणना के अनुसार भारत में 3 करोड़ 38 लाख बंगला-भाषी थे तो पाकिस्तान (अब बांग्लादेश में) 2 करोड़ 62 लाख। अर्थात् कुल लगभग 6 करोड़। बंगला का सम्बन्ध मागधी प्राकृत से विकसित मागधी अपभ्रंश (जिसे गौड़ी अपभ्रंश भी कहते हैं) से है। इसकी मुख्य बोलियाँ पश्चिमी, दक्षिणी-पश्चिमी, उत्तरी, राजवंगशी, पूर्वी आदि हैं। बंगला की अपनी लिपि है। बंगाली साहित्य बहुत ही सम्पन्न है।

असमी — आसाम की भाषा असमी अथवा असमिया 1961 की जनगणना के अनुसार लगभग 3 करोड़ 39 लाख लोगों द्वारा बोली जाती है। इसका सम्बन्ध मागधी प्राकृत से उत्पन्न मागधी अपभ्रंश के उत्तरी-पूर्वी रूप से है। यों इस पर प्राचीन बंगला का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। असमी की अपनी लिपि है जो बंगला से बहुत मिलती-जुलती है। इसकी मुख्य बोली विशुपुरिया है। असमी में पर्याप्त साहित्य है।

उड़िया — उड़ीसा की भाषा उड़िया है। उड़ीसा का सम्बन्ध 'ओड्र' शब्द से है जो मूलतः द्रविड शब्द 'ओड' से निकला है। 1961 की जनगणना के अनुसार इसके बोलने वाले लगभग 1 करोड़ 57 लाख थे। उड़िया मागधी प्राकृत से विकसित मागधी अपभ्रंश के दक्षिणी पूर्वी रूप से निकली है। उड़िया भाषा बंगला से बहुत मिलती-जुलती है, किन्तु इसकी लिपि उससे सर्वथा भिन्न है जो ब्राह्मी की उत्तरी शैली से विकसित है, किन्तु साथ ही तेलुगु लिपि से प्रभावित है। उड़िया की मुख्य बोलियाँ गंजामी, संभलपुरी, भत्री आदि हैं।

सिंहली तथा जिप्सी भी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में आती हैं, किन्तु वे भारत में नहीं हैं, अतः उनका परिचय नहीं दिया जा रहा है। नेपाली (पहाड़ी का तीसरा रूप 'पूर्वी पहाड़ी') भी इसी में है, किन्तु उसके कुछ ही बोलने वाले भारत में हैं। मुख्य क्षेत्र नेपाल है। ग्रियर्सन ने खानदेशी (खानदेश में बोली जाने वाली) तथा भीली (राजस्थान की सीमा पर बोली जाने वाली) को भी अलग स्थान दिया था, किन्तु अब इन्हें अलग भाषाएँ नहीं माना जाता।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण

उपर्युक्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के वर्गीकरण पर विभिन्न लोगों (हार्नले, वेवर, ग्रियर्सन, टर्जी, धीरेन्द्र वर्मा, भोलानाथ तिवारी आदि) द्वारा विभिन्न रूपों में विचार किया। यहाँ कुछ प्रमुख का उल्लेख किया जा रहा है :-

(अ) इस प्रसंग में प्रथम नाम हार्नले का लिया जा सकता है। उन्होंने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं को 4 वर्गों में रखा है- (क) पूर्वी गौडियन-पूर्वी हिन्दी (इसी में बिहारी भी है), बंगला, असमी, उड़िया। (ख) पश्चिमी गौडियन-पश्चिमी हिन्दी (राजस्थानी भी), गुजराती, सिन्धी, पंजाबी। (ग) उत्तरी गौडियन-गढ़वाली, नेपाली आदि पहाड़ी। (घ) दक्षिणी गौडियन-मराठी।

(आ) हार्नले ने भारतीय आर्यभाषाओं के अध्ययन के आधार पर पिछली सदी में यह सिद्धान्त रखा था कि भारत में आर्य कम-से-कम दो बार आये। पहले आर्य आधुनिक पंजाब में आकर बसे थे। कुछ दिन बाद दूसरे आर्यों का हमला हुआ। जैसे कहीं कील ठोकने पर कील छेद बनाकर बैठ जाती है, और उस बने छेद के स्थान पर जो चीज रहती है, चारों ओर चली जाती है, उसी प्रकार नवागत आर्य उत्तर से आकर प्राचीन आर्यों के स्थान पर जम गये और पूर्वागत पूरब, दक्षिण और पश्चिम में फैल गए। इस प्रकार नवागत आर्य भीतरी कहे जा सकते हैं और पूर्वागत बाहरी। इस भीतरी और बाहरी को ग्रियर्सन ने अंशतः स्वीकार किया और इसी आधार पर उन्होंने अपना पहला वर्गीकरण प्रस्तुत किया। इसमें 3 वर्ग हैं (1) बाहरी उपशाखा, (क) पश्चिमोत्तरी समुदाय (लहँदा, सिन्धी), (ख) दक्षिणी समुदाय (मराठी), (ग) पूर्वी समुदाय (उड़िया, बंगाली, असमी, बिहारी)। (2) मध्यवर्गी उपशाखा - मध्यवर्ती समुदाय (पूर्वी हिन्दी)। (3) भीतरी उपशाखा (क) केन्द्रीय समुदाय (पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, भीली, राजस्थानी गुजराती) गुजराती, भीली, खानदेशी), (ख) पहाड़ी समुदाय (पूर्वी, मध्यवर्ती, पश्चिमी)। बाद में ग्रियर्सन ने एक नया वर्गीकरण सामने रखा जो इस प्रकार है- (क) मध्यदेशी (पश्चिमी हिन्दी), (ख) अन्तर्वर्ती- (i) पश्चिमी हिन्दी से विशेष घनिष्टता वाली पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, पहाड़ी (पूर्वी, पश्चिमी, मध्य), (ii) बहिरंग से सम्बद्ध (पूर्वी हिन्दी), (ग) बहिरंग भाषाएँ- (1) पश्चिमोत्तरी (लहँदा, सिन्धी), (2) दक्षिणी (मराठी), (3) पूर्वी (बिहारी, उड़िया, बंगाली, असमी)।

ग्रियर्सन का वर्गीकरण ध्वनि, व्याकरण या रूप तथा शब्द-समूह इन तीन बातों पर आधारित है। डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने इन तीनों की ही आलोचना की है। उन्हीं के आधार पर ग्रियर्सन के कुछ प्रमुख आधार संक्षिप्त आलोचना के साथ यहाँ दिये जा रहे हैं।

भारतीय आर्य भाषाओं के तीन चरण हैं

प्राचीन आर्य भाषाएं - (2000 ईसा. पू. -500 ईसा. पू.)

वैदिक संस्कृत (2000 ईसा. पू. -1000 ईसा. पू.), लौकिक संस्कृत (1000 ईसा. पू. -500 ईसा. पू.)

मध्यकालीन आर्यभाषाएं (500 ईसा. पू. -1000 ई.) - पाली (500 ईसा. पू.-1 ई.)

प्राकृत (1 ई. - 500 ई.)

अपभ्रंश व अवहट्ट (500 ई.-1000 ई.)

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं - हिंदी, बांग्ला, उड़िया, मराठी, गुजराती, पंजाबी, सिंधी, आदि) -1000 ई. अब तक)

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएं पाली की प्रथम अवस्था है।

इसमें प्रमुख ग्रन्थ -

अट्टकथा साहित्य - रचयिता बुद्धघोष 5 वीं सदी

विसुद्धिमग्ग - आचार्य बुद्धघोष 5 वीं सदी

कच्चायन व्याकरण - महाकाच्यायन 7वीं सदी 675

मोगलान व्याकरण -मोगलान 12 वीं सदी 817 सूत्र

सदनीति व्याकरण - अग्निवंश 1154 ई. 27 अध्याय 1341 सूत्र।

विसुद्धिमग्ग को बौद्ध सिद्धांतों का कोश भी कहते हैं

प्राकृत - प्राकृत के विकास की अवस्थाओं को किशोरीदास वाजपेई आदि ने वैयाकरण के तीन चरणों में बांट कर देखा है -

प्रथम प्राकृत - नमि साधु ने प्राकृत के संबंध में लिखा है प्राक पूर्व कृत प्राकृत अर्थात् पहले से बनी हुई भाषा

द्वितीय प्राकृत - इसमें कुछ विद्वान ऐसा मानते हैं कि संस्कृत भाषा के सरलीकरण के कारण प्राकृत भाषा बनी।

तृतीय प्राकृत - सामान्य रूप से वर्तमान काल में प्राकृत नाम इस भाषा के लिए रूढ़ हो गया है जो ईस्वी सन् की शुरुआत से पांचवीं शताब्दी तक प्रमुख साहित्यिक भाषा के रूप में प्रचलित रही।

9.4 हिंदी की उपभाषाएँ (बोलियाँ)

जॉर्ज ग्रियर्सन और सुनीति कुमार चटर्जी जैसे भाषाविदों ने हिंदी की बोलियों को मुख्य रूप से 5 उप-भाषाओं और 18 बोलियों में विभाजित किया है।

हिंदी की उप-भाषाएँ और उनकी बोलियाँ

1. पश्चिमी हिंदी -

यह उप-भाषा 'शौरसेनी अपभ्रंश' से विकसित हुई है। यह हिंदी का सबसे महत्वपूर्ण समूह है क्योंकि आधुनिक "मानक हिंदी" इसी की एक बोली 'खड़ी बोली' पर आधारित है।

खड़ी बोली (कौखी) : यह दिल्ली, मेरठ, बिजनौर और सहारनपुर के आसपास बोली जाती है। आज की प्रशासनिक और साहित्यिक हिंदी इसी का परिष्कृत रूप है।

ब्रजभाषा : यह मथुरा, आगरा और अलीगढ़ के क्षेत्र में बोली जाती है। मध्यकाल में भक्तिकाल के कवियों (सूरदास, रसखान) ने इसे अपनी मुख्य साहित्यिक भाषा बनाया था।

हरियाणवी (बांगरू) : यह हरियाणा और दिल्ली के कुछ ग्रामीण हिस्सों में बोली जाती है। इसकी प्रकृति थोड़ी 'जाटू' या कठोर मानी जाती है।

बुंदेली : यह बुंदेलखंड (झांसी, ग्वालियर, सागर) के क्षेत्र में बोली जाती है। 'आल्हा-ऊदल' के लोकगीत इसी क्षेत्र की विशेषता हैं।

कन्नौजी : यह उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद, इटावा और कानपुर के आसपास बोली जाती है। यह ब्रजभाषा से काफी मिलती-जुलती है।

2. पूर्वी हिंदी -

इसका विकास 'अर्धमागधी अपभ्रंश' से हुआ है। यह मुख्य रूप से मध्य उत्तर प्रदेश और छत्तीसगढ़ के क्षेत्रों में बोली जाती है।

अवधी : यह अयोध्या, लखनऊ और रायबरेली के क्षेत्र में बोली जाती है। गोस्वामी तुलसीदास की 'रामचरितमानस' और मलिक मोहम्मद जायसी की 'पद्मावत' इसी बोली के महान ग्रंथ हैं।

बघेली : यह मध्य प्रदेश के रीवा और आसपास के क्षेत्रों (बघेलखंड) में बोली जाती है।

छत्तीसगढ़ी : यह छत्तीसगढ़ राज्य की मुख्य बोली है। इसकी अपनी समृद्ध लोक संस्कृति और साहित्य है।

3. राजस्थानी हिंदी -

यह 'शौरसेनी अपभ्रंश' के ही एक रूप से विकसित हुई है। इसे भौगोलिक आधार पर चार भागों में बांटा गया है।

मास्वाड़ी (पश्चिमी राजस्थानी) : जोधपुर, जैसलमेर और बीकानेर क्षेत्र। यह राजस्थान की सबसे प्रमुख बोली है।

जयपुरी/ढूंढाड़ी (पूर्वी राजस्थानी) : जयपुर और अजमेर के क्षेत्रों में।

मेवाती (उत्तरी राजस्थानी) : अलवर और भरतपुर के क्षेत्रों में।

मालवी (दक्षिणी राजस्थानी) : मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र (इंदौर, उज्जैन) में।

4. बिहारी हिंदी -

इसका विकास 'मागधी अपभ्रंश' से हुआ है। यह बिहार और झारखंड के क्षेत्रों में व्यापक रूप से बोली जाती है।

भोजपुरी : यह न केवल बिहार (आरा, बक्सर) बल्कि पूर्वी उत्तर प्रदेश (बनारस, गोरखपुर) में भी बोली जाती है। यह हिंदी की सबसे अधिक बोली जाने वाली बोलियों में से एक है और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी प्रसिद्ध है।

मैथिली : यह उत्तर बिहार (दरभंगा, मधुबनी) में बोली जाती है। इसे संविधान की 8वीं अनुसूची में अलग भाषा का दर्जा प्राप्त है। विद्यापति इसके सबसे प्रसिद्ध कवि हैं।

मगही : यह पटना, गया और नालंदा के क्षेत्रों में बोली जाती है।

5. पहाड़ी हिंदी -

यह हिमालय की निचली श्रेणियों (उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश) में बोली जाती है। इसका विकास 'खस अपभ्रंश' से माना जाता है।

कुमाऊँनी : उत्तराखंड के कुमाऊँ क्षेत्र (नैनीताल, अल्मोड़ा) में।

एढ़वाली : उत्तराखंड के गढ़वाल क्षेत्र (टिहरी, पौड़ी) में।

हिमाचली : हिमाचल प्रदेश के विभिन्न हिस्सों में बोली जाने वाली विभिन्न उप-बोलियाँ।

बोलियों का महत्व और वर्तमान स्थिति -

हिंदी की इन बोलियों के बीच का अंतर मुख्य रूप से उच्चारण, व्याकरण की बनावट और शब्दावली का है। उदाहरण के लिए :

- ब्रजभाषा में 'ओ' कार की प्रधानता होती है (जैसे : गयौ, खायौ)।
- अवधी में 'अ' कार की प्रधानता होती है।
- खड़ी बोली अधिक स्पष्ट और सीधी होती है।
- "कोस-कोस पर बदले पानी, चार कोस पर वाणी।" यह कहावत हिंदी क्षेत्र की भाषाई विविधता को पूरी तरह चरितार्थ करती है।

आज के समय में शिक्षा और मीडिया के प्रभाव के कारण 'खड़ी बोली' (मानक हिंदी) का विस्तार हुआ है, जिससे स्थानीय बोलियों के प्रयोग में कमी आई है। हालांकि, लोकगीतों, क्षेत्रीय सिनेमा (जैसे भोजपुरी फिल्म उद्योग) और सोशल मीडिया के माध्यम से इन बोलियों को पुनर्जीवित करने के प्रयास जारी हैं।

9.5 हिंदी ध्वनियाँ और उनका वर्गीकरण

1. प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल (संस्कृत)

हिंदी की जननी संस्कृत है। इस काल में ध्वनियाँ बहुत ही शुद्ध और जटिल थीं।

स्वर : ऋ, लृ जैसी ध्वनियाँ मौजूद थीं जिनका उच्चारण आज बदल चुका है।

व्यंजन : श, ष, स के उच्चारण में स्पष्ट अंतर था।

विशेषता : इस काल की ध्वनियाँ ‘संयोगात्मक’ थीं, यानी शब्दों के साथ विभक्तियाँ जुड़ी रहती थीं।

2. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल (पाली, प्राकृत, अपभ्रंश)

यही वह समय था जब ध्वनियों का सरलीकरण शुरू हुआ।

सरलीकरण : संस्कृत के कठिन संयुक्त व्यंजन टूटने लगे। जैसे : ‘कर्म’ से ‘कम्म’ और फिर ‘काम’ बना।

ध्वनि लोप : शब्दों के बीच की ध्वनियाँ लुप्त होने लगीं।

अपभ्रंश : हिंदी का सीधा जन्म अपभ्रंश (विशेषकर शौरसेनी) से हुआ। यहाँ तक आते-आते ‘ऋ’ का उच्चारण ‘रि’ या ‘रे’ जैसा होने लगा।

3. आधुनिक हिंदी काल (1000 ई. से अब तक)

आधुनिक काल में हिंदी की ध्वनियों में क्रांतिकारी बदलाव आए, जिन्हें हम निम्न बिंदुओं में देख सकते हैं।

का। स्वर संबंधी परिवर्तन

ऐ और औ : प्राचीन काल में ये ‘अइ’ और ‘अउ’ थे, लेकिन आधुनिक हिंदी में ये एकल स्वर की तरह उच्चरित होते हैं (जैसे : ‘बैल’ में ऐ)।

ऋ का परिवर्तन : अब इसका उच्चारण पूरी तरह से ‘रि’ स्वर + व्यंजन हो गया है।

ख। व्यंजन संबंधी परिवर्तन

विकास (ड़ और ढ) : यह हिंदी की अपनी मौलिक देन है। संस्कृत में ‘ड़’ और ‘ढ’ ध्वनियाँ नहीं थीं, ये विकास के क्रम में विकसित हुईं।

विदेशी ध्वनियों का आगमन :

अरबी-फ़ारसी : इनके प्रभाव से ‘क़, ख़, ग़, ज़, फ़’ ध्वनियाँ आईं (नुक्ता वाली ध्वनियाँ)।

अंग्रेज़ी : अंग्रेज़ी के प्रभाव से ‘ऑ’ (जैसे : डॉक्टर, कॉलेज) ध्वनि हिंदी में शामिल हुई।

ग। विसर्ग और श-ष का मिश्रण

हिंदी में अब ‘विसर्ग’ (:) का प्रयोग केवल तत्सम (संस्कृत से आए) शब्दों तक सीमित रह गया है।

बोलचाल की भाषा में ‘ष’ और ‘श’ का अंतर लगभग समाप्त हो गया है, दोनों को अक्सर ‘श’ की तरह ही बोला जाता है।

हिंदी भाषा की ध्वनियों का वर्गीकरण मुख्य रूप से दो भागों में किया जाता है : स्वर और व्यंजन, इनके वर्गीकरण का मुख्य आधार उच्चारण स्थान और उच्चारण का प्रयत्न होता है।

1. स्वर

स्वर वे ध्वनियाँ हैं जिनका उच्चारण स्वतंत्र रूप से होता है। हिंदी में कुल 11 स्वर माने जाते हैं।

उच्चारण समय (मात्रा) के आधार पर

ह्रस्व स्वर : जिनके उच्चारण में कम समय लगता है (अ, इ, उ, ऋ)।

दीर्घ स्वर : जिनके उच्चारण में ह्रस्व से दुगुना समय लगता है (आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ)।

जीभ के प्रयोग के आधार पर :

अग्र स्वर : इ, ई, ए, ऐ

मध्य स्वर : अ

पश्च स्वर : आ, उ, ऊ, ओ, औ

2. व्यंजन -

व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं जो स्वरों की सहायता से बोली जाती हैं। इनका वर्गीकरण तीन प्रमुख आधारों पर होता है:

क. उच्चारण स्थान के आधार पर (वर्ग)।

ख. प्रयत्न के आधार पर

स्पर्श व्यंजन : क से म तक (25 व्यंजन)।

अन्तःस्थ व्यंजन : य, र, ल, वा।

ऊष्म व्यंजन : श, ष, स, ह (इनमें घर्षण से गर्मी पैदा होती है)।

संयुक्त व्यंजन : क्ष, त्र, ज्ञ, श्रा।

ग. प्राणत्व (हवा) के आधार पर :

अल्पप्राण : जिनके उच्चारण में कम हवा निकले (वर्ग का 1, 3, 5वाँ वर्ण)।

महाप्राण : जिनके उच्चारण में अधिक हवा निकले (वर्ग का 2, 4वाँ वर्ण)।

घ. घोषत्व (कंपन) के आधार पर :

अघोष : स्वरतंत्रियों में कंपन नहीं होता (वर्ग का 1, 2वाँ वर्ण)। सघोष: स्वरतंत्रियों में कंपन होता है (वर्ग का 3, 4, 5वाँ वर्ण और सभी स्वर)।

9.6 शब्द साधन/शब्द रचना

हिंदी भाषा की शब्द संपदा विश्व की सबसे समृद्ध और विविध शब्द प्रणालियों में से एक है। शब्द साधन (Etymology and Morphology) के अंतर्गत हम यह समझते हैं कि शब्द कैसे बनते हैं, उनका मूल क्या है और वे समय के साथ कैसे विकसित हुए।

हिंदी की शब्द संरचना को मुख्य रूप से चार आधारों पर समझा जा सकता है: स्रोत (Origin), रचना (Structure), अर्थ (Meaning) और प्रयोग (Usage)।

1. स्रोत या उत्पत्ति के आधार पर शब्द

हिंदी एक 'सामासिक संस्कृति' की भाषा है। इसमें संस्कृत की विरासत भी है और विदेशी भाषाओं का प्रभाव भी।

क. तत्सम शब्द

ये वे शब्द हैं जो संस्कृत से बिना किसी परिवर्तन के हिंदी में आए हैं।

उदाहरण: अग्नि, वायु, सूर्य, हस्त, पुस्तक।

ये शब्द भाषा की गरिमा और तत्त्वमीमांसा को बनाए रखते हैं।

ख. तद्भव शब्द

संस्कृत के वे शब्द जो प्राकृत, अपभ्रंश से होते हुए समय के साथ बदलकर सरल हो गए।

उदाहरण : 'अग्नि' से आग, 'हस्त' से हाथ, 'दुग्ध' से दूध।

हिंदी की अधिकांश बोलचाल की भाषा तद्भव प्रधान है।

ग. देशज शब्द

वे शब्द जिनकी उत्पत्ति का कोई स्पष्ट स्रोत नहीं मिलता और जो स्थानीय बोलियों या लोकभाषा से आए हैं।

उदाहरण : लोटा, पगड़ी, खिचड़ी, झोला, डिबिया।

घ. विदेशी (आगत) शब्द

व्यापार, आक्रमण और औपनिवेशिक इतिहास के कारण हिंदी में अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी, पुर्तगाली और फ्रांसीसी शब्द घुल-मिल गए हैं।

फारसी/अरबी : कागज, बाजार, कलम, वकील, दुनिया।

अंग्रेजी : स्कूल, स्टेशन, पुलिस, पेट, कोर्ट।

पुर्तगाली : अलमारी, बाल्टी, गमला।

2. रचना या बनावट के आधार पर शब्द

शब्दों का निर्माण कैसे होता है, इस आधार पर इन्हें तीन श्रेणियों में बाँटा गया है: **रुद्ध शब्द**: जिनके खंड करने पर कोई अर्थ न निकले (जैसे : घर, जल, फल)। **यौगिक शब्द**: जो दो या दो से अधिक शब्दों के योग से बनते हैं (जैसे : पाठशाला = पाठ + शाला)। **योगरुद्ध शब्द**: जो शब्द यौगिक तो होते हैं, पर अपना सामान्य अर्थ छोड़कर विशेष अर्थ देते हैं (जैसे: 'जलज' का अर्थ है कमल, न कि केवल जल में जन्म लेने वाली हर वस्तु)।

क. शब्द निर्माण की विधियाँ

हिंदी में नए शब्दों का निर्माण मुख्य रूप से चार प्रकार से होता है:

I. उपसर्ग -

शब्द के प्रारंभ में जुड़कर अर्थ बदलने वाले शब्दांश।

II. प्रत्यय -

शब्द के अंत में जुड़कर नया शब्द बनाने वाले शब्दांश।

कृत प्रत्यय : जो क्रिया के अंत में लगते हैं (जैसे: लिख + आवट = लिखावट)।

तद्धित प्रत्यय : जो संज्ञा या विशेषण में लगते हैं (जैसे: सुंदर + ता = सुंदरता)।

III. संधि -

दो ध्वनियों के मेल से होने वाला विकार।

IV. समास -

दो या दो से अधिक शब्दों को मिलाकर संक्षिप्त शब्द बनाना।

राजपुत्र : राजा का पुत्र।

यथाशक्ति : शक्ति के अनुसार।

4. शब्द-शक्ति और अर्थ का विस्तार -

शब्द केवल वर्णों का समूह नहीं है, उसमें एक 'शक्ति' होती है जिससे अर्थ बोध होता है। भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार तीन शब्द-शक्तियाँ हैं।

अभिधा : शब्द का सीधा और मुख्य अर्थ (जैसे : “गधा खेत चर रहा है”)

लक्षणा : मुख्य अर्थ बाधित होने पर रुढ़ि या प्रयोजन से लिया गया अर्थ (जैसे : “वह तो निरा गधा है” - यहाँ गधा का अर्थ मूर्ख है)।

व्यंजना : जहाँ न मुख्य अर्थ काम करे न लक्ष्यार्थ, बल्कि एक नया गूढ़ अर्थ निकले।

5. हिंदी शब्द भंडार की परिवर्तनशीलता -

हिंदी की सबसे बड़ी शक्ति इसकी समावेशी प्रकृति है। यह भाषा ‘अधम’ और ‘अदालत’ को एक साथ स्वीकार करती है। आधुनिक काल में तकनीकी और वैज्ञानिक प्रगति के साथ, हिंदी में नए पारिभाषिक शब्दों का निर्माण भी तेजी से हुआ है। जैसे ‘अभियंता’ (Engineer) और ‘संगणक’ (Computer)।

विकारी और अविकारी शब्द

विकारी : जिनमें लिंग, वचन और कारक के आधार पर परिवर्तन होता है (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया)। **अविकारी (अव्यय):** जो कभी नहीं बदलते (जैसे: धीरे-धीरे, और, तथा, किंतु)।

हिंदी का शब्द साधन अत्यंत वैज्ञानिक है। यह अपनी जड़ों (संस्कृत) से पोषण प्राप्त करती है और बाहरी दुनिया (विदेशी भाषाओं) से संवाद करती है। शब्दों का यह विशाल समुद्र ही हिंदी को जीवंत और लोकप्रिय बनाता है। एक विद्यार्थी या लेखक के लिए शब्द साधन का ज्ञान न केवल भाषा की शुद्धि के लिए आवश्यक है, बल्कि अभिव्यक्ति की प्रखरता के लिए भी अनिवार्य है।

शब्द रचना -

शब्द रचना के अन्य आधार -

उपरोक्त व्याकरणिक विधियों के अलावा, हिंदी में कुछ अन्य तरीकों से भी शब्द बनते हैं :

क. पुनरुक्ति -

एक ही शब्द को दो बार दोहराकर नए अर्थ की अभिव्यक्ति।

जैसे : चलते-चलते, धीरे-धीरे, घर-घरा

ख. ध्वनि-अनुकरण -

आवाजों के आधार पर बने शब्द।

जैसे : खटखटाना, हिनहिनाना, चहचहाना।

ग. संकर शब्द -

दो अलग-अलग भाषाओं के शब्दों के मेल से बने शब्द।

जैसे : रेल (अंग्रेजी) + गाड़ी (हिंदी) = रेलगाड़ी; छाया (संस्कृत) + दार (फारसी) = छायादार।

6. शब्द रचना का महत्व -

हिंदी की शब्द रचना प्रक्रिया इतनी लचीली है कि यह समय के साथ नए तकनीकी शब्दों को भी अपने सांचे में ढाल लेती है। आज ‘ई-मेल’, ‘वेबसाइट’ और ‘सेल्फी’ जैसे शब्दों का हिंदीकरण या उनका सहज प्रयोग इसी जीवंतता का प्रमाण है।

शब्द रचना का ज्ञान होने से शब्द भंडार में वृद्धि होती है।

वर्तनी (Spelling) की अशुद्धियाँ कम होती हैं।

लेखन में सटीकता और गहराई आती है।

हिंदी भाषा की यह शब्द रचना प्रक्रिया इसे एक 'बहती नदी' की तरह बनाती है, जो अपनी प्राचीन संस्कृत विरासत को समेटे हुए भी आधुनिकता के नए शब्दों को आत्मसात करने की क्षमता रखता है।

9.7 वाक्य विन्यास व विराम चिह्न

भाषा को स्पष्ट और अर्थपूर्ण बनाने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

यहाँ इनका संक्षिप्त और व्यवस्थित विवरण दिया गया है:

1. हिंदी वाक्य विन्यास -

हिंदी भाषा में वाक्य विन्यास (Syntax) का अर्थ है वाक्यों की रचना के नियम। किसी भी भाषा को सही ढंग से बोलने और लिखने के लिए उसके व्याकरणिक ढाँचे को समझना अनिवार्य है। हिंदी एक 'विभक्ति प्रधान' और 'पद-क्रम' (Word Order) के प्रति संवेदनशील भाषा है।

नीचे हिंदी वाक्य विन्यास के प्रमुख अंगों, नियमों और प्रकारों का विस्तृत विवरण दिया गया है।

1. वाक्य की परिभाषा और अंग

वाक्य सार्थक शब्दों का वह समूह है जो किसी विचार को पूर्ण रूप से प्रकट करता है। वाक्य के मुख्य रूप से दो अंग होते हैं :

उद्देश्य (Subject) : वाक्य में जिसके बारे में कुछ कहा जाता है, उसे उद्देश्य कहते हैं (जैसे-राम, वह, नदी)।

विधेय (Predicate) : उद्देश्य के बारे में जो कुछ कहा जाता है, उसे विधेय कहते हैं। इसमें क्रिया और कर्म शामिल होते हैं।

2. हिंदी का पद-क्रम (Word Order)

अंग्रेजी में वाक्य संरचना S-V-O (Subject-Verb-Object) होती है, लेकिन हिंदी में यह S-V-O (कर्ता-कर्म-क्रिया) होती है।

सामान्य क्रम :

कर्ता (Subject) : वाक्य के प्रारंभ में।

कर्म (Object) : कर्ता के बाद।

क्रिया (Verb) : वाक्य के अंत में।

उदाहरण:

राम (कर्ता) पुस्तक (कर्म) पढ़ता है (क्रिया)।

विस्तारक नियमों का क्रम

विशेषण : हमेशा उस संज्ञा से पहले आता है जिसकी वह विशेषता बताता है। (जैसे : काला घोड़ा दौड़ रहा है।)

क्रिया विशेषण : क्रिया से ठीक पहले आता है। (जैसे : वह धीरे-धीरे चलता है।)

संबोधन और विस्मयादिबोधक : ये प्रायः वाक्य के सबसे प्रारंभ में आते हैं। (जैसे : हे राम ! यह क्या हो गया?)

3. अन्विति (Concord/Agreement)

वाक्य विन्यास में 'अन्विति' का अर्थ है पदों के बीच व्याकरणिक मेल। हिंदी में क्रिया का रूप कर्ता या कर्म के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार बदलता है।

कर्ता और क्रिया का मेल

यदि कर्ता के साथ विभक्ति चिह्न (जैसे 'ने') नहीं है, तो क्रिया कर्ता के अनुसार होगी। लड़का जाता है। (पुल्लिंग, एकवचन)

लड़कियाँ जाती हैं। (स्त्रीलिंग, बहुवचन)

कर्म और क्रिया का मेल :

यदि कर्ता के साथ 'ने' विभक्ति लगी हो, तो क्रिया कर्म के अनुसार बदलती है।
राम ने रोटी खाई. (यहाँ 'खाई' कर्म 'रोटी' के अनुसार है, कर्ता 'राम' के अनुसार नहीं।)

4. वाक्य के प्रकार

हिंदी में वाक्यों को दो आधारों पर विभाजित किया जाता है:

(क) रचना के आधार पर (Structural)

सरल वाक्य (Simple Sentence) : इसमें एक ही उद्देश्य और एक ही विधेय होता है। (जैसे : वर्षा हो रही है।)

संयुक्त वाक्य (Compound Sentence) : जब दो या दो से अधिक स्वतंत्र वाक्य समुच्चयबोधक अव्यय (और, किन्तु, परन्तु) से जुड़े हों। (जैसे : वह आया और सो गया।)

मिश्रित वाक्य (Complex Sentence) : इसमें एक मुख्य उपवाक्य होता है और अन्य आश्रित उपवाक्य।

(जैसे : शिक्षक ने कहा कि कल छुट्टी है।)

(ख) अर्थ के आधार पर (Semantic)

विधानवाचक : सामान्य सूचना देना।

निषेधवाचक : नकारात्मकता (नहीं, मत)।

प्रश्नवाचक : सवाल पूछना।

आज्ञावाचक : आदेश या प्रार्थना।

विस्मयादिबोधक : हर्ष, शोक या आश्चर्य प्रकट करना।

इच्छावाचक : शुभकामना या आशीर्वाद।

संदेहवाचक : संभावना प्रकट करना।

संकेतवाचक : एक क्रिया का दूसरी पर निर्भर होना।

5. पद-क्रम के विशेष नियम

हिंदी भाषा लचीली है, लेकिन अर्थ की स्पष्टता के लिए कुछ नियमों का पालन आवश्यक है।

नकारात्मक 'नहीं' का स्थान : यह क्रिया से ठीक पहले आता है। (वह फल नहीं खाता है।)

प्रश्नवाचक शब्द : यदि प्रश्न का उत्तर 'हाँ' या 'नहीं' में है, तो 'क्या' वाक्य के शुरू में आता है। यदि विवरण चाहिए, तो प्रश्नवाचक शब्द क्रिया से पहले आता है।

क्या आप घर जाएंगे?

आप घर कब जाएंगे?

द्विकर्मक क्रिया : यदि वाक्य में दो कर्म हों, तो मुख्य कर्म (निर्जीव) क्रिया के पास और गौण कर्म (सजीव) उससे पहले आता है।

मैंने मोहन को पत्र लिखा। ('पत्र' मुख्य कर्म है, 'मोहन' गौण।)

6. वाक्य अशुद्धियाँ और सुधार

वाक्य विन्यास में अक्सर पद-क्रम या अन्विति की गलतियाँ होती हैं: अशुद्ध : गरम गाय का दूध लाओ। शुद्ध : गाय का गरम दूध लाओ। (विशेषण का सही स्थान) अशुद्ध : तेरे को कहाँ जाना है? शुद्ध : तुम्हें कहाँ जाना है? (सर्वनाम संबंधी शुद्धि)

विराम चिह्न -

डॉ. रामचंद्र तिवारी हिंदी साहित्य के प्रकांड विद्वान और आलोचक माने जाते हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिंदी का गद्य साहित्य' और भाषाई निबंधों में हिंदी भाषा के विकास और उसमें विराम चिह्नों के आगमन पर विस्तार से चर्चा की है।

यहाँ डॉ. रामचंद्र तिवारी के दृष्टिकोण और ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर विराम चिह्नों के इतिहास का विस्तृत विवरण दिया गया है:

विराम चिह्नों का इतिहास : डॉ. रामचंद्र तिवारी का परिप्रेक्ष्य

हिंदी साहित्य में गद्य के विकास के साथ-साथ विराम चिह्नों का स्वरूप बदला है। डॉ. तिवारी के अनुसार, हिंदी में विराम चिह्नों का इतिहास प्राचीन भारतीय परंपरा और आधुनिक पाश्चात्य प्रभाव का सम्मिश्रण है।

1. प्राचीन और मध्यकालीन युग: सीमित चिह्नों का प्रयोग

रामचंद्र तिवारी ने उल्लेख किया है कि प्राचीन काल में संस्कृत, अपभ्रंश और पुरानी हिंदी में आज जैसे विविध विराम चिह्न नहीं थे। उस समय लेखन का मुख्य उद्देश्य पद्य (कविता) था।

एक पाई और दो पाई : प्राचीन पांडुलिपियों में केवल '।' (पूर्ण विराम) और '।' (दीर्घ विराम) का प्रयोग मिलता था।

उद्देश्य : इनका प्रयोग छंदों की यति (Pause) और चरण की समाप्ति को दर्शाने के लिए किया जाता था।

गद्य की कमी : चूंकि मध्यकाल तक गद्य का विकास सीमित था, इसलिए भावों के उतार-चढ़ाव को व्यक्त करने के लिए विशेष चिह्नों की आवश्यकता महसूस नहीं की गई।

2. आधुनिक काल (भारतेन्दु युग) : संक्रमण का काल

डॉ. तिवारी के अनुसार, विराम चिह्नों का व्यवस्थित प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चंद्र के समय से प्रारंभ हुआ। छापाखाना (Printing Press) : प्रेस के आगमन के बाद गद्य रचनाएँ बढ़ीं। जब गद्य का विस्तार हुआ, तो केवल 'पूर्ण विराम' से काम चलाना कठिन हो गया।

अंग्रेजी का प्रभाव : भारतेन्दु युगीन लेखकों ने अंग्रेजी साहित्य के अनुवाद और संपर्क के कारण अल्पविराम (,), अर्धविराम (;) और प्रश्नवाचक चिह्नों (?) को अपनाना शुरू किया। हालांकि, इस काल में भी इनका प्रयोग बहुत सुव्यवस्थित नहीं था।

3. द्विवेदी युग : मानकीकरण और अनुशासन

रामचंद्र तिवारी ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान को इस क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण माना है।

सरस्वती पत्रिका : द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के संपादन के माध्यम से हिंदी वर्तनी और विराम चिह्नों के प्रयोग को अनिवार्य और अनुशासित बनाया।

तत्कालीनता : उन्होंने यह स्थापित किया कि बिना उचित विराम चिह्नों के पाठक लेखक के मूल भाव को नहीं समझ सकता। इसी समय 'कोमा', 'कोलन' और 'डैश' जैसे चिह्नों का हिंदीकरण हुआ।

प्रमुख विराम चिह्नों का विकासक्रम

डॉ. तिवारी के विश्लेषण के आधार पर प्रमुख चिह्नों का विकास इस प्रकार समझा जा सकता है—

चिह्न नाम इतिहास और उपयोग

(1) पूर्ण विराम यह भारत का एकमात्र मौलिक विराम चिह्न है जो प्राचीन काल से चला आ रहा है।

(,) अल्पविराम अंग्रेजी के प्रभाव से आया। प्रारंभ में लेखक इसके स्थान पर रिक्त स्थान छोड़ देते थे।

(?) प्रश्नवाचक पहले प्रश्नवाचक शब्दों (क्या, क्यों) से ही काम चलाया जाता था, पर स्पष्टता के लिए इसे अपनाया गया।

(“”) उद्धरण चिह्न किसी के कथन को ज्यों का त्यों रखने की परंपरा गद्य साहित्य के विकास के साथ प्रबल हुई।

रामचंद्र तिवारी के अनुसार विराम चिह्नों की आवश्यकता

डॉ. तिवारी ने अपने लेखन में स्पष्ट किया है कि विराम चिह्न केवल सजावट की वस्तु नहीं हैं, बल्कि भाषा के 'यातायात नियम' हैं। उनके अनुसार—

अर्थ की स्पष्टता : एक ही वाक्य में विराम चिह्न की जगह बदल देने से अर्थ बदल जाता है। (उदाहरण : रोको मत, जाने दो। बनाम रोको, मत जाने दो।)

भाव प्रकटीकरण : विस्मय, हर्ष, शोक और घृणा जैसे भावों को बिना 'विस्मयादिबोधक चिह्न' (!) के लिखित रूप में व्यक्त करना असंभव है।

पठन की सुगमता : लंबे वाक्यों को छोटे-छोटे तार्किक टुकड़ों में बाँटने के लिए 'अर्धविराम' (;) और 'अल्पविराम' (,) आवश्यक हैं।

पाश्चात्य प्रभाव बनाम भारतीयता

डॉ. तिवारी ने यह भी रेखांकित किया कि जहाँ हमने पाश्चात्य जगत से कई चिह्न लिए हैं, वहीं 'पूर्ण विराम' (।) के रूप में हमने अपनी मौलिकता को बचाए रखा है। आज की हिंदी में हम केवल पूर्ण विराम के लिए अंग्रेजी के 'डॉट' (.) का प्रयोग नहीं करते (सिवाय संक्षिप्त अक्षरों के), जो हमारी भाषाई पहचान का हिस्सा है।

रामचंद्र तिवारी का मानना है कि विराम चिह्नों का इतिहास हिंदी गद्य के विकास की कहानी है। जैसे-जैसे विचार जटिल होते गए और गद्य की विधाएँ (कहानी, उपन्यास, निबंध) विकसित हुईं, वैसे-वैसे विराम चिह्नों का परिवार भी बढ़ता गया। आज ये चिह्न भाषा का अभिन्न अंग हैं जिनके बिना आधुनिक मानक हिंदी की कल्पना नहीं की जा सकती।

विशेष नोट : रामचंद्र तिवारी की दृष्टि में विराम चिह्नों का सही प्रयोग लेखक की संवेदना और व्याकरणिक ज्ञान का परिचायक है।

तिवारी जी के विश्लेषण के आधार पर यहाँ कुछ प्रमुख चिह्नों का 'विशेष विवरण' दिया गया है :

1. अल्पविराम (‘-Comma’) का संघर्ष और स्वीकार

डॉ. तिवारी के अनुसार, हिंदी गद्य के शुरुआती दौर (जैसे लल्लू लाल या सदल मिश्र की रचनाओं) में 'अल्पविराम' का कोई अस्तित्व नहीं था।

इतिहास : पहले वाक्य के बीच में थोड़ा रुकने के लिए कोई चिह्न नहीं होता था, पाठक को स्वयं अर्थ के अनुसार रुकना पड़ता था।

परिवर्तन : भारतेंदु काल में जब अनुवाद कार्य बढ़ा, तब लेखकों ने महसूस किया कि लंबे वाक्यों में सांस लेने और अर्थ स्पष्ट करने के लिए 'अल्पविराम' अनिवार्य है।

तिवारी जी का मत: वह मानते थे कि अल्पविराम का गलत स्थान पर प्रयोग पूरे वाक्य का 'अनर्थ' कर सकता है।

2. प्रश्नवाचक चिह्न (? - Question Mark)

प्राचीन काल में 'किम्', 'क्या', 'कौन' जैसे शब्दों से ही प्रश्न का बोध हो जाता था।

विकास : डॉ. तिवारी ने रेखांकित किया कि आधुनिक गद्य में 'व्यंग्य' और 'काकु वक्रोक्ति' (Intonation) को स्पष्ट करने के लिए इस चिह्न का महत्व बढ़ा।

विशेषता : कई बार वाक्य साधारण होता है, लेकिन अंत में प्रश्नवाचक चिह्न लगाने से उसका अर्थ पूरी तरह बदल जाता है। यह सूक्ष्मता पाश्चात्य संपर्क से हिंदी में सुदृढ़ हुई।

3. विस्मयादिबोधक चिह्न (! - Exclamation Mark)

डॉ. तिवारी के अनुसार, यह चिह्न हिंदी गद्य की 'भावुकता' और 'आवेग' को दर्शाने का सबसे सशक्त माध्यम बना।

प्रयोग : छायावादी गद्य और भावुक निबंधों (जैसे प्रताप नारायण मिश्र के निबंध) में इस चिह्न का अत्यधिक प्रयोग देखा गया।

महत्व : हर्ष, शोक, घृणा और विस्मय जैसे तीव्र संवेगों को लिपिबद्ध करने के लिए यह चिह्न एक क्रांतिकारी बदलाव था, क्योंकि पुरानी पद्धति में इसके लिए केवल शब्दों (हा!, अहो!, धिक्!) पर निर्भर रहना पड़ता था।

4. उद्धरण चिह्न (“ ”) - Quotation Mark)

रामचंद्र तिवारी ने गद्य की विधाओं, विशेषकर 'नाटक' और 'उपन्यास' के संदर्भ में इसकी चर्चा की है।

आवश्यकता : जब पात्रों के संवाद और लेखक के अपने कथन आपस में मिलने लगे, तब 'दोहरे उद्धरण चिह्न' का प्रयोग अनिवार्य हो गया।

विकास : पहले 'इति' (ऐसा कहा) शब्द का प्रयोग होता था, जिसे हटाकर इन चिह्नों ने जगह ली, जिससे भाषा अधिक चुस्त और आधुनिक हो गई।

विराम चिह्नों पर रामचंद्र तिवारी के 'तीन सूत्र'

डॉ. तिवारी अक्सर भाषा की शुद्धता पर जोर देते थे। उनके अनुसार विराम चिह्नों

के प्रयोग के तीन मुख्य आधार होने चाहिए :

ध्वनि-साम्य : बोलते समय हम जहाँ रुकते हैं, लिखते समय वहाँ चिह्न होना चाहिए।

तक्क-संगति : विचार जहाँ पूरा हो या जहाँ उप-विचार शुरू हो, वहाँ विभाजन स्पष्ट हो।

सौंदर्यबोध : चिह्नों का अति-प्रयोग (Over-use) गद्य के प्रवाह को बाधित करता है, इसलिए इनका प्रयोग 'नमक' की तरह संतुलित होना चाहिए।

डॉ. रामचंद्र तिवारी का मानना था कि विराम चिह्न केवल व्याकरणिक इकाई नहीं हैं, बल्कि ये 'मौन भाषा' हैं। एक अच्छा लेखक शब्दों से जितना कहता है, विराम चिह्नों से उससे कहीं अधिक संकेत देता है। हिंदी का सौभाग्य रहा कि उसे द्विवेदी जी जैसे संपादक और रामचंद्र तिवारी जैसे आलोचक मिले जिन्होंने इन चिह्नों को विदेशी बोझ न मानकर हिंदी की शक्ति बनाया।

9.8 सारबिंदु

- हिंदी भाषा का विकास एक दीर्घ ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है, जिसकी जड़ें भारतीय आर्य भाषा परिवार में निहित हैं। इसका प्रारंभ प्राचीन काल की वैदिक और लौकिक संस्कृत से माना जाता है, जो अत्यंत विकसित और व्याकरणिक दृष्टि से परिपूर्ण भाषा थी। समय के साथ यह भाषा जनसामान्य के बीच सरल रूप में विकसित होकर प्राकृत भाषाओं में परिवर्तित हुई, जो विभिन्न क्षेत्रों में बोली जाने वाली लोकभाषाएँ थीं।
- प्राकृत से आगे चलकर अपभ्रंश का विकास हुआ जो हिंदी सहित अनेक आधुनिक भारतीय भाषाओं की आधारशिला बना। लगभग 6 वीं से 10वीं शताब्दी के बीच अपभ्रंश का व्यापक प्रयोग हुआ और इसी से आधुनिक हिंदी का उद्भव हुआ।
- इस प्रकार हिंदी का विकास तीन मुख्य चरणों - प्राचीन (संस्कृत), मध्यकालीन (पाली, प्राकृत, अपभ्रंश) और आधुनिक काल - में हुआ है।
- आधुनिक काल में हिंदी ने साहित्यिक और मानक रूप ग्रहण किया तथा आज यह भारत की प्रमुख भाषा के रूप में स्थापित है और वैश्व स्तर पर भी अपनी पहचान बना रही है।
- हिंदी भाषा की विशेषता उसकी विविधता और समृद्ध संरचना में निहित है, जो उसकी उपभाषाओं, ध्वनियों और शब्द-रचना में स्पष्ट दिखाई देती है। हिंदी की प्रमुख उपभाषाएँ- पश्चिमी, पूर्वी, राजस्थानी, बिहारी और पहाड़ी-विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित हैं, जिनमें खड़ी बोली आधुनिक मानक हिंदी का आधार है।
- ध्वन्यात्मक दृष्टि से हिंदी में स्वर और व्यंजन का वैज्ञानिक वर्गीकरण पाया जाता है, जिसमें उच्चारण स्थान, प्रयत्न, प्राणत्व और घोषत्व के आधार पर विभाजन किया जाता है।
- समय के साथ हिंदी की ध्वनियों में भी परिवर्तन हुए हैं, जैसे संयुक्त व्यंजनों का सरलीकरण तथा विदेशी ध्वनियों (क़, ख़, ग़, ज़, फ़) का समावेश।
- शब्द-रचना की दृष्टि से हिंदी अत्यंत समृद्ध है, जिसमें तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी शब्दों का समन्वय मिलता है। इसके अतिरिक्त हिंदी में वाक्य विन्यास सामान्यतः कर्ता-कर्म-क्रिया के क्रम पर आधारित होता है तथा विराम चिह्नों का प्रयोग अर्थ की स्पष्टता के लिए किया जाता है।
- इस प्रकार हिंदी भाषा न केवल ऐतिहासिक रूप से समृद्ध है, बल्कि संरचनात्मक और प्रयोग की दृष्टि से भी एक सशक्त, विकसित और जीवंत भाषा है।

9.9 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

• बोध प्रश्न

1. हिंदी भाषा की उत्पत्ति और विकास को समझाइए।
2. राष्ट्र की एकता में हिंदी भाषा का महत्त्व।
3. हिंदी भाषा की उपभाषाएं में पश्चिमी हिंदी को समझाइए।
4. हिंदी भाषा और उपभाषा में अंतर स्पष्ट कीजिए।
5. बिहारी हिंदी की बोलियों पर विस्तार से चर्चा कीजिए तथा इस बोली की पाँच साहित्यिक रचनाओं का उल्लेख कीजिए।
6. ध्वनियों का वर्गीकरण संक्षिप्त में समझाइए।
7. हिंदी वाक्य संरचना पर टिप्पणी लिखिए।
8. हिंदी भाषा में विराम चिह्न के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।

• बहुविकल्पीय प्रश्न

1. हिंदी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का मूल आधार किस भाषा को माना जाता है?
(क) प्राकृत (ग) अपभ्रंश
(ख) संस्कृत (घ) पाली
2. प्राकृत भाषाओं का विकास किसके सरल रूप से हुआ?
(क) अपभ्रंश (ग) हिंदी
(ख) संस्कृत (घ) फारसी
3. अपभ्रंश का प्रयोग प्रमुख रूप से किस काल में हुआ?
(क) 1वीं-5वीं सदी (ग) 11वीं-15वीं सदी
(ख) 6वीं-10वीं सदी (घ) 16वीं-18वीं सदी
4. 'अपभ्रंश' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया?
(क) भरतमुनि (ग) पतंजलि
(ख) पाणिनि (घ) कात्यायन
5. वैदिक संस्कृत में स्वरों की संख्या डॉ. हरदेव बाहरी के अनुसार कितनी मानी गई है?
(क) 10 (ग) 14
(ख) 12 (घ) 16
6. 'अष्टाध्यायी' ग्रंथ के रचयिता कौन हैं?
(क) वाल्मीकि (ग) बुद्धघोष
(ख) पाणिनि (घ) कात्यायन
7. प्राकृत की प्रथम अवस्था में प्रमुख भाषा कौन-सी थी?
(क) मागधी (ग) शौरसेनी
(ख) पालि (घ) पैशाची

8. अपभ्रंश भाषा किसके बीच की कड़ी मानी जाती है?
(क) संस्कृत और प्राकृत (ग) संस्कृत और हिंदी
(ख) प्राकृत और आधुनिक भाषाएँ (घ) पाली और संस्कृत
9. आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास लगभग कब माना जाता है?
(क) 500 ई. के आसपास (ग) 1000 ई. के आसपास
(ख) 800 ई. के आसपास (घ) 1500 ई. के आसपास
10. आधुनिक मानक हिंदी किस बोली पर आधारित है?
(क) ब्रजभाषा (ग) खड़ी बोली
(ख) अवधी (घ) बुंदेली

उत्तर : 1-ख, 2-ख, 3-ख, 4-ग, 5-ग, 6-ख, 7-ख, 8-ख, 9-ग, 10-ग

9.10 उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. भाटिया, कैलाशचंद्र, चतुर्वेदी, मोतीलाल (2006), हिंदी भाषा विकास और स्वरूप, नई दिल्ली, ग्रंथ अकादमी
2. तिवारी, उदय नारायण, (2007), हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, नई दिल्ली, लोकभारती प्रकाशन
3. तिवारी, भोलानाथ, (1987), हिंदी ध्वनियाँ और उनका उच्चार, दिल्ली, शब्दकार
4. तिवारी, रामचन्द्र, (2020) हिंदी का गद्यसाहित्य का इतिहास, दिल्ली, विश्वविद्यालय प्रकाशन

इकाई 10 हिंदी की उपभाषाएँ (बोलियाँ)

रूपरेखा

- 10.1 उद्देश्य
- 10.2 प्रस्तावना
- 10.3 हिंदी की उपभाषाएँ : ऐतिहासिक और भाषा-वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य
- 10.4 पश्चिमी हिंदी
- 10.5 पूर्वी हिंदी
- 10.6 राजस्थानी हिंदी
- 10.7 बिहारी हिंदी
- 10.8 पहाड़ी हिंदी
- 10.9 हिंदी बोलियों के भाषाई लक्षण
- 10.10 हिंदी बोलियों का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक वैभव
- 10.11 सारबिंदु
- 10.12 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली
- 10.13 उपयोगी पाठ्यसामग्री

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को हिंदी की पाँच उपभाषाओं और उनकी बोलियों के ऐतिहासिक व वैज्ञानिक स्वरूप से परिचित कराना है :-

इसका लक्ष्य शौरसेनी, अर्धमागधी और मागधी अपभ्रंशों से हिंदी के विकासक्रम को समझाते हुए यह स्पष्ट करना है कि आधुनिक 'मानक हिंदी' वस्तुतः इन क्षेत्रीय विविधताओं के समन्वय का ही परिष्कृत परिणाम है।

साथ ही यह इकाई बोलियों के विशिष्ट ध्वनिगत व व्याकरणिक लक्षणों और उनके साहित्यिक महत्व का बोध कराकर भाषा के प्रति एक वैज्ञानिक और व्यापक दृष्टिकोण विकसित करती है।

10.2 प्रस्तावना

हिंदी भाषा का उद्भव और विकास मात्र एक भाषाई घटना नहीं है अपितु भारतीय आर्य भाषाओं के सहस्राब्दियों के क्रमिक विकास का परिणाम है। इस विकास यात्रा को समझने के लिए हमें भारतीय परिवार की सुदृढ़ पृष्ठभूमि से होते हुए वैदिक संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के उन सोपानों पर दृष्टिपात करना होगा, जहाँ से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की नींव पड़ी। डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी और डॉ. धीरेन्द्र वर्मा जैसे विद्वानों के भाषा-वैज्ञानिक सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए हिंदी को केवल एक संकुचित खड़ीबोली के रूप में नहीं, बल्कि उन पाँच उपभाषाओं के समूह के रूप में देखा गया है, जो मध्यदेश की सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन उपभाषाओं-पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, राजस्थानी, बिहारी और पहाड़ी का वर्गीकरण केवल भौगोलिक नहीं, अपितु पूर्णतः ध्वन्यात्मक और रूपात्मक है। अपभ्रंश के परवर्ती काल में जब शौरसेनी, अर्धमागधी और मागधी जैसे प्राकृत रूपों ने अपने पुराने रूप को त्यागा तब हिंदी की इन विभिन्न बोलियों ने जन्म

लिया, जिनमें आज भी प्राचीन आर्य भाषा के अवशेष और नवीन युग की गूँज स्पष्ट सुनाई देती है। 'नागरी हिंदी' या खड़ीबोली का जो वर्तमान स्वरूप हम देखते हैं वह वास्तव में इन सभी उपभाषाओं और उनकी असंख्य बोलियों के निरंतर आदान-प्रदान और समन्वय का एक परिष्कृत फल है जिसने अन्ततः एक राष्ट्रभाषा की गरिमा प्राप्त की।

इन उपभाषाओं के विस्तार और उनकी बोलियों के वैज्ञानिक विवेचन में इस तथ्य का विशेष ध्यान रखा गया है कि प्रत्येक बोली की अपनी एक स्वतंत्र व्याकरणिक सत्ता और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। ब्रजभाषा की कोमलता, अवधी की गम्भीरता और भोजपुरी की ओजस्विता- ये सभी उस विशाल हिंदी क्षेत्र की धमनियाँ हैं, जिनमें भारत की सामासिक संस्कृति का रक्त प्रवाहित होता है। संक्रान्ति-कालीन भाषा सामग्री का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट होता है कि किस प्रकार मध्यकालीन प्राकृतों के व्याकरणिक ढाँचे के भीतर ही आधुनिक हिंदी की विभक्तियों और क्रिया-पदों के अंकुर फूट रहे थे। हिंदी कोई जड़ भाषा नहीं, वरन् एक प्रवाहमान सरिता है, जिसमें पश्चिम की बांगरू से लेकर पूर्व की मगही तक के विविध रंग समाहित हैं। हिंदी की ये उपभाषाएँ ही वह आधार हैं, जिन पर हिंदी साहित्य और भाषा का भव्य प्रासाद खड़ा है और इनका वैज्ञानिक अध्ययन ही हमें भाषा के वास्तविक स्वरूप और उसकी भविष्योन्मुख संभावनाओं से परिचित करा सकता है।

10.3 हिंदी की उपभाषाएँ : ऐतिहासिक और भाषा-वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य

हिंदी भाषा के उद्भव और विकास की गाथा मात्र एक भाषाई परिवर्तन नहीं, अपितु भारतीय आर्य भाषाओं के सहस्राब्दियों के क्रमिक रूपांतरण का जीवंत इतिहास है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का उदय कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, बल्कि यह वैदिक संस्कृत से प्रवाहित होने वाली उस अखंड चेतना का परिणाम है जो पालि और प्राकृत के सोपानों से छनती हुई अपभ्रंश के धरातल पर पल्लवित हुई। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान की दृष्टि से हिंदी को केवल एक संकुचित खड़ीबोली के रूप में देखना भ्रामक है। यह वास्तव में उन पाँच उपभाषाओं का एक विशाल समूह है जो मध्यदेश की सांस्कृतिक और भाषाई सीमाओं को निर्धारित करती हैं। इन उपभाषाओं- पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, राजस्थानी, बिहारी और पहाड़ी का वर्गीकरण केवल भौगोलिक नहीं है, बल्कि इनके मूल में ध्वन्यात्मक, रूपात्मक और ऐतिहासिक व्याकरण के ठोस आधार विद्यमान हैं। संक्रान्ति-कालीन भाषा सामग्री के सूक्ष्म विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि अपभ्रंश के अंतिम चरणों में ही इन उपभाषाओं के बीज अंकुरित होने लगे थे। जब मध्यकालीन प्राकृतों ने अपने पुराने व्याकरणिक चोले त्यागे, तब आधुनिक आर्य भाषाओं के स्वतंत्र स्वरूप का निर्माण हुआ। पश्चिमी हिंदी का विकास शौरसेनी अपभ्रंश के गर्भ से हुआ जिसने मध्यदेश की साहित्यिक और प्रशासनिक गरिमा को संभाला। वहीं पूर्वी हिंदी ने अर्धमागधी के तत्वों को आत्मसात किया, जो शौरसेनी और मागधी के मध्य एक सेतु का कार्य करती थी। बिहारी उपभाषाओं ने मागधी अपभ्रंश के ऐतिहासिक व्याकरणिक ढाँचे को अपनाया जो अपनी विशिष्ट ध्वन्यात्मक प्रवृत्तियों के कारण पश्चिमी समूहों से सर्वथा भिन्न है। यह वर्गीकरण इस तथ्य को पुख्ता करता है कि हिंदी का प्रासाद किसी एक बोली पर नहीं, बल्कि विभिन्न अपभ्रंशों से विकसित इन विविध बोलियों की सुदृढ़ नींव पर खड़ा है।

हिंदी की इन उपभाषाओं के क्रमिक विकास में ध्वनियों के आगम, लोप और विपर्यय की प्रक्रियाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण रही हैं। मध्यकालीन प्राकृतों के रुढ़ और जटिल व्याकरणिक ढाँचे को तोड़कर इन बोलियों ने एक सरल और जीवंत रूप धारण किया। प्राचीन आर्य भाषा की विभक्ति-प्रधान व्यवस्था धीरे-धीरे लोप होने लगी और उसके स्थान पर नवीन परसर्गों (कारक चिह्नों) और सहायक क्रियाओं का उद्भव हुआ। उदाहरण के लिए, पश्चिमी हिंदी

में कर्ता के साथ 'ने' परसर्ग का प्रयोग जहाँ एक विशिष्ट पहचान बना, वहीं पूर्वी और बिहारी समूहों में इसका अभाव रहा। इसी प्रकार 'ओ-कार' बहुला प्रवृत्तियाँ और 'आ-कार' बहुला प्रवृत्तियाँ इन उपभाषाओं के ध्वन्यात्मक सौंदर्य और क्षेत्रीय पहचान को वैज्ञानिक आधार प्रदान करती हैं। इन उपभाषाओं ने न केवल संवाद के माध्यम के रूप में कार्य किया, बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा और संस्कृति के संवहन में भी ऐतिहासिक भूमिका निभाई। ब्रजभाषा की ध्वन्यात्मक कोमलता ने जहाँ कृष्ण काव्य को अखिल भारतीय विस्तार दिया, वहीं अवधी की गंभीर और प्रबंधात्मक शक्ति ने रामकथा को जन-जन तक पहुँचाया। राजस्थानी की डिंगल शैली ने शौर्य और वीरगाथाओं को अमर किया, तो मैथिली और भोजपुरी ने लोक-तत्वों और शास्त्र के बीच एक अद्भुत सामंजस्य स्थापित किया। इन बोलियों का यह साहित्यिक वैभव ही वह कारण था जिसने मध्यकाल में इन्हें क्षेत्रीय सीमाओं से ऊपर उठाकर एक राष्ट्रीय अस्मिता प्रदान की। यह सिद्ध करता है कि हिंदी की उपभाषाएँ केवल क्षेत्रीय बोलियाँ नहीं हैं, बल्कि वे एक ऐसी सामासिक संस्कृति की वाहिका हैं जिनमें भारत की आत्मा निवास करती है।

लिपि की उत्पत्ति और विकास के संदर्भ में भी इन उपभाषाओं का योगदान अतुलनीय है। नागरी लिपि ने इन विविध और बिखरी हुई बोलियों को एक सूत्र में पिरोने का महान कार्य किया है। उपभाषाओं के लिखित और मौखिक स्वरूपों के बीच जो निरंतर आदान-प्रदान हुआ उसी के परिणामस्वरूप एक परिष्कृत 'नागरी-हिंदी' या खड़ीबोली का उदय हुआ। आधुनिक काल में खड़ीबोली का मानक रूप में प्रतिष्ठित होना वस्तुतः इन सभी उपभाषाओं के शब्द-भंडार, मुहावरों और व्याकरणिक सहजता के समन्वय का फल है। हिंदी की ये उपभाषाएँ एक प्रवाहमान सरिता के समान हैं, जिसमें पश्चिम की बांगरु से लेकर पूर्व की मगही तक के विविध रंग समाहित हैं। इनका वैज्ञानिक और तुलनात्मक अध्ययन न केवल हिंदी के ऐतिहासिक विकास को स्पष्ट करता है, बल्कि उसकी भविष्योन्मुख संभावनाओं के द्वार भी खोलता है।

10.4 पश्चिमी हिंदी

पश्चिमी हिंदी का उद्भव वस्तुतः उस शौरसेनी अपभ्रंश के गर्भ से हुआ है जो मध्यदेश की प्रधान भाषा रही है और जिसकी जड़ें प्राचीन आर्य भाषा की सांस्कृतिक विरासत में गहराई तक समाहित हैं। डॉ। उदयनारायण तिवारी के अनुसार, शौरसेनी अपभ्रंश का विस्तार उस भू-भाग में था जिसे प्राचीन काल में 'शूरसेन' जनपद कहा जाता था और यहीं से विकसित होकर पश्चिमी हिंदी ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में अपनी प्रभुता स्थापित की। इस उपभाषा समूह का ऐतिहासिक महत्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि इसी की एक शाखा 'खड़ीबोली' ने कालांतर में भारत की राष्ट्रभाषा और मानक हिंदी का गौरव प्राप्त किया। डॉ। उदयनारायण तिवारी ने अपनी वैज्ञानिक शोध-दृष्टि से यह प्रतिपादित किया है कि पश्चिमी हिंदी की विभिन्न बोलियाँ- खड़ीबोली, ब्रजभाषा, हरियाणवी, बुंदेली और कन्नौजी- न केवल भौगोलिक दृष्टि से एक-दूसरे से संबद्ध हैं, बल्कि ध्वन्यात्मक और रूपात्मक आधार पर भी इनमें एक गहरा साम्य पाया जाता है जो इनके शौरसेनी मूल को प्रमाणित करता है।

पश्चिमी हिंदी की सबसे प्रमुख और व्यापक बोली 'खड़ीबोली' है, जिसे डॉ। उदयनारायण तिवारी ने अनेक स्थानों पर 'नागरी हिंदी' या 'कौरवी' की संज्ञा से भी संबोधित किया है। इसका केंद्र मुख्य रूप से मेरठ, दिल्ली और उसके आस-पास का क्षेत्र रहा है, जहाँ की जनभाषा ने अपने स्वाभाविक व्याकरणिक ढाँचे को सुरक्षित रखते हुए आधुनिक मानक हिंदी के लिए एक सुदृढ़ आधार प्रस्तुत किया। खड़ीबोली की क्रिया-संरचना और उसकी ध्वन्यात्मक विशिष्टताएँ उसे अन्य बोलियों से पृथक् करती हैं, फिर भी इसका ऐतिहासिक विकासक्रम

प्राचीन प्राकृतों के नियमों से ही अनुशासित है। इस बोली ने न केवल प्रशासनिक और व्यावसायिक क्षेत्रों में अपनी पैठ बनाई, बल्कि ज्ञान-विज्ञान और आधुनिक साहित्य की अभिव्यक्ति के लिए भी यह सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम बनकर उभरी है। ब्रजभाषा पश्चिमी हिंदी की दूसरी अत्यंत समृद्ध शाखा है। यह अपने साहित्यिक वैभव और पद-लालित्य के लिए संपूर्ण मध्यकाल में अद्वितीय रही है। मथुरा, आगरा और अलीगढ़ के केंद्रों से विकसित इस बोली ने कृष्ण काव्य की प्रधान भाषा के रूप में भारतीय साहित्य को अमर कृतियाँ प्रदान कीं। इसने सदियों तक उत्तर भारत की सांस्कृतिक एकता को अक्षुण्ण रखा और जिसका तुलनात्मक अध्ययन आज भी हिंदी के उद्भव को समझने के लिए अपरिहार्य है। हरियाणवी को 'बाँगरू' के नाम से भी जाना जाता है। यह पश्चिमी हिंदी का वह रूप है जो हरियाणा और दिल्ली के ग्रामीण अंचलों में प्रचलित है। डॉ। उदयनारायण तिवारी ने इसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए इसे खड़ीबोली के निकट माना है, किंतु इसकी अपनी स्वतंत्र ध्वन्यात्मक प्रवृत्तियाँ और उच्चारण की विशिष्ट शैली इसे एक पृथक पहचान देती हैं। इसी प्रकार बुंदेली और कन्नौजी बोलियाँ भी पश्चिमी हिंदी के उस विशाल मानचित्र का हिस्सा हैं, जो झाँसी, ग्वालियर, इटावा और फर्रुखाबाद जैसे ऐतिहासिक क्षेत्रों में विस्तृत हैं। बुंदेली में जहाँ वीरगाथात्मक ओज और लोक-तत्वों की प्रधानता है, वहीं कन्नौजी अपने स्वरूप में ब्रजभाषा के अत्यंत निकट होते हुए भी अपनी स्वतंत्र व्याकरणिक सत्ता बनाए हुए है। शौरसेनी अपभ्रंश के ढाँचे ने ही इन विविध बोलियों को वह प्राणवायु प्रदान की जिससे हिंदी का वर्तमान स्वरूप विकसित हुआ है।

पश्चिमी हिंदी का विकासक्रम ध्वनियों के लोप और नवीन आगमों की एक ऐसी वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो भाषा के क्रमिक सरलीकरण की ओर संकेत करती है। वस्तुतः पश्चिमी हिंदी की ये पाँचो बोलियाँ-खड़ीबोली, ब्रजभाषा, हरियाणवी, बुंदेली और कन्नौजी - उस शौरसेनी परंपरा की उत्तराधिकारी हैं, जिसने हिंदी भाषा के उद्गम और उसके बहुआयामी विकास में अपनी केंद्रीय भूमिका निभाई है।

10.5 पूर्वी हिंदी

पूर्वी हिंदी का उद्भव और उसका क्रमिक विकास वस्तुतः उस अर्धमागधी अपभ्रंश की कोख से हुआ है, जो ऐतिहासिक रूप से शौरसेनी और मागधी के मध्यवर्ती भाषाई क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती रही है। अर्धमागधी अपभ्रंश ने ही वह आधार तैयार किया जिसने मध्यदेश के पूर्वी भाग को एक विशिष्ट भाषाई अस्मिता प्रदान की, जो पश्चिमी हिंदी के ओकारान्त रूपों और बिहारी उपभाषाओं के इकारान्त रूपों के संधि-स्थल पर स्थित है। पूर्वी हिंदी की बोलियाँ- अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी - न केवल भौगोलिक निरंतरता में आबद्ध हैं, बल्कि इनके व्याकरणिक ढाँचे, विशेष रूप से क्रिया-पदों और परसर्गों के प्रयोग में, एक ऐसी मौलिक एकता दिखाई देती है जो इन्हें अन्य आर्य भाषाओं से पृथक करती है। इस उपभाषा समूह का ऐतिहासिक महत्व इसलिए भी सर्वोपरि है क्योंकि इसने न केवल मध्यकालीन साहित्य को 'रामचरितमानस' और 'पद्मावत' जैसी कालजयी कृतियाँ प्रदान कीं, बल्कि भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक प्रसार में भी एक प्रधान सेतु का कार्य किया। पूर्वी हिंदी की प्रतिनिधि बोली के रूप में 'अवधी' का स्थान अद्वितीय है, जिसका केंद्र प्राचीन कोशल जनपद अर्थात् अयोध्या और आधुनिक लखनऊ का समीपवर्ती क्षेत्र रहा है। अवधी के भाषाई विकास को सूफी प्रेमाख्यानक काव्य और रामभक्ति शाखा के परिप्रेक्ष्य में अत्यंत सूक्ष्मता से समझा जा सकता है। अवधी की ध्वन्यात्मक कोमलता और उसकी तद्भव प्रधान शब्दावली ने इसे प्रबंध काव्यों के सृजन के लिए सर्वाधिक सक्षम बनाया। जहाँ मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी ठेठ अवधी से सूफी दर्शन को जन-जन तक पहुँचाया, वहीं गोस्वामी तुलसीदास ने इसके संस्कृतनिष्ठ और लोक-

भाषा के समन्वयकारी रूप से रामकथा को एक सार्वभौमिक विस्तार दिया। अवधी के रूपात्मक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि इसकी संज्ञाओं और विशेषणों के जो रूप ‘अर्धमागधी’ से विकसित हुए हैं, वे आज भी इसके व्याकरणिक अनुशासन को प्राचीन आर्य भाषाओं के साथ जोड़े रखते हैं, जो इसे पश्चिमी हिंदी की बोलियों से एक भिन्न और गौरवपूर्ण स्थान दिलाते हैं।

अवधी के अतिरिक्त पूर्वी हिंदी की अन्य दो शाखाएँ बघेली और छत्तीसगढ़ी अपने क्षेत्रीय विस्तार और विशिष्ट भाषाई लक्षणों के कारण महत्वपूर्ण हैं। बघेली का मुख्य केंद्र रीवा और बघेलखंड का अंचल है। यह अपने स्वरूप में अवधी के अत्यंत निकट है, किंतु इसके स्थानीय विभेदों और ध्वन्यात्मक परिवर्तनों के कारण इसकी अपनी स्वतंत्र सत्ता है। इसी प्रकार छत्तीसगढ़ी जो छत्तीसगढ़ राज्य का मुख्य भाषाई आधार है, पूर्वी हिंदी का वह रूप है जिसने अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थितियों के कारण अनेक प्राचीन भाषाई तत्वों को सुरक्षित रखा है। तुलनात्मक व्याकरण के सिद्धांतों के अनुसार छत्तीसगढ़ी के सर्वनामों और क्रियाओं के रूपों में मागधी अपभ्रंश की कुछ छिटपुट प्रवृत्तियों का प्रभाव भी परिलक्षित होता है जो इसके विकासक्रम को ओर भी रोचक बनाता है। इन तीनों बोलियों का सामूहिक अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि अर्धमागधी से प्रसूत यह पूर्वी हिंदी समूह वस्तुतः उस सामासिक संस्कृति की वाहिका है, जिसने उत्तर भारत के एक विशाल भू-भाग की लोक-चेतना को अपनी शब्द-सामर्थ्य से सिंचित किया है और हिंदी के समग्र उद्गम को एक संतुलित पूर्णता प्रदान की है।

10.6 राजस्थानी हिंदी

राजस्थानी हिंदी का उद्भव वस्तुतः शौरसेनी अपभ्रंश के उस विशिष्ट क्षेत्रीय रूप से हुआ है, जिसे भाषा-वैज्ञानिकों ने ‘नागर अपभ्रंश’ या ‘मरु-गुर्जर’ अपभ्रंश के नाम से भी संबोधित किया है। राजस्थानी का भाषाई व्यक्तित्व पश्चिमी हिंदी के अत्यंत निकट होते हुए भी अपनी स्वतंत्र ध्वन्यात्मक प्रवृत्तियों के कारण एक पृथक् अस्तित्व रखता है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो यह उपभाषा समूह उस वीरगाथात्मक संस्कृति और शौर्य की प्रतीक रही है, जिसने डिंगल जैसे सशक्त साहित्यिक माध्यम को जन्म दिया। राजस्थानी की बोलियाँ न केवल राजस्थान की भौगोलिक सीमाओं तक सीमित हैं, बल्कि इनका प्रभाव मध्य प्रदेश और गुजरात के सीमावर्ती क्षेत्रों तक विस्तृत है, जो इनके प्राचीन भाषाई विस्तार को प्रमाणित करता है। राजस्थानी उपभाषा समूह में ‘मारवाड़ी’ का स्थान सर्वोपरि है, जिसे पश्चिमी राजस्थानी की प्रतिनिधि बोली माना जाता है। जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर जैसे मरुस्थलीय क्षेत्रों में प्रचलित यह बोली अपने शब्द-भंडार और व्याकरणिक गठन में अत्यंत प्राचीनता लिए हुए है। मारवाड़ी के ध्वन्यात्मक स्वरूप के विश्लेषण से यह रेखांकित होता है कि इसमें प्राचीन आर्य भाषा के कई ऐसे अवशेष सुरक्षित हैं, जो आधुनिक मानक हिंदी में लुप्त हो चुके हैं। मारवाड़ी का साहित्यिक रूप न केवल राजस्थान के गौरवशाली इतिहास को अभिव्यक्त करता है, बल्कि इसकी रूपात्मक संरचना यह भी दर्शाती है कि किस प्रकार शौरसेनी के मूल तत्वों ने यहाँ की स्थानीय जलवायु और संस्कृति के साथ मिलकर एक विशिष्ट भाषाई कलेवर धारण किया है।

पूर्वी राजस्थानी के अंतर्गत ‘जयपुरी’, जिसे स्थानीय रूप से ‘ढूँढाड़ी’ भी कहा जाता है, अपनी पृथक् पहचान रखती है। जयपुर और उसके आस-पास के क्षेत्रों में बोली जाने वाली यह उपभाषा पश्चिमी राजस्थानी की तुलना में ब्रजभाषा और खड़ीबोली के अधिक प्रभाव को दर्शाती है। तुलनात्मक व्याकरण के सिद्धांतों के अनुसार जयपुरी के परसर्गों और सहायक क्रियाओं में वह कोमलता दृष्टिगोचर होती है, जो इसे मारवाड़ी की कठोरता से अलग करती है। उत्तरी राजस्थान के अलवर और भरतपुर क्षेत्रों में प्रचलित ‘मेवाती’ बोली भी राजस्थानी परिवार का एक महत्वपूर्ण अंग है। मेवाती का भाषाई स्वरूप ब्रजभाषा और

हरियाणवी के संधि-स्थल पर स्थित होने के कारण एक अत्यंत रोचक मिश्रित रूप प्रस्तुत करता है जिसे संक्रान्ति-कालीन भाषाई सामग्री के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। राजस्थानी की दक्षिणी शाखा के रूप में 'मालवी' का स्थान अत्यंत विशिष्ट है जिसका प्रसार इंदौर, उज्जैन और मध्य प्रदेश के मालवा अंचल तक है। मालवी अपने व्याकरणिक ढाँचे में जहाँ राजस्थानी की मूल प्रवृत्तियों को सहेजे हुए है, वहीं इसमें मराठी और बुंदेली के प्रभाव भी स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। मालवी की क्रिया-संरचना और उसके उच्चारण की शैली यह प्रमाणित करती है कि शौरसेनी अपभ्रंश की धारा दक्षिण की ओर प्रवाहित होते हुए किस प्रकार नए भाषाई रूपों को ग्रहण कर रही थी। इन चारों क्षेत्रीय रूपों मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती और मालवी-का सामूहिक अध्ययन यह सिद्ध करता है कि राजस्थानी हिंदी वस्तुतः उस भाषाई वैभव की संवाहिका है, जिसने अपनी बोलियों के माध्यम से हिंदी के समग्र ऐतिहासिक और तुलनात्मक व्याकरण को एक बहुआयामी विस्तार और सांस्कृतिक गहराई प्रदान की है।

10.7 बिहारी हिंदी

बिहारी हिंदी का विकास वस्तुतः प्राचीन मागधी अपभ्रंश के गर्भ से हुआ है, जो ऐतिहासिक रूप से मगध साम्राज्य की सांस्कृतिक और भाषाई चेतना की संवाहिका रही है। मागधी अपभ्रंश ने ही वह आधार तैयार किया जिसने मध्यदेश के पूर्वी भाग को एक ऐसी विशिष्ट भाषाई पहचान दी, जो अपनी ध्वन्यात्मक और व्याकरणिक प्रवृत्तियों में पश्चिमी और पूर्वी हिंदी से सर्वथा भिन्न है। भाषाई विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि बिहारी उपभाषा समूह- जिसमें भोजपुरी, मैथिली और मगही सम्मिलित हैं - के क्रिया-पदों और परसर्गों का ऐतिहासिक ढाँचा प्राचीन प्राकृतों के नियमों से अनुशासित है। इस समूह की बोलियों में इकारान्त रूपों की प्रधानता और उनके स्वतंत्र व्याकरणिक विकासक्रम को संक्रान्ति-कालीन भाषाई सामग्री के सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है, जो इन्हें आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में एक गौरवपूर्ण स्थान दिलाता है। बिहारी उपभाषा समूह में 'भोजपुरी' का स्थान भाषाई विस्तार और जन-संख्या की दृष्टि से सर्वोपरि है, जिसे हिंदी की सबसे अधिक बोली जाने वाली बोली के रूप में स्वीकार किया जाता है। बनारस, बलिया और बिहार के एक विशाल भू-भाग में प्रचलित यह बोली अपने ओजस्वी स्वर और जीवंतता के लिए प्रसिद्ध है। इसके ऐतिहासिक व्याकरण का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि भोजपुरी का ध्वन्यात्मक स्वरूप और उसके क्रिया-पदों की जटिलता इसे अन्य बोलियों से पृथक् करती है, फिर भी इसकी जड़ें मागधी अपभ्रंश की उन प्रवृत्तियों में गहराई तक समाहित हैं जो इसे एक स्वतंत्र भाषाई अस्मिता प्रदान करती हैं। भोजपुरी केवल संवाद का माध्यम नहीं रही, अपितु इसने लोक-संस्कृति के संवहन में एक केंद्रीय भूमिका निभाई है, जिसका तुलनात्मक अध्ययन हिंदी के समग्र विकास को समझने के लिए अपरिहार्य है।

साहित्यिक वैभव की दृष्टि से 'मैथिली' बिहारी हिंदी की सर्वाधिक समृद्ध शाखा है, जिसे विद्यापति जैसे महाकवि की 'पदावली' ने अमरता प्रदान की। मैथिली के व्याकरणिक अनुशासन और उसकी कोमलता इसे प्राचीन मागधी की श्रेष्ठ उत्तराधिकारिणी सिद्ध करती है। उल्लेखनीय है कि अपनी साहित्यिक प्रचुरता और स्वतंत्र भाषाई लक्षणों के कारण ही मैथिली को भारतीय संविधान की 8वीं अनुसूची में स्थान प्राप्त हुआ है। इसी क्रम में 'मगही' बोली, जो पटना और गया के ऐतिहासिक क्षेत्रों में प्रचलित है, मागधी अपभ्रंश के सबसे निकटवर्ती और स्वाभाविक रूप का प्रतिनिधित्व करती है। तुलनात्मक व्याकरण के सिद्धांतों के अनुसार, मगही की संरचना में वह प्राचीनता सुरक्षित है जो मगध की ऐतिहासिक निरंतरता को दर्शाती है। इन तीनों बोलियों- भोजपुरी, मैथिली और मगही-का सामूहिक विवेचन यह सिद्ध करता

है कि बिहारी हिंदी वस्तुतः उस भाषाई निधि की संवाहिका है, जिसने हिंदी के उद्गम और उसके तुलनात्मक व्याकरण को एक नवीन वैज्ञानिक धरातल और सांस्कृतिक गहराई प्रदान की है।

10.8 पहाड़ी हिंदी

पहाड़ी हिंदी का उद्भव और उसका विकासक्रम भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अत्यंत रोचक और जटिल रहा है, जिसे 'ख्रस' अथवा 'शौरसेनी' अपभ्रंश के प्रभाव के अंतर्गत देखा जा सकता है। हिमालय की इन उत्तुंग श्रेणियों में प्रचलित बोलियों का मूलाधार वे प्राचीन 'ख्रस' जातियाँ रही हैं, जिन्होंने कालांतर में मध्यदेश की शौरसेनी अपभ्रंश के भाषाई लक्षणों को आत्मसात किया। इस उपभाषा समूह का ऐतिहासिक महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह आर्य भाषाओं के उस सीमावर्ती विस्तार को दर्शाता है, जहाँ भौगोलिक दुर्गमता के कारण अनेक प्राचीन भाषाई तत्व आज भी सुरक्षित हैं। पहाड़ी हिंदी की बोलियाँ-कुमाऊँनी और गढ़वाली-अपने व्याकरणिक ढाँचे और ध्वन्यात्मक प्रवृत्तियों में जहाँ एक ओर शौरसेनी से साम्य रखती हैं, वहीं दूसरी ओर इनमें स्थानीय ख्रस प्रवृत्तियों का पुट भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। पहाड़ी उपभाषा समूह के अंतर्गत 'कुमाऊँनी' का स्थान भाषाई और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसका मुख्य केंद्र अल्मोड़ा, नैनीताल और पिथौरागढ़ का अंचल है।

कुमाऊँनी के ध्वन्यात्मक स्वरूप के विश्लेषण से यह रेखांकित होता है कि इसके उच्चारण की विशिष्ट शैली और शब्दों के आन्तरिक संकोचन की प्रवृत्ति इसे अन्य मैदानी बोलियों से पृथक् करती है। इस बोली के संज्ञा और क्रिया-पदों के ऐतिहासिक विकास को देखने पर स्पष्ट होता है कि किस प्रकार शौरसेनी अपभ्रंश के रूपों ने हिमालयी परिवेश की सीमाओं में नवीन व्याकरणिक कलेवर धारण किया। कुमाऊँनी केवल एक क्षेत्रीय बोली नहीं, अपितु एक ऐसी भाषाई निधि है, जिसका तुलनात्मक अध्ययन आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के उद्गम को समझने के लिए अपरिहार्य वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करता है।

इसी क्रम में 'गढ़वाली' बोली का स्थान पहाड़ी हिंदी की दूसरी सशक्त शाखा के रूप में उभरता है, जिसका विस्तार क्षेत्र टिहरी, पौड़ी गढ़वाल, चमोली और उत्तरकाशी के पहाड़ी भू-भाग तक विस्तृत है। गढ़वाली की रूपात्मक संरचना कुमाऊँनी के निकट होते हुए भी अपनी स्वतंत्र व्याकरणिक सत्ता बनाए हुए है, जिसमें प्राचीन आर्य भाषा के कतिपय ध्वन्यात्मक अवशेष आज भी विद्यमान हैं। गढ़वाली की क्रियाओं और सर्वनामों के रूपों में जो विविधता दिखाई देती है, वह शौरसेनी अपभ्रंश के उन परिवर्तित रूपों का प्रतिनिधित्व करती है जिन्होंने स्थानीय संस्कृतियों के साथ समन्वय किया। इन दोनों बोलियों-कुमाऊँनी और गढ़वाली-का सामूहिक विवेचन यह सिद्ध करता है कि पहाड़ी हिंदी वस्तुतः उस भाषाई वैभव की संवाहिका है, जिसने अपनी बोलियों के माध्यम से हिंदी के समग्र उद्गम और उसके तुलनात्मक व्याकरण को एक विशिष्ट भौगोलिक और सांस्कृतिक गहराई प्रदान की है।

10.9 हिंदी बोलियों के भाषाई लक्षण

हिंदी भाषा की विविधता का वास्तविक रहस्य उसकी बोलियों के उन सूक्ष्म भाषाई लक्षणों में निहित है, जो सदियों के ऐतिहासिक विकास और क्षेत्रीय प्रभावों के परिणामस्वरूप निर्मित हुए हैं। हिंदी क्षेत्र की बोलियों को केवल भौगोलिक आधार पर ही नहीं, बल्कि उनके ध्वनिगत, व्याकरणिक और शाब्दिक वैशिष्ट्य के आधार पर भी पहचाना जा सकता है। बोलियों के ये लक्षण वस्तुतः प्राचीन और मध्यकालीन आर्य भाषाओं के उन परिवर्तनों के अवशेष हैं, जो अपभ्रंश के माध्यम से आधुनिक काल तक पहुँचे हैं। इन लक्षणों का अध्ययन हमें

यह समझने में सहायता करता है कि किस प्रकार एक ही मूल स्रोत (जैसे शौरसेनी या अर्धमागधी) से प्रसूत होने के बावजूद, विभिन्न अंचलों में पहुँचकर भाषा ने अपनी अलग-अलग प्रवृत्तियाँ विकसित कर लीं।

ध्वनिगत विशेषताओं की दृष्टि से हिंदी बोलियों का सबसे प्रमुख विभेद ‘ओ-कार’ और ‘आ-कार’ की प्रवृत्तियों में देखा जा सकता है। ब्रजभाषा, बुंदेली और कन्नौजी जैसी बोलियाँ प्रधानतः ‘ओ-कार’ बहुला हैं, जहाँ अकारान्त शब्द प्रायः ओकारान्त हो जाते हैं (जैसे ‘घोड़ा’ का ‘घोड़ो’ या ‘काला’ का ‘कालो’)। इसके विपरीत, खड़ीबोली (नागरी हिंदी) और हरियाणवी ‘आ-कार’ बहुला प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं, जहाँ ध्वनियाँ अपने मूल आकारान्त रूप में सुरक्षित रहती हैं। इसके अतिरिक्त, बोलियों के स्वर-विज्ञान और व्यंजन-विन्यास में होने वाले परिवर्तन, जैसे ‘न’ का ‘ण’ होना या ‘ल’ का ‘र’ में रूपांतरण, क्षेत्रीय उच्चारण और ऐतिहासिक व्याकरणिक ढाँचे को विशिष्टता प्रदान करते हैं। व्याकरणिक विशेषताओं के धरातल पर, हिंदी की बोलियाँ सलग, वचन और कारक चिह्नों के प्रयोग में उल्लेखनीय भिन्नता प्रदर्शित करती हैं। पश्चिमी हिंदी की बोलियों में जहाँ कर्ता कारक के साथ ‘ने’ परसर्ग का प्रयोग प्रमुखता से मिलता है, वहीं पूर्वी हिंदी (अवधी, बघेली) और बिहारी उपभाषाओं (भोजपुरी) में इसका अभाव देखा जाता है। लिंग विधान के संदर्भ में भी, ब्रज और खड़ीबोली में जहाँ दो लिंगों की स्पष्ट व्यवस्था है, वहीं कुछ क्षेत्रीय बोलियों में क्रिया के रूपों में लिंग-भेद उतना मुखर नहीं होता। प्राचीन संस्कृत की जटिल विभक्तियाँ सरल होकर विभिन्न बोलियों में ‘का-की’, ‘रा-री’ या ‘के-की’ जैसे विविध रूपों में परिवर्तित हो गईं, जो प्रत्येक बोली के स्वतंत्र भाषाई व्यक्तित्व को रेखांकित करती हैं। शब्दावली की दृष्टि से हिंदी की बोलियाँ देशज और क्षेत्रीय शब्दों के असीमित कोश से समृद्ध हैं, जो इनके जीवंत होने का प्रमाण हैं। प्रत्येक बोली की शब्दावली पर उसके भौगोलिक परिवेश और ऐतिहासिक संपर्कों का गहरा प्रभाव रहा है। जहाँ राजस्थानी बोलियों में मरु-संस्कृति के विशिष्ट शब्द मिलते हैं, वहीं भोजपुरी और अवधी में कृषि और ग्रामीण जीवन से जुड़े देशज शब्दों की प्रधानता है। ये क्षेत्रीय शब्द केवल अर्थ के संवाहक नहीं हैं, बल्कि ये उन संक्रान्ति-कालीन भाषाई परिवर्तनों के साक्ष्य भी हैं, जहाँ अनार्य भाषाओं और संस्कृत के मध्य शब्दों का आदान-प्रदान हुआ। इन भाषाई लक्षणों का सामूहिक अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि हिंदी की बोलियाँ केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि एक ऐसी वैज्ञानिक व्यवस्था हैं, जो हिंदी के उद्गम और उसके बहुआयामी विकास को एक ठोस और प्रामाणिक आधार प्रदान करती हैं।

10.10 हिंदी बोलियों का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक वैभव

हिंदी की बोलियाँ केवल अभिव्यक्ति के माध्यम मात्र नहीं हैं, अपितु वे भारतीय संस्कृति की उन सहस्राब्दी पुरानी परंपराओं की संवाहिका हैं, जिन्होंने हमारी सामासिक चेतना को निर्मित किया है। हिंदी का वास्तविक प्राणतत्व उसके लोक साहित्य और उन लोक गीतों की अजस्र धारा में निहित है, जो मौखिक रूप से पीढ़ियों दर पीढ़ियों प्रवाहित होती रही हैं। सोहर, कजरी, चैती और आल्हा जैसे लोक गीतों की समृद्ध परंपरा यह प्रमाणित करती है कि जनभाषा की शक्ति ने ही हिंदी के उद्गम को वह उर्वर भूमि प्रदान की, जहाँ आगे चलकर महान साहित्य के वृक्ष पल्लवित हुए। इन बोलियों में रचित लोक गाथाएँ और लोक कथाएँ न केवल उस अंचल के इतिहास को सहेजे हुए हैं, बल्कि वे भाषा के उन प्राचीनतम रूपों का भी साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं, जो व्याकरणिक दृष्टि से ‘संक्रान्ति-कालीन’ भाषा सामग्री के अंतर्गत आते हैं। मध्यकालीन साहित्य के परिप्रेक्ष्य में ब्रजभाषा और अवधी के वर्चस्व को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया जा सकता है। शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित ब्रजभाषा ने अपनी ध्वन्यात्मक कोमलता

और पद-लालित्य के कारण कृष्ण काव्य की प्रधान भाषा के रूप में संपूर्ण भारत को एक सूत्र में पिरोया। वहीं दूसरी ओर अर्धमागधी से प्रसूत अवधी ने सूफी प्रेमाख्यानों और रामभक्ति काव्य के माध्यम से दार्शनिक और सांस्कृतिक समन्वय का मार्ग प्रशस्त किया। मध्यकाल में जिसे 'साहित्यिक हिंदी' कहा जाता था, वह वस्तुतः इन्हीं बोलियों का परिष्कृत रूप था, जिसने अपनी व्यापकता के कारण क्षेत्रीय सीमाओं को तोड़कर राष्ट्रीय गरिमा प्राप्त की।

आधुनिक काल का आगमन हिंदी के इतिहास में एक महान भाषाई क्रांति का काल रहा है, जिसमें 'खड़ीबोली' का विकास 'मानक हिंदी' के रूप में हुआ। मेरठ और दिल्ली के आस-पास की इस 'नागरी हिंदी' ने अपनी व्याकरणिक सुदृढ़ता के कारण ब्रज और अवधी के साहित्यिक स्थान को ग्रहण किया। गद्य के विकास और राष्ट्रीय पुनर्जागरण की आवश्यकताओं ने खड़ी बोली को वह आधार प्रदान किया जिससे यह ज्ञान-विज्ञान और प्रशासन की सशक्त भाषा बन सकी। आधुनिक मानक हिंदी का यह विकास वस्तुतः उन सभी उपभाषाओं और बोलियों के समन्वय का फल है, जिन्होंने अपने-अपने शब्द-कोश और मुहावरों से इसे समृद्ध किया है।

10.11 सारबिंदु

- हिंदी भाषा का संपूर्ण विकास यह स्पष्ट करता है कि यह कोई जड़ या कृत्रिम भाषा नहीं, बल्कि प्राचीन काल से प्रवाहित होने वाली भारतीय आर्य भाषा की उस अखंड धारा का आधुनिक प्रतिरूप है, जो पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के विभिन्न सोपानों को पार करती हुई यहाँ तक पहुँची है।
- भाषा-वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह प्रमाणित होता है कि हिंदी का वास्तविक सामर्थ्य उसकी पाँच उपभाषाओं- पश्चिमी, पूर्वी, राजस्थानी, बिहारी और पहाड़ी के उस सामूहिक अस्तित्व में निहित है, जो शौरसेनी, अर्धमागधी और मागधी अपभ्रंशों से ऊर्जा प्राप्त करता है।
- संक्रान्ति-कालीन भाषा सामग्री का सूक्ष्म परीक्षण यह सिद्ध करता है कि मध्यकालीन प्राकृतों के रुढ़ ढाँचे के भीतर ही आधुनिक हिंदी के परसर्गों और सहायक क्रियाओं के बीज विद्यमान थे। अतः 'नागरी हिंदी' या खड़ीबोली का वर्तमान मानक स्वरूप वस्तुतः इन्हीं उपभाषाओं और उनकी क्षेत्रीय बोलियों के निरंतर ऐतिहासिक समन्वय, शब्द-भंडार के आदान-प्रदान और ध्वन्यात्मक परिवर्तनों का एक परिष्कृत फल है, जिसने इसे राष्ट्रभाषा की गरिमा प्रदान की है।
- सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दृष्टि से यह निष्कर्ष निकलता है कि ये बोलियाँ केवल संवाद के क्षेत्रीय माध्यम नहीं, अपितु भारतीय ज्ञान परंपरा और सामासिक संस्कृति की वास्तविक संवाहिका हैं।
- ब्रजभाषा की कोमलता, अवधी की शास्त्रीय गम्भीरता, भोजपुरी की जनपदीय ओजस्विता और राजस्थानी का वीरगाथात्मक वैभव - इन सभी ने मिलकर हिंदी साहित्य के उस भव्य प्रासाद का निर्माण किया है, जिस पर आज आधुनिक मानक हिंदी टिकी हुई है।
- हिंदी की यह 'भाषा-समूह' वाली विशेषता ही उसे विश्व की अन्य भाषाओं से विशिष्ट बनाती है, जहाँ लोक-साहित्य और परिनिष्ठित साहित्य के बीच एक जीवंत सेतु विद्यमान है।
- अंततः यह अध्ययन हमें इस सत्य से परिचित कराता है कि हिंदी एक भविष्योन्मुख और प्रवाहमान सरिता है, जिसकी शक्ति उसकी जड़ों में व्याप्त लोक-तत्वों और उसकी ऐतिहासिक व्याकरणिक सुदृढ़ता में छिपी है जो इसे निरंतर वैश्विक पटल पर सक्षम और समृद्ध बनाती रहेगी।

10.12 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

• बोध प्रश्न

(क) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न।

1. भाषा-वैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर हिंदी की पाँच उपभाषाओं के वर्गीकरण की विस्तार से विवेचना कीजिए।
2. 'पश्चिमी हिंदी शौरसेनी अपभ्रंश की वास्तविक उत्तराधिकारिणी है।' इस कथन के आलोक में पश्चिमी हिंदी की बोलियों का वैज्ञानिक विश्लेषण कीजिए।
3. पूर्वी हिंदी के ऐतिहासिक विकासक्रम को स्पष्ट करते हुए अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी की भाषाई विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. हिंदी बोलियों के प्रमुख ध्वनिगत और व्याकरणिक लक्षणों का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत कीजिए।
5. राजस्थानी और बिहारी उपभाषा समूहों के उद्भव और उनकी क्षेत्रीय बोलियों के साहित्यिक व सांस्कृतिक महत्व का सविस्तार वर्णन कीजिए।

(ख) लघु उत्तरीय प्रश्न।

1. पश्चिमी हिंदी का विकास किस अपभ्रंश से हुआ है?
2. 'ओ-कार' बहुला और 'आ-कार' बहुला बोलियों में क्या अंतर है? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
3. पूर्वी हिंदी की प्रतिनिधि बोली कौन सी है? इसके दो प्रमुख केंद्रों के नाम बताइए।
4. 'ढूँढ़ाड़ी' किस उपभाषा की बोली है और यह किस क्षेत्र में बोली जाती है?
5. बिहारी हिंदी के अंतर्गत आने वाली किन्हीं तीन बोलियों का उल्लेख कीजिए।
6. मैथिली बोली का साहित्यिक महत्व क्या है? इसे संविधान की किस अनुसूची में शामिल किया गया है?
7. पहाड़ी हिंदी का विकास किन अपभ्रंश रूपों के प्रभाव से माना जाता है?
8. मध्यकालीन साहित्य में ब्रज और अवधी के वर्चस्व के पीछे क्या कारण थे?
9. आधुनिक 'मानक हिंदी' का आधार कौन सी बोली है और इसका मुख्य केंद्र कहाँ है?

(ग) बहुविकल्पीय प्रश्न।

1. हिंदी भाषा का उद्भव किसके परिणामस्वरूप हुआ है?
(क) केवल खड़ीबोली के विकास से
(ख) एक आकस्मिक घटना के रूप में
(ग) भारतीय आर्य भाषाओं के क्रमिक विकास से
(घ) केवल आधुनिक भाषाई प्रभाव से
2. हिंदी भाषा के विकास में कौन-सा क्रम सही है?
(क) प्राकृत → संस्कृत → अपभ्रंश → पालि
(ख) वैदिक संस्कृत → पालि → प्राकृत → अपभ्रंश
(ग) अपभ्रंश → प्राकृत → पालि → संस्कृत
(घ) पालि → संस्कृत → प्राकृत → अपभ्रंश

3. हिंदी को किस रूप में समझना अधिक उपयुक्त है?
 (क) एक संकुचित बोली (ग) पाँच उपभाषाओं का समूह
 (ख) केवल साहित्यिक भाषा (घ) केवल प्रशासनिक भाषा
 4. निम्न में से कौन-सा हिंदी की उपभाषा समूह में शामिल नहीं है?
 (क) पश्चिमी हिंदी (ग) द्रविड़ हिंदी
 (ख) पूर्वी हिंदी (घ) पहाड़ी हिंदी
 5. पश्चिमी हिंदी का उद्भव किससे हुआ है?
 (क) मागधी अपभ्रंश (ग) शौरसेनी अपभ्रंश
 (ख) अर्धमागधी अपभ्रंश (घ) पालि भाषा
 6. पूर्वी हिंदी की प्रमुख बोली कौन-सी है?
 (क) ब्रजभाषा (ग) मारवाड़ी
 (ख) अवधी (घ) हरियाणवी
 7. बिहारी हिंदी समूह में कौन-सी बोलियाँ आती हैं?
 (क) अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी (ग) भोजपुरी, मैथिली, मगही
 (ख) मारवाड़ी, मेवाती, मालवी (घ) कुमाऊँनी, गढ़वाली
 8. 'ने' परसर्ग का प्रयोग मुख्यतः किसमें पाया जाता है?
 (क) पूर्वी हिंदी (ग) पश्चिमी हिंदी
 (ख) बिहारी हिंदी (घ) पहाड़ी हिंदी
 9. राजस्थानी हिंदी की प्रमुख बोली कौन-सी मानी जाती है?
 (क) अवधी (ग) भोजपुरी
 (ख) मारवाड़ी (घ) कन्नौजी
 10. आधुनिक मानक हिंदी का विकास किस प्रकार हुआ है?
 (क) केवल ब्रजभाषा से (ग) विभिन्न उपभाषाओं के समन्वय से
 (ख) केवल अवधी से (घ) केवल संस्कृत से
- उत्तर
 1. ग, 2. ख, 3. ग, 4. ग, 5. ग, 6. ख, 7. ग, 8. ग, 9. ख, 10. ग

10.13 उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. भाषा विद्या, भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहाबाद, 1995
2. हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, उदयनारायण तिवारी, भारती भंडार, प्रयाग, 1955
3. भारतीय भाषा विज्ञान, पंडित किशोरीदास वाजपेयी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1959
4. भाटिया, कैलाशचंद्र, चतुर्वेदी, मोतीलाल (2006), हिंदी भाषा विकास और स्वरूप, नई दिल्ली: ग्रंथ अकादमी

इकाई 11 हिंदी ध्वनियाँ और उनका वर्गीकरण

रूपरेखा

- 11.1 उद्देश्य
- 11.2 प्रस्तावना
- 11.3 ध्वनियों का ऐतिहासिक उद्भव
- 11.4 ध्वन्यात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया (आगम, लोप और विपर्यय)
- 11.5 स्वर और व्यंजन का विकासक्रम
- 11.6 वैज्ञानिक वर्गीकरण (उच्चारण स्थान और प्रयत्न के आधार पर)
- 11.7 क्षेत्रीय ध्वन्यात्मक प्रवृत्तियाँ (ओ-कार और आ-कार बहुला)
- 11.8 उपभाषाओं के विशिष्ट लक्षण (ओकारान्त और इकारान्त रूप)
- 11.9 व्यंजन-विन्यास में क्षेत्रीय रूपांतरण
- 11.10 संक्रान्ति-कालीन ध्वनि सामग्री
- 11.11 सारबिंदु
- 11.12 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली
- 11.13 उपयोगी पाठ्यसामग्री

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप :-

- हिंदी ध्वनियों के ऐतिहासिक उद्भव और वैदिक संस्कृत से आधुनिक हिंदी तक की विकास यात्रा को समझ सकेंगे।
- ध्वन्यात्मक परिवर्तन की प्रमुख प्रक्रियाओं जैसे आगम, लोप और विपर्यय के वैज्ञानिक आधार को आत्मसात कर सकेंगे।
- उच्चारण स्थान और प्रयत्न के आधार पर स्वर एवं व्यंजन ध्वनियों के वैज्ञानिक वर्गीकरण की पहचान कर सकेंगे।
- हिंदी की विभिन्न उपभाषाओं में व्याप्त क्षेत्रीय ध्वन्यात्मक प्रवृत्तियों (ओ-कार, आ-कार और इकारान्त) के विशिष्ट लक्षणों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- व्यंजन-विन्यास में होने वाले क्षेत्रीय रूपांतरणों और उनके भाषाई महत्व को समझ सकेंगे।
- देवनागरी लिपि और हिंदी ध्वनियों के वैज्ञानिक समन्वय एवं उनके अंतर्संबंधों को स्पष्ट कर सकेंगे।

11.2 प्रस्तावना

हिंदी भाषा की ध्वन्यात्मक संरचना का अध्ययन केवल वर्तमान स्वरूप का विश्लेषण नहीं है, बल्कि यह उन भाषाई परिवर्तनों की एक लंबी और वैज्ञानिक यात्रा है, जो सहस्राब्दियों से भारतीय आर्य भाषाओं के इतिहास में घटित होते रहे हैं। हिंदी ध्वनियों के उद्भव और विकास की गाथा वस्तुतः उस अखंड धारा का परिणाम है, जो वैदिक संस्कृत की जटिलताओं से आरंभ होकर पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के सोपानों को पार करती हुई आधुनिक धरातल

पर पहुँची है। ध्वनियों का यह क्रमिक रूपांतरण कोई आकस्मिक प्रक्रिया नहीं थी, वरन् यह संक्रान्ति-कालीन भाषाई परिवर्तनों का एक सुव्यवस्थित प्रतिफल है जिसने मध्यदेश की भाषाई चेतना को एक नवीन और सशक्त आधार प्रदान किया। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान की दृष्टि से हिंदी ध्वनियों का विवेचन करते समय यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन आर्य भाषाओं के उस रूढ़ और जटिल स्वर-तंत्र में समय के साथ निरंतर सरलीकरण की प्रक्रिया चलती रही। संस्कृत की विभक्ति-प्रधान और संयुक्त वर्णों वाली ध्वन्यात्मक प्रवृत्तियाँ अपभ्रंश के अंतिम चरणों तक पहुँचते-पहुँचते रूपांतरित होने लगी थीं। इन्हीं परिवर्तनों के बीच उन नवीन ध्वनियों के बीज अंकुरित हुए जिन्होंने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के स्वतंत्र और परिष्कृत स्वरूप को निर्मित किया। हिंदी ध्वनियों के इस विकासक्रम में ध्वनियों के आगम, लोप और विपर्यय की प्रक्रियाओं ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिनका वैज्ञानिक विश्लेषण हमें भाषा की आंतरिक जीवंतता और उसकी प्रवृत्तियों को समझने में सहायता करता है।

ध्वनि-विज्ञान के धरातल पर हिंदी ध्वनियों का वर्गीकरण उनके उच्चारण स्थान और प्रयत्न के आधार पर किया जाता है। जहाँ प्राचीन काल में ध्वनियों का स्वरूप अत्यंत संश्लिष्ट था, वहीं आधुनिक हिंदी में वह अधिक स्पष्ट और विश्लेषणात्मक हो गया है। हिंदी के स्वर और व्यंजन न केवल अपने मूल आर्य स्रोतों से जुड़े हैं, बल्कि उन्होंने विभिन्न क्षेत्रीय प्रभावों और बोलियों के माध्यम से अपनी विशिष्ट प्रवृत्तियाँ भी विकसित की हैं। उदाहरण के लिए, पश्चिमी हिंदी और पूर्वी हिंदी की बोलियों में ध्वन्यात्मक स्तर पर जो अंतर दिखाई देता है वह उनके ऐतिहासिक उद्भव की भिन्नता का साक्ष्य है। हिंदी की क्षेत्रीय बोलियों के ध्वन्यात्मक लक्षणों का सूक्ष्म अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि ध्वनियों का स्वरूप केवल व्याकरणिक नियमों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह अंचल की सांस्कृतिक पहचान से भी जुड़ा है। ब्रजभाषा की कोमलता जहाँ ‘ओ-कार’ बहुला प्रवृत्तियों में निहित है, वहीं खड़ीबोली की स्पष्टता ‘आ-कार’ बहुला स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है। इसी प्रकार पूर्वी हिंदी और बिहारी उपभाषा समूहों में इकारान्त रूपों की प्रधानता यह दर्शाती है कि मागधी और अर्धमागधी अपभ्रंशों ने ध्वन्यात्मक स्तर पर किस प्रकार स्वतंत्र मार्ग अपनाया। व्यंजनों के संदर्भ में भी क्षेत्रीय स्तर पर होने वाले परिवर्तन जैसे ‘न’ का ‘ण’ होना या ‘ल’ का ‘र’ में रूपांतरण, हिंदी के ध्वन्यात्मक कोश को बहुआयामी विस्तार प्रदान करते हैं। लिपि और ध्वनि का अंतर्संबंध भी इस विवेचन का एक अनिवार्य पक्ष है। नागरी लिपि ने इन विविध बोलियों और उनके ध्वन्यात्मक स्वरूपों को एक सूत्र में पिरोने का ऐतिहासिक कार्य किया है। लिपि के विकासक्रम ने यह सुनिश्चित किया कि मौखिक रूप से प्रवाहित होने वाली ये ध्वनियाँ एक व्यवस्थित और वैज्ञानिक लिखित ढाँचे में ढल सकें। वास्तव में हिंदी ध्वनियों का यह वर्गीकरण केवल वर्णमाला का संकलन नहीं है, बल्कि यह उन प्राचीन और मध्यकालीन आर्य भाषाओं के अवशेषों और नवीन प्रयोगों का एक संपूर्ण तुलनात्मक लेखा-जोखा है, जो हिंदी को विश्व-पटल पर एक परिष्कृत और वैज्ञानिक भाषा के रूप में स्थापित करता है।

11.3 ध्वनियों का ऐतिहासिक उद्भव

हिंदी ध्वनियों का ऐतिहासिक उद्भव भारतीय आर्य भाषाओं के उस सुदीर्घ और अखंड प्रवाह का जीवंत परिणाम है, जो प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक निरंतर प्रवाहित होता रहा है। इस विकास यात्रा का मूल स्रोत वैदिक संस्कृत है, जहाँ से ध्वनियाँ पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के विभिन्न सोपानों को पार करती हुई अपने वर्तमान स्वरूप तक पहुँची हैं। ध्वनियों का यह रूपांतरण कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, बल्कि यह भाषाई सरलीकरण की एक निरंतर चलने वाली वैज्ञानिक प्रक्रिया थी, जिसने वैदिक काल के संश्लिष्ट और जटिल ध्वनि-तंत्र को आधुनिक काल की विश्लेषणात्मक ध्वनियों में परिवर्तित कर दिया। इस

ऐतिहासिक उद्भव के दौरान ध्वनियों के आगम, लोप और विपर्यय की प्रक्रियाएँ अत्यंत सक्रिय रही जिन्होंने प्राचीन भारोपीय मूल की ध्वनियों को हिंदी की अपनी विशिष्ट पहचान प्रदान की। संयुक्त वर्णों का क्रमिक सरलीकरण और स्वर ध्वनियों के हास ने हिंदी को वह कोमलता और प्रवाह दिया, जो इसे अपनी पूर्ववर्ती भाषाओं से भाषाई स्तर पर अलग और स्वतंत्र करता है। ध्वनियों के इस ऐतिहासिक विकासक्रम में अपभ्रंश काल की भूमिका सबसे निर्णायक और आधारभूत रही है, क्योंकि इसी काल में आधुनिक हिंदी की ध्वनियों के बीज पूर्णतः अंकुरित और पल्लवित हुए थे। प्राचीन आर्य भाषाओं के उस जटिल और रुढ़ व्याकरणिक ढाँचे के टूटने से जो ‘संक्रान्ति-कालीन’ भाषा सामग्री उत्पन्न हुई उसने आधुनिक हिंदी ध्वनियों को एक नया वैज्ञानिक धरातल प्रदान किया। शौरसेनी, अर्धमागधी और मागधी अपभ्रंशों ने ध्वन्यात्मक स्तर पर भिन्न-भिन्न मार्ग अपनाए जिसके कारण आज हिंदी की विभिन्न उपभाषाओं में पर्याप्त ध्वन्यात्मक विविधता और क्षेत्रीय वैशिष्ट्य दिखाई देता है। जहाँ पश्चिमी हिंदी की बोलियों ने शौरसेनी के प्रभाव में विशिष्ट ध्वन्यात्मक लक्षण ग्रहण किए, वहीं पूर्वी और बिहारी समूहों में मागधी एवं अर्धमागधी के ऐतिहासिक अवशेष आज भी सुरक्षित हैं। ध्वनियों का यह ऐतिहासिक उद्भव केवल वर्णों के यांत्रिक परिवर्तन तक सीमित नहीं था, बल्कि यह उस व्यापक सांस्कृतिक और भौगोलिक विस्तार का भी प्रतिबिंब था जिसने मध्यदेश की भाषाई चेतना को एक सुदृढ़ सूत्र में पिरोने का कार्य किया।

आधुनिक हिंदी ध्वनियों का वर्तमान स्वरूप वस्तुतः उन प्राचीन आर्य ध्वनियों का ही परिष्कृत और विकसित रूप है जिन्होंने समय के साथ स्थानीय प्रभावों, भौगोलिक परिस्थितियों और क्षेत्रीय बोलियों के साथ एक सफल समन्वय स्थापित किया है। ऐतिहासिक भाषा-वैज्ञानिक विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि हिंदी के स्वर और व्यंजन अपने मूल वैदिक स्रोतों से विकसित होकर भी आज एक स्वतंत्र व्याकरणिक सत्ता और पहचान रखते हैं। लिपि और ध्वनि के गहरे अंतर्संबंध ने भी इस उद्भव को स्थायित्व और प्रमाणिकता प्रदान की, जहाँ नागरी लिपि ने विविध आंचलिक ध्वनियों को एक सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक लिपि-विधान में बांधने का कार्य किया। हिंदी ध्वनियों का यह क्रमिक विकास आज भी एक प्रवाहमान सरिता के समान जारी है, जो इसके जीवंत और भविष्योन्मुखी होने का अकाट्य प्रमाण है। ध्वनियों का यह ऐतिहासिक उद्भव हमें यह समझने की दृष्टि प्रदान करता है कि हिंदी केवल एक नई या कृत्रिम भाषा नहीं है, बल्कि यह हजारों वर्षों की समृद्ध भाषाई विरासत का वह आधुनिकतम और प्रौढ़ संस्करण है जिसमें प्राचीनता का गौरव और आधुनिकता की सहजता दोनों का अद्भुत सामंजस्य समाहित है।

11.4 ध्वन्यात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया (आगम, लोप और विपर्यय)

हिंदी ध्वनियों के विकास में ध्वन्यात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया एक अत्यंत वैज्ञानिक और निरंतर चलने वाली घटना रही है, जिसने प्राचीन आर्य भाषाओं के जटिल स्वरूप को आधुनिक हिंदी की सहजता में रूपांतरित किया है। इस प्रक्रिया का सबसे पहला महत्वपूर्ण आयाम ‘आगम’ है, जिसका अर्थ है किसी शब्द में किसी नई ध्वनि का प्रविष्ट हो जाना। ऐतिहासिक दृष्टि से जब उच्चारण की सुविधा या क्षेत्रीय प्रभाव के कारण शब्दों के आदि, मध्य या अंत में नई ध्वनियाँ जुड़ जाती हैं, तो उसे आगम कहा जाता है। उदाहरण के लिए, संस्कृत के ‘स्त्री’ शब्द का ‘इस्त्री’ या ‘स्तुति’ से ‘अस्तुति’ हो जाना स्वर-आगम के जीवंत उदाहरण हैं। इसी प्रकार ‘लोप’ की प्रक्रिया के अंतर्गत उच्चारण को संक्षिप्त और सरल बनाने के प्रयास में किसी ध्वनि का पूरी तरह से विलुप्त हो जाना शामिल है। वैदिक संस्कृत से अपभ्रंश तक की यात्रा में अनेक संयुक्त वर्णों और स्वर ध्वनियों का लोप हुआ है, जिससे भाषा का व्याकरणिक ढाँचा सरल होता गया। ‘स्थान’ से ‘थान’ या ‘हस्त’ से ‘हाथ’ होने

की प्रक्रिया में ध्वनियों का जो लोप दिखाई देता है वह भाषाई विकास की उसी प्रवृत्ति का हिस्सा है जो कठिन उच्चारणों को त्यागकर सहजता की ओर बढ़ती है। ध्वन्यात्मक परिवर्तन का तीसरा और अत्यंत रोचक पक्ष 'विपर्यय' है, जिसे ध्वनियों का स्थान-परिवर्तन भी कहा जाता है। इस प्रक्रिया में शब्द के भीतर मौजूद ध्वनियाँ अपना स्थान बदल लेती हैं, जिससे शब्द का बाह्य रूप बदल जाता है, किंतु उसका मूल अर्थ सुरक्षित रहता है। लोक-भाषा और क्षेत्रीय बोलियों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से मुखर रही है, जहाँ 'चिह्न' का 'चिनह' या 'मतलब' का 'मलबत' हो जाना उच्चारण की क्षेत्रीय विशिष्टता को दर्शाता है। ये तीनों प्रक्रियाएँ-आगम, लोप और विपर्यय-केवल यांत्रिक बदलाव नहीं हैं, बल्कि ये उस ऐतिहासिक और सामाजिक चेतना का परिणाम हैं, जिसने मध्यदेश की भाषाई संरचना को नई दिशा प्रदान की। संक्रान्ति-कालीन भाषा सामग्री के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि किस प्रकार अपभ्रंश के अंतिम चरणों में इन ध्वन्यात्मक परिवर्तनों ने प्राचीन और आधुनिक भाषाओं के बीच एक सेतु का कार्य किया। इन प्रक्रियाओं के माध्यम से ही हिंदी ध्वनियों ने अपनी वह मौलिक पहचान अर्जित की है जो इसे अपनी पूर्ववर्ती भाषाओं से अधिक प्रवाहपूर्ण और विश्लेषणात्मक बनाती है और यही वैज्ञानिक आधार हिंदी के समग्र तुलनात्मक व्याकरण को एक ठोस धरातल प्रदान करता है।

11.5 स्वर और व्यंजन का विकासक्रम

हिंदी भाषा में स्वर और व्यंजन का विकासक्रम प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं के जटिल ध्वनि-तंत्र से आधुनिक हिंदी के सरल और विश्लेषणात्मक स्वरूप की ओर बढ़ने की एक वैज्ञानिक यात्रा है। इस भाषाई विकास का मूल आधार यह है कि भाषा समय के साथ कठिनता से सरलता की ओर अग्रसर होती है। प्राचीन भारोपीय भाषाओं की विरासत को समेटे हुए वैदिक संस्कृत की ध्वनियाँ जब मध्यकालीन और फिर आधुनिक काल में पहुँचीं तो उनमें अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। स्वर ध्वनियों के संदर्भ में यह विकास मुख्य रूप से स्वरों के हास, संकुचन और सरलीकरण पर आधारित रहा है। प्राचीन वैदिक संस्कृत में स्वरों की संख्या और उनकी प्रकृति अत्यंत संश्लिष्ट थी, जिसमें 'ऋ', 'ॠ', 'लृ' जैसी ध्वनियाँ भी सम्मिलित थीं। इन ध्वनियों का उच्चारण उस समय अत्यंत विशिष्ट और कठिन था। विकास के क्रम में जब भाषा प्राकृत और अपभ्रंश के सोपानों तक पहुँची, तो इन जटिल स्वरों का लोप होने लगा या वे सरल स्वरों में रूपांतरित हो गए। उदाहरण के लिए, संस्कृत की 'ऋ' ध्वनि का विकास विभिन्न अंचलों में 'अ', 'इ' या 'उ' के रूप में हुआ, जैसे 'कृषि' का 'किसानी' या 'ऋक्ष' का 'रीछ' हो जाना। यह सरलीकरण की प्रक्रिया ही थी जिसने भाषा को जनसामान्य के उच्चारण के अनुकूल बनाया। इसके अतिरिक्त, अपभ्रंश काल में 'ऐ' और 'औ' जैसी संयुक्त ध्वनियाँ विकसित हुईं, जिन्होंने आधुनिक हिंदी की स्वर-संरचना को एक नया आधार प्रदान किया। ये ध्वनियाँ संस्कृत के मूल 'ऐ' और 'औ' से उच्चारण में भिन्न थीं और इनमें एक प्रकार का संकुचन देखा गया। स्वरों के इस ऐतिहासिक विकास में दीर्घ स्वरों का ह्रस्व होना और अन्त्य स्वरों का लोप होना सबसे महत्वपूर्ण घटनाएँ रहीं, जिससे हिंदी की प्रकृति वियोगात्मक और प्रवाहपूर्ण हो गई। अन्त्य स्वरों के लोप ने ही हिंदी को 'अकारान्त' से बदलकर एक नई दिशा दी, जहाँ शब्दों के अंत में स्वर का उच्चारण क्षीण हो गया।

व्यंजन ध्वनियों का विकासक्रम और भी अधिक विविधतापूर्ण और रोचक रहा है जिसमें संयुक्त व्यंजनों का सरलीकरण और महाप्राण ध्वनियों का विशिष्ट प्रयोग मुख्य है। प्राचीन संस्कृत में पाए जाने वाले जटिल संयुक्त वर्ण (जैसे-क्र, प्र, स्त, न्त) प्राकृत काल तक आते-आते द्वित्व व्यंजनों (जैसे-कक, पप, त्त) में बदल गए। प्राकृत की यह मुख्य प्रवृत्ति थी कि वह संयुक्त

वर्णों को एक ही ध्वनि के दोहरे रूप में बदल देती थी। फिर अपभ्रंश से हिंदी तक की यात्रा में ये द्वित्व व्यंजन ‘पूरक दीर्घीकरण’ के सिद्धांत के तहत सरल एकल व्यंजन में परिवर्तित हो गए। इस सिद्धांत के अनुसार जब दो व्यंजनों में से एक का लोप होता है, तो उससे पहले आने वाला स्वर दीर्घ हो जाता है। इसी प्रक्रिया के कारण ‘हस्त’ पहले ‘हृत्थ’ बना और अंततः हिंदी में ‘हाथ’ के रूप में विकसित हुआ। इसी प्रकार ‘कर्म’ से ‘कम्म’ और फिर ‘काम’ शब्द का विकास हुआ। व्यंजनों के इस विकासक्रम में घोषीकरण, अघोषीकरण और अल्पप्राणीकरण जैसी प्रवृत्तियों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कई स्थानों पर अघोष ध्वनियाँ घोष में बदल गईं और महाप्राण ध्वनियाँ उच्चारण की सुगमता के लिए अल्पप्राण में रूपांतरित हो गईं। मध्यकालीन भाषाई परिवर्तनों के दौरान ‘न’ का ‘ण’ में और ‘ल’ का ‘र’ में रूपांतरण जैसी क्षेत्रीय विशेषताएँ उभरीं, जिन्होंने विभिन्न बोलियों के व्यंजन-विन्यास को विशिष्टता प्रदान की। जैसे पश्चिमी हिंदी और पूर्वी हिंदी की बोलियों में इन व्यंजनों का प्रयोग अलग-अलग रूपों में मिलता है। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान की दृष्टि से यह स्पष्ट है कि हिंदी ध्वनियों का उद्भव किसी आकस्मिक घटना का परिणाम नहीं है, बल्कि यह हजारों वर्षों की निरंतर शोधन प्रक्रिया का फल है। अपभ्रंश के ‘संक्रान्ति-कालीन’ चरण ने प्राचीन और आधुनिक ध्वनियों के बीच जो सेतु बनाया उसी पर आज की मानक हिंदी खड़ी है। इससे हिंदी का व्यंजन-तंत्र न केवल वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित बन सका है, बल्कि यह अपनी पूर्ववर्ती भाषाओं की तुलना में अधिक स्पष्ट और अभिव्यंजक भी हो गया है।

11.6 वैज्ञानिक वर्गीकरण (उच्चारण स्थान और प्रयत्न के आधार पर)

हिंदी ध्वनियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण उनके उच्चारण की प्रक्रिया और मुख-विवर में होने वाली हलचल के आधार पर किया जाता है, जिसमें ‘उच्चारण स्थान’ सबसे प्रमुख आधार है। उच्चारण स्थान का अर्थ है वह विशेष स्थान जहाँ प्राणवायु को रोककर या बाधित करके किसी ध्वनि का निर्माण किया जाता है। इस वैज्ञानिक दृष्टि से हिंदी ध्वनियों को कंट्य, तालव्य, मूर्धन्य, दंत्य और ओष्ठ्य जैसे वर्गों में विभाजित किया गया है। कंट्य ध्वनियों (जैसे-क, ख, ग, घ) का उच्चारण सीधे कंठ से होता है, जबकि तालव्य ध्वनियों (जैसे-च, छ, ज, झ) में जिह्वा तालु को स्पर्श करती है। मूर्धन्य ध्वनियाँ (जैसे-ट, ठ, ड, ढ) कठोर तालु के ऊपरी भाग के स्पर्श से उत्पन्न होती हैं और दंत्य ध्वनियाँ (जैसे-त, थ, द, ध) जिह्वा के दांतों से टकराने पर निर्मित होती हैं। ओष्ठ्य ध्वनियों (जैसे-प, फ, ब, भ) के लिए दोनों होठों का परस्पर मिलना अनिवार्य है। यह वर्गीकरण केवल वर्णमाला का क्रम नहीं है, बल्कि यह ध्वनियों के ऐतिहासिक विकास और उनके उच्चारण की भौतिक प्रक्रिया का एक सटीक लेखा-जोखा है, जो प्राचीन आर्य भाषाओं के वैज्ञानिक व्याकरणिक ढाँचे पर आधारित है। वर्गीकरण का दूसरा अनिवार्य स्तंभ ‘प्रयत्न’ है जो ध्वनि उत्पादन के लिए किए गए आंतरिक या बाह्य प्रयास को दर्शाता है। प्रयत्न को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा गया है-आभ्यंतर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्न। आभ्यंतर प्रयत्न के अंतर्गत ध्वनियों को उनके उच्चारण की प्रकृति के आधार पर स्पर्श, अंतस्थ और ऊष्म जैसी श्रेणियों में रखा जाता है। स्पर्श व्यंजनों में वायु मुख के किसी विशेष अंग को स्पर्श करती हुई बाहर निकलती है, जबकि अंतस्थ (य, र, ल, व) में उच्चारण का मार्ग कुछ संकुचित रहता है। ऊष्म ध्वनियों (श, ष, स, ह) के उच्चारण में वायु रगड़ खाकर बाहर निकलती है, जिससे घर्षण पैदा होता है। बाह्य प्रयत्न के आधार पर ध्वनियों का वर्गीकरण घोष-अघोष और अल्पप्राण-महाप्राण के रूप में किया जाता है। घोष ध्वनियों में स्वर-तंत्रियों में कंपन होता है, जबकि अघोष में यह कंपन नहीं होता। इसी तरह प्राणवायु की मात्रा के आधार पर अल्पप्राण (कम वायु) और महाप्राण (अधिक वायु) का भेद किया जाता है, जो हिंदी की ध्वन्यात्मक पहचान का सबसे विशिष्ट लक्षण है।

उच्चारण स्थान और प्रयत्न का यह सम्मिलित वैज्ञानिक विश्लेषण हिंदी ध्वनियों के विकासक्रम और उनकी क्षेत्रीय प्रवृत्तियों को समझने में सहायक होता है। ऐतिहासिक रूप से, जब ध्वनियाँ संस्कृत से अपभ्रंश और फिर हिंदी तक पहुँचीं तो उनके उच्चारण स्थान में सूक्ष्म परिवर्तन हुए, जिन्हें इस वर्गीकरण के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है। उदाहरण के लिए ‘ओ-कार’ और ‘आ-कार’ बहुला प्रवृत्तियों का अंतर वास्तव में उच्चारण प्रयत्न और स्थान की स्थानीय विशेषताओं का ही परिणाम है। बोलियों के आधार पर व्यंजनों का रूपांतरण, जैसे ‘न’ का ‘ण’ होना, भी इसी वैज्ञानिक आधार पर सिद्ध किया जाता है कि उच्चारण के समय जिह्वा की स्थिति और प्रयत्न की तीव्रता में क्या बदलाव आया है। लिपि और ध्वनि का समन्वय इसी वैज्ञानिक वर्गीकरण के कारण संभव हो सका है, क्योंकि नागरी लिपि ने प्रत्येक ध्वनि के विशिष्ट उच्चारण स्थान और प्रयत्न को अपनी वर्णमाला में एक निश्चित स्थान प्रदान किया है। इस प्रकार, यह वर्गीकरण हिंदी भाषा की ध्वन्यात्मक संरचना को एक पूर्णतः वैज्ञानिक, सुव्यवस्थित और तुलनात्मक व्याकरणिक गरिमा प्रदान करता है।

11.7 क्षेत्रीय ध्वन्यात्मक प्रवृत्तियाँ (ओ-कार और आ-कार बहुला)

हिंदी भाषा के ध्वन्यात्मक विकास में क्षेत्रीय प्रवृत्तियों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है जिसने विभिन्न बोलियों को उनकी विशिष्ट पहचान प्रदान की है। इस संदर्भ में ‘ओ-कार’ और ‘आ-कार’ बहुला प्रवृत्तियाँ सबसे अधिक मुखर और प्रभावी रही हैं। ऐतिहासिक रूप से पश्चिमी हिंदी की बोलियों में शौरसेनी अपभ्रंश के प्रभावस्वरूप ध्वन्यात्मक स्तर पर दो स्पष्ट विभाजन दिखाई देते हैं। ब्रजभाषा, बुंदेली और कन्नौजी जैसी बोलियों को ‘ओ-कार’ बहुला माना जाता है, क्योंकि इनमें संज्ञा, विशेषण और क्रिया के अंत में ‘ओ’ ध्वनि की प्रधानता होती है। उदाहरण के लिए जहाँ मानक हिंदी में ‘लड़का’ या ‘गया’ जैसे शब्द प्रयुक्त होते हैं, वहीं ब्रजक्षेत्र में ये ‘लड़को’ और ‘गयो’ के रूप में उच्चारित होते हैं। यह प्रवृत्ति प्राचीन आर्य भाषाओं के उस संक्रान्ति-कालीन ध्वनि परिवर्तन का परिणाम है, जहाँ ‘अ’ और ‘उ’ के संयोग से विकसित हुई ध्वनियों ने क्षेत्रीय आधार पर स्थायित्व प्राप्त कर लिया। यह ध्वन्यात्मक वैशिष्ट्य केवल उच्चारण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह इन बोलियों के व्याकरणिक ढाँचे और उनकी संगीतात्मकता को भी गहराई से प्रभावित करता है। दूसरी ओर ‘आ-कार’ बहुला प्रवृत्ति मुख्य रूप से खड़ीबोली (कौरवी) और हरियाणवी जैसी बोलियों की विशेषता है, जो आधुनिक मानक हिंदी का मुख्य आधार बनी हैं। इस प्रवृत्ति में शब्दों के अंत में ‘आ’ ध्वनि की स्पष्टता और प्रधानता रहती है जो भाषा को एक प्रकार की कक्कशता और स्पष्टता प्रदान करती है। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान की दृष्टि से ‘आ-कार’ का विकास उन क्षेत्रों में अधिक हुआ जहाँ प्राचीन प्राकृत और अपभ्रंश के अन्त्य स्वरों का लोप होने के बाद पुनः दीर्घीकरण की प्रक्रिया चली। इसके अतिरिक्त हिंदी की अन्य उपभाषाओं, जैसे पूर्वी हिंदी और बिहारी समूहों में, ‘इ-कार’ या ‘उ-कार’ की सूक्ष्म प्रवृत्तियाँ भी दिखाई देती हैं, जो प्राचीन मागधी और अर्धमागधी के ध्वन्यात्मक अवशेषों को समेटे हुए हैं। क्षेत्रीय ध्वन्यात्मक प्रवृत्तियों का यह वैज्ञानिक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि हिंदी का ध्वनि-तंत्र कोई जड़ संरचना नहीं है, बल्कि यह भौगोलिक विस्तार और स्थानीय उच्चारण के प्रयत्नों के साथ निरंतर विकसित होने वाली एक जीवंत प्रक्रिया है। ये प्रवृत्तियाँ न केवल बोलियों के बीच अंतर स्पष्ट करती हैं, बल्कि हिंदी के समग्र तुलनात्मक व्याकरण को एक ठोस और विविध धरातल भी प्रदान करती हैं।

11.8 उपभाषाओं के विशिष्ट लक्षण (ओकारान्त और इकारान्त रूप)

हिंदी की विभिन्न उपभाषाओं के विशिष्ट ध्वन्यात्मक लक्षणों का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि क्षेत्रीय आधार पर स्वरों के प्रयोग में अत्यधिक विविधता पाई जाती है। इनमें ‘ओकारान्त’ प्रवृत्ति पश्चिमी हिंदी की कुछ प्रमुख बोलियों, विशेषकर ब्रजभाषा, बुंदेली और

कन्नौजी का मुख्य आधार है। ऐतिहासिक रूप से यह प्रवृत्ति शौरसेनी अपभ्रंश के विकासक्रम से जुड़ी है, जहाँ शब्दों के अंत में आने वाले 'अ' स्वर का रूपांतरण 'ओ' में हो गया। इस ध्वन्यात्मक लक्षण के कारण इन बोलियों में संज्ञा, सर्वनाम और क्रिया के रूपों में एक विशेष प्रकार की कोमलता और संगीतात्मकता आ जाती है। उदाहरण के तौर पर, जहाँ मानक हिंदी में 'घोड़ा', 'काला' या 'छोटा' जैसे आकारान्त शब्द प्रयुक्त होते हैं, वहीं ओकारान्त प्रधान उपभाषाओं में इनका स्वरूप 'घोड़ो', 'कालो' और 'छोटो' हो जाता है। यह केवल एक उच्चारण भेद नहीं है, बल्कि यह इन उपभाषाओं के उस आंतरिक व्याकरणिक ढाँचे को दर्शाता है जो प्राचीन आर्य भाषाओं के संक्रान्ति-कालीन परिवर्तनों से निर्मित हुआ है। दूसरी ओर, हिंदी की पूर्वी उपभाषाओं और बिहारी समूह की बोलियों में 'इकारान्त' रूप एक विशिष्ट ध्वन्यात्मक लक्षण के रूप में उभरकर आता है। अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी और विशेष रूप से भोजपुरी, मैथिली एवं मगही में शब्दों के अंत या मध्य में 'इ' स्वर की प्रधानता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान की दृष्टि से यह लक्षण मागधी और अर्धमागधी अपभ्रंशों के अवशेषों का प्रतिनिधित्व करता है। इन क्षेत्रों में उच्चारण की सहजता के लिए दीर्घ स्वरों को ह्रस्व करने या अंत में 'इ' की ध्वनि जोड़ने की प्रवृत्ति रही है। जैसे 'पानी' के स्थान पर 'पानि' या क्रिया रूपों में 'देखिस', 'कहिस' जैसे प्रयोग इकारान्त प्रधानता के ही उदाहरण हैं। यह विशिष्टता इन उपभाषाओं को पश्चिमी हिंदी की बोलियों से भाषाई स्तर पर अलग करती है और इनके स्वतंत्र ऐतिहासिक उद्भव की पुष्टि करती है।

उपभाषाओं के ये ओकारान्त और इकारान्त रूप केवल ध्वन्यात्मक भिन्नता तक सीमित नहीं हैं, बल्कि ये इन क्षेत्रों की सांस्कृतिक और भौगोलिक पहचान से भी गहरे जुड़े हुए हैं। जहाँ ओकारान्त रूप मध्यदेश की ब्रज संस्कृति की मधुरता और काव्यमयता को स्वर प्रदान करते हैं, वहीं इकारान्त रूप पूर्व के जनपदों की भाषाई सरलता और वियोगात्मक प्रकृति को अभिव्यक्त करते हैं। इन क्षेत्रीय प्रवृत्तियों के कारण ही हिंदी का ध्वनि-तंत्र अत्यंत समृद्ध और बहुआयामी बना है। इन लक्षणों का वैज्ञानिक विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि हिंदी की बोलियाँ अपने मूल स्रोतों से विकसित होते हुए भी स्थानीय उच्चारण की आवश्यकताओं और ध्वन्यात्मक नियमों के अनुसार निरंतर परिवर्तित होती रही हैं। ओकारान्त और इकारान्त रूपों का अध्ययन हिंदी के समग्र तुलनात्मक व्याकरण को समझने के लिए अनिवार्य है, क्योंकि ये प्रवृत्तियाँ ही उपभाषाओं के बीच की सीमाओं और उनके आपसी संबंधों को वैज्ञानिक आधार प्रदान करती हैं।

11.9 व्यंजन-विन्यास में क्षेत्रीय रूपांतरण

हिंदी की विभिन्न बोलियों और उपभाषाओं में व्यंजन-विन्यास का क्षेत्रीय रूपांतरण भाषाई विकास की एक अत्यंत महत्वपूर्ण और वैज्ञानिक प्रक्रिया है। ऐतिहासिक दृष्टि से, जब प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं की ध्वनियाँ विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में विकसित हुईं तो स्थानीय उच्चारण की आदतों, जलवायु और भाषाई परिवेश के कारण उनके व्यंजन-विन्यास में स्पष्ट अंतर आने लगा। यह रूपांतरण मुख्य रूप से व्यंजनों के स्थान-परिवर्तन, उनके घोषीकरण-अघोषीकरण और महाप्राण ध्वनियों के विशिष्ट प्रयोगों के रूप में दिखाई देता है। शौरसेनी, अर्धमागधी और मागधी अपभ्रंशों से विकसित होने वाली बोलियों ने अपने-अपने क्षेत्रीय स्वभाव के अनुसार व्यंजनों के स्वरूप को ढाला है, जो आज हिंदी की उपभाषाओं में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। क्षेत्रीय रूपांतरण का एक प्रमुख उदाहरण 'न' और 'ण' ध्वनियों का प्रयोग है। पश्चिमी हिंदी की बोलियों, विशेषकर हरियाणवी और मारवाड़ी में 'न' ध्वनि का 'ण' में रूपांतरित हो जाना एक प्रधान लक्षण है। जहाँ मानक हिंदी में 'जाना' या 'माना' शब्द प्रयुक्त होते हैं, वहीं इन क्षेत्रीय बोलियों में इनका उच्चारण 'जाणा' और 'माणा' के रूप में किया जाता है। इसके विपरीत पूर्वी हिंदी (अवधी, बघेली) और

बिहारी समूह की बोलियों में 'ण' ध्वनि प्रायः 'न' में बदल जाती है। व्यंजनों का यह क्षेत्रीय विन्यास प्राचीन प्राकृत प्रवृत्तियों के निरंतर प्रवाह का परिणाम है, जहाँ भौगोलिक सीमाओं के साथ-साथ ध्वनियों के उच्चारण प्रयत्न में भी परिवर्तन आता गया।

'ल' और 'र' ध्वनियों का परस्पर रूपांतरण भी एक विशिष्ट क्षेत्रीय लक्षण है। कुछ बोलियों में 'ल' के स्थान पर 'र' का प्रयोग अधिक मिलता है, जबकि कुछ अन्य क्षेत्रों में इसके उलट स्थिति दिखाई देती है। उदाहरण के लिए भोजपुरी और अन्य बिहारी बोलियों में 'ल' का 'र' में रूपांतरण (जैसे- 'फल' का 'फर') उच्चारण की सरलता और क्षेत्रीय विशिष्टता को दर्शाता है। व्यंजनों के इस विन्यास में 'स', 'श' और 'ष' का रूपांतरण भी उल्लेखनीय है। अधिकांश ग्रामीण बोलियों में तालव्य 'श' और मूर्धन्य 'ष' के स्थान पर दंत्य 'स' का प्रयोग ही प्रचलित है। यह प्रवृत्ति यह सिद्ध करती है कि क्षेत्रीय स्तर पर व्यंजन-विन्यास हमेशा जटिलता से सरलता और उच्चारण की सुगमता की ओर अग्रसर होता है। व्यंजन-विन्यास के रूपांतरण में महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राणीकरण भी एक महत्वपूर्ण क्षेत्रीय प्रक्रिया है। पूर्वी अंचलों की कुछ बोलियों में महाप्राण व्यंजनों (ख, घ, छ, झ आदि) के उच्चारण में वायु की मात्रा कम हो जाती है जिससे वे अपने अल्पप्राण रूप के निकट पहुँच जाते हैं। इसके साथ ही ड-ड़ और ढ-ढ़ जैसी ध्वनियों का प्रयोग भी क्षेत्रीय आधार पर भिन्न-भिन्न रूप में मिलता है। पश्चिमी हिंदी में इन ध्वनियों का स्पष्ट और कठोर उच्चारण मिलता है, जबकि पूर्वी क्षेत्रों में इनका स्वरूप कुछ कोमल हो जाता है। व्यंजन-विन्यास का यह क्षेत्रीय रूपांतरण हिंदी को एक बहुआयामी और समृद्ध ध्वन्यात्मक ढाँचा प्रदान करता है, जिसमें प्राचीन भाषाई विरासत और आधुनिक क्षेत्रीय पहचान का अनूठा सामंजस्य समाहित है।

11.10 संक्रान्ति-कालीन ध्वनि सामग्री

संक्रान्ति-कालीन ध्वनि सामग्री वस्तुतः वह भाषाई सेतु है जो प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं (विशेषकर अपभ्रंश) और आधुनिक हिंदी के बीच के संक्रमण काल को परिभाषित करती है। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान की दृष्टि से यह वह समय था जब अपभ्रंश अपनी शास्त्रीय रुढ़ियों को त्याग रही थी और पुरानी हिंदी या 'अवहट्ठ' के माध्यम से नई ध्वन्यात्मक विशेषताओं को ग्रहण कर रही थी। इस काल की सबसे प्रमुख विशेषता ध्वनियों का वह अस्थिर और परिवर्तनशील स्वरूप है, जहाँ प्राचीन गौरव की ध्वनियाँ धीरे-धीरे सरलीकृत होकर आधुनिक रूप ले रही थीं। उदाहरण के लिए संयुक्त व्यंजनों का द्वित्व में बदलना और फिर पूरक दीर्घीकरण के माध्यम से सरल हो जाना इसी संक्रान्ति-कालीन प्रक्रिया का परिणाम था। यह काल ध्वनियों के ऐतिहासिक उद्भव की वह प्रयोगशाला थी जहाँ 'ऋ' जैसी जटिल ध्वनियों का पूर्णतः लोप हुआ और उनके स्थान पर सरल स्वर ध्वनियों ने अपनी जड़ें जमाईं। इस संक्रान्ति-कालीन सामग्री का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष व्यंजनों के विन्यास में आने वाला वह क्रांतिकारी बदलाव है जिसने हिंदी को उसकी वर्तमान पहचान प्रदान की। अपभ्रंश के अंतिम चरणों में महाप्राण ध्वनियों का जो विशिष्ट प्रयोग मिलता है, वह इसी काल की देन है। प्राचीन आर्य भाषाओं के संश्लिष्ट ढाँचे के टूटने से उत्पन्न हुई भाषाई सामग्री ने उच्चारण के नए मानकों को जन्म दिया, जिसमें घोषीकरण और अल्पप्राणीकरण की प्रक्रियाएँ अत्यंत सक्रिय थीं। इस काल में 'न' का 'ण' में और 'ल' का 'र' में जो रूपांतरण दिखाई देता है, वह उसी संक्रान्ति-कालीन चेतना का हिस्सा है जिसने भाषाई प्रवाह को कठिन से सरल की ओर मोड़ा। ध्वनियों के इस 'आगम' और 'विपर्यय' ने न केवल शब्दों के बाह्य रूप को बदला, बल्कि भाषा के आंतरिक संगीत को भी प्रभावित किया। संक्रान्ति-कालीन सामग्री के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी की ध्वनियाँ किसी शून्य से पैदा नहीं हुई थीं, बल्कि वे अपभ्रंश की कोख से निकली उन ध्वन्यात्मक प्रवृत्तियों का परिष्कृत रूप हैं जिन्होंने

लोक-भाषा के धरातल पर स्वयं को ढाला था।

संक्रान्ति-कालीन ध्वनि सामग्री हिंदी के तुलनात्मक व्याकरण और ऐतिहासिक विकास को समझने की सबसे प्रमाणिक आधारशिला है। इस सामग्री ने ही यह निश्चित किया कि हिंदी एक वियोगात्मक भाषा बनेगी, जहाँ अन्त्य स्वरों का लोप होना एक सामान्य प्रवृत्ति बन गई। संक्रान्ति काल की इस सामग्री में ही वे बीज छिपे थे जिन्होंने ब्रज, अवधी और खड़ीबोली जैसी उपभाषाओं के ध्वन्यात्मक वैविध्य को अंकुरित किया। ‘ओ-कार’ और ‘आ-कार’ बहुला प्रवृत्तियों का जो प्रारंभिक संकेत हमें संक्रान्ति-कालीन ग्रंथों और जनभाषा के अवशेषों में मिलता है, वह इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि हिंदी का ध्वनि-तंत्र वैज्ञानिक और ऐतिहासिक निरंतरता का परिणाम है। लिपि और ध्वनि के अंतर्संबंधों ने भी इस काल में एक नई दिशा प्राप्त की, जहाँ नागरी लिपि ने इन संक्रान्ति-कालीन ध्वनियों को स्थायित्व प्रदान करने का कार्य किया। अतः यह सामग्री केवल वर्णों का समूह नहीं है, बल्कि यह हजारों वर्षों की भाषाई यात्रा का वह निर्णायक मोड़ है, जहाँ से प्राचीनता आधुनिकता के साथ हाथ मिलाती है और हिंदी को एक प्रौढ़ भाषाई सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

11.11 सारबिंदु

- हिंदी भाषा की ध्वन्यात्मक संरचना का विकास वैदिक संस्कृत की जटिलताओं से लेकर आधुनिक हिंदी की सहजता तक की एक वैज्ञानिक यात्रा है, जो हजारों वर्षों के भाषाई परिमार्जन का परिणाम है। इस विकासक्रम का मूल आधार यह है कि भाषा समय के साथ कठिनता से सरलता की ओर अग्रसर होती है जिसमें प्राचीन आर्य भाषाओं के संश्लिष्ट स्वरूप को प्राकृत और अपभ्रंश के सोपानों के माध्यम से विश्लेषणात्मक ढाँचे में ढाला गया है।
- ध्वन्यात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया में आगम, लोप और विपर्यय जैसे कारकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जहाँ उच्चारण की सुगमता के लिए ‘हस्त’ जैसे संयुक्त वर्ण ‘पूस्क दीर्घीकरण’ के सिद्धांत से ‘हाथ’ के रूप में सरल हो गए और ‘ऋ’ जैसे जटिल स्वरों का रूपांतरण सरल स्वर ध्वनियों में हो गया।
- संक्रान्ति-कालीन ध्वनि सामग्री ने अपभ्रंश और आधुनिक हिंदी के बीच एक भाषाई सेतु का कार्य किया, जिससे अन्त्य स्वरों का लोप होने लगा और हिंदी की प्रकृति वियोगात्मक एवं प्रवाहपूर्ण बन गई। हिंदी ध्वनियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण उच्चारण स्थान और प्रयत्न के आधार पर किया गया है, जो नागरी लिपि के सुव्यवस्थित ढाँचे के साथ मिलकर भाषा को तार्किक गरिमा प्रदान करता है।
- क्षेत्रीय स्तर पर ध्वन्यात्मक प्रवृत्तियों का वैविध्य अत्यंत स्पष्ट है, जहाँ ब्रजभाषा, बुंदेली और कन्नौजी जैसी बोलियाँ ‘ओ-कार’ बहुला लक्षणों से युक्त हैं, वहीं खड़ीबोली ‘आ-कार’ बहुला स्पष्टता का प्रतिनिधित्व करती है और पूर्वी तथा बिहारी उपभाषा समूहों में ‘इकारान्त’ रूपों की प्रधानता दिखाई देती है।
- व्यंजन-विन्यास में भी क्षेत्रीय रूपांतरण की सक्रियता देखी जाती है, जैसे पश्चिमी क्षेत्रों में ‘न’ का ‘ण’ होना या पूर्वी अंचलों में ‘ल’ का ‘र’ में बदल जाना, जो हिंदी के ध्वन्यात्मक कोश को बहुआयामी विस्तार देता है।
- लिपि और ध्वनि का अद्भुत समन्वय ही वह आधार है जिसने विविध आंचलिक प्रयोगों को एक सूत्र में पिरोकर हिंदी को विश्व-पटल पर एक परिष्कृत और वैज्ञानिक भाषा के रूप में स्थापित किया है।
- इस प्रकार, हिंदी का ध्वनि-तंत्र प्राचीन विरासत और आधुनिक सहजता का एक ऐसा

सामंजस्य है, जो निरंतर प्रवाहमान रहकर अपनी जीवंतता को बनाए हुए है।

दिए गए आलेख के आधार पर दीर्घ उत्तरीय और अति लघु उत्तरीय प्रश्न नीचे दिए गए हैं :

11.12 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

- बोध प्रश्न

(क) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न।

1. हिंदी ध्वनियों के ऐतिहासिक उद्भव और विकासक्रम की यात्रा को वैदिक संस्कृत से आधुनिक हिंदी तक स्पष्ट कीजिए।
2. ध्वन्यात्मक परिवर्तन की प्रमुख प्रक्रियाओं (आगम, लोप और विपर्यय) का उदाहरण सहित विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. उच्चारण स्थान और प्रयत्न के आधार पर हिंदी ध्वनियों के वैज्ञानिक वर्गीकरण का विस्तृत विवेचन कीजिए।
4. हिंदी की क्षेत्रीय ध्वन्यात्मक प्रवृत्तियों (ओ-कार, आ-कार और इकारान्त) का उपभाषाओं के संदर्भ में तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।

(ख) लघु उत्तरीय प्रश्न।

1. हिंदी ध्वनियों के विकास का मूल आधार क्या है?
2. 'पूरक दीर्घीकरण' के सिद्धांत के कारण 'हस्त' शब्द का आधुनिक हिंदी रूप क्या बना?
3. ब्रजभाषा और बुंदेली को किस प्रकार की बहुला प्रवृत्ति के अंतर्गत रखा जाता है?
4. खड़ीबोली (कौरवी) की प्रमुख ध्वन्यात्मक विशेषता क्या है?
5. बाह्य प्रयत्न के आधार पर ध्वनियों को किन दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जाता है?
6. संक्रान्ति-कालीन ध्वनि सामग्री किन दो भाषाई चरणों के बीच सेतु का कार्य करती है?

(ग) बहुविकल्पीय प्रश्न।

1. हिंदी ध्वनियों का मूल स्रोत किसे माना गया है?
(क) प्राकृत (ग) अपभ्रंश
(ख) वैदिक संस्कृत (घ) पालि
2. ध्वनियों के ऐतिहासिक विकास में कौन-सी प्रक्रिया प्रमुख नहीं है?
(क) आगम (ग) विपर्यय
(ख) लोप (घ) अनुवाद
3. 'आगम' का अर्थ क्या है?
(क) ध्वनि का लोप होना (ग) नई ध्वनि का जुड़ना
(ख) ध्वनि का स्थान बदलना (घ) शब्द का अर्थ बदलना
4. 'लोप' प्रक्रिया का क्या अर्थ है?
(क) ध्वनि का स्थान परिवर्तन (ग) ध्वनि का लुप्त होना
(ख) ध्वनि का जोड़ना (घ) ध्वनि का विस्तार

5. 'विपर्यय' किसे कहते हैं?
 (क) ध्वनि का जोड़ना (ग) ध्वनि का स्थान परिवर्तन
 (ख) ध्वनि का लोप (घ) ध्वनि का दीर्घ होना
6. 'हस्त' से 'हाथ' बनने में कौन-सी प्रक्रिया प्रमुख है?
 (क) आगम (ग) विपर्यय
 (ख) लोप (घ) अनुवाद
7. हिंदी ध्वनियों के विकास में सबसे निर्णायक काल कौन-सा रहा है?
 (क) वैदिक काल (ग) अपभ्रंश काल
 (ख) प्राकृत काल (घ) आधुनिक काल
8. 'ओ-कार' बहुला प्रवृत्ति किसमें पाई जाती है?
 (क) खड़ीबोली (ग) हरियाणवी
 (ख) ब्रजभाषा (घ) मानक हिंदी
9. 'इकारान्त' प्रवृत्ति मुख्यतः किन उपभाषाओं में मिलती है?
 (क) पश्चिमी हिंदी (ग) पूर्वी और बिहारी हिंदी
 (ख) राजस्थानी हिंदी (घ) पहाड़ी हिंदी
10. हिंदी ध्वनियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण किस आधार पर किया जाता है?
 (क) केवल अर्थ के आधार पर
 (ख) उच्चारण स्थान और प्रयत्न के आधार पर
 (ग) केवल व्याकरण के आधार पर
 (घ) केवल लिपि के आधार पर

उत्तर

1. ख, 2. घ, 3. ग, 4. ग, 5. ग, 6. ख, 7. ग, 8. ख, 9. ग, 10. ख

11.13 उपयोगी पाठ्यसामग्री

(क) उपयोगी ग्रंथ।

1. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. रामचंद्र वर्मा, भाषा और समाज, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज
3. प्रो। हेमदेव शर्मा, भाषा-विज्ञान समीक्षा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली
4. प्रो। योगेश चंद्र दुबे, भाषा विज्ञान की रूपरेखा, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली

(ख) वेब संदर्भ।

1. भारतवाणी (हिंदी भाषा संसाधन)
<https://bharatavani.in>
2. राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय (NDLI)
<https://ndl.iitkgp.ac.in>
3. UGC-NET हिंदी अध्ययन सामग्री
<https://ugcnetpaper1.com>

इकाई 12 शब्द साधन और शब्द रचना

रूपरेखा

- 12.1 उद्देश्य
- 12.2 प्रस्तावना
- 12.3 शब्द : परिभाषा और वर्गीकरण
- 12.4 शब्द साधन : अर्थ और स्वरूप
- 12.5 हिंदी शब्द रचना की प्रक्रियाएँ
- 12.6 हिंदी शब्द भंडार का ऐतिहासिक विकास (तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी)
- 12.7 परिवर्तन के कारण और दिशाएँ
- 12.8 सारबिंदु
- 12.9 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली
- 12.10 उपयोगी पाठ्यसामग्री

12.1 उद्देश्य

- इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –
- हिंदी शब्द रचना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और भारोपीय भाषा परिवार से आधुनिक हिंदी तक के क्रमिक विकास को समझ सकेंगे।
 - शब्द साधन के वैज्ञानिक स्वरूप और मूल धातुओं से अर्थवान पदों के निर्माण की प्रक्रिया का विश्लेषण कर सकेंगे।
 - हिंदी शब्द भंडार के चार प्रमुख स्तंभों - तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी-की पहचान और उनके भाषाई महत्व को आत्मसात कर सकेंगे।
 - शब्द निर्माण की प्रमुख विधियों जैसे उपसर्ग, प्रत्यय, संधि और समास के संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक भेदों को स्पष्ट कर सकेंगे।

12.2 प्रस्तावना

हिंदी भाषा के ऐतिहासिक विकास और उसकी शब्द संरचना का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट होता है कि शब्द साधन और शब्द रचना की प्रक्रियाएँ किसी भी भाषा की जीवंतता और उसकी सांस्कृतिक यात्रा की परिचायक होती हैं। हिंदी का शब्द-संसार केवल व्याकरणिक नियमों का समुच्चय मात्र नहीं है, बल्कि यह भारोपीय भाषा परिवार की उस सुदीर्घ और जटिल विकास-यात्रा का परिणाम है जो प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाओं से आरंभ होकर मध्यकालीन सोपानों-पालि, प्राकृत और अपभ्रंश-से गुजरती हुई अपने आधुनिक स्वरूप तक पहुँची है। शब्द साधन के अंतर्गत जब हम पदों और रूपों का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं तो ऐतिहासिक और तुलनात्मक पद्धति हमें यह समझने में सहायता करती है कि हिंदी ने अपनी अधिकांश शब्द-संपदा और रूपात्मक संरचना को एक लंबी भाषाई विरासत के रूप में प्राप्त किया है। एक गंभीर अध्येता के लिए यह जानना अत्यंत आवश्यक है कि शब्द रचना की प्रक्रिया में 'ध्वनि-परिवर्तन' और 'स्वराघात' जैसे तत्व किस प्रकार आधारभूत कार्य करते हैं; उदाहरणस्वरूप प्राचीन आर्य-भाषा के तत्सम शब्दों का तद्भव रूपों में रूपांतरण कोई आकस्मिक घटना नहीं, बल्कि एक निश्चित भाषा-वैज्ञानिक क्रमिक विकास का प्रतिफल है। इस विकास क्रम में खड़ीबोली, जिसे नागरी-हिंदी का आधार माना जाता है, के अंतर्संबंधों को ब्रज, अवधी और भोजपुरी जैसी समृद्ध बोलियों के साथ जोड़कर देखना अनिवार्य है,

क्योंकि इन्हीं के आपसी समन्वय से हिंदी की शब्द रचना का धरातल इतना व्यापक और समावेशी बन सका है। शब्द-गठन की इस वैज्ञानिक प्रक्रिया को वैश्विक परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए संस्कृत के साथ-साथ अन्य प्राचीन भारोपीय भाषाओं के साक्ष्यों का अध्ययन भी भाषा-वैज्ञानिक शोध को एक नई दृष्टि और प्रमाणिकता प्रदान करता है।

शब्द रचना के व्यावहारिक और कार्यात्मक धरातल पर विचार करें तो ‘प्रत्यय विज्ञान’ को हिंदी की रचनात्मक मौलिकता का केंद्र बिंदु माना जा सकता है, जहाँ कृदंत और तद्धित प्रत्ययों के माध्यम से संज्ञा, सर्वनाम और क्रिया रूपों के ऐतिहासिक विकास का सूक्ष्म विवेचन अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। हिंदी शब्द-भंडार की असीम समृद्धि का वास्तविक रहस्य उसकी अद्भुत ग्रहणशीलता में निहित है, जहाँ तत्सम और तद्भव शब्दों के साथ-साथ अरबी, फारसी और अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषाओं के शब्द भी हिंदी की अपनी प्रकृति और ध्वन्यात्मक सांचे के अनुकूल ढलकर इसके अभिन्न अंग बन गए हैं। शब्द साधन की इस निरंतर चलने वाली प्रक्रिया में ‘अपश्रुति’ और स्वर-परिवर्तन के नियमों का गहरा प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, जो एक ही मूल धातु से अनेक अर्थवान शब्दों और व्याकरणिक रूपों के निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं। यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण विद्यार्थियों को यह बोध कराता है कि व्याकरण केवल जड़ नियमों का संकलन नहीं, बल्कि एक गतिशील विकासवादी प्रक्रिया है, जहाँ ऐतिहासिक साक्ष्य भाषा की आंतरिक अस्मिता को प्रमाणित करते हैं। इस विषय का गहन अध्ययन शोधार्थियों को उस भाषाई प्रवाह से जोड़ता है, जहाँ एक ओर प्राचीन भाषाओं की संरचनात्मक मर्यादा सुरक्षित है तो दूसरी ओर लोक-भाषाओं का जीवंत और ऊर्जावान प्रवाह भी पूरी तरह समाहित है।

12.3 शब्द : परिभाषा और वर्गीकरण

भाषा-विज्ञान के गहन परिप्रेक्ष्य में ‘शब्द’ को अर्थ की वह लघुतम स्वतंत्र इकाई माना जाता है जो निश्चित ध्वनियों के सार्थक विन्यास से निर्मित होती है। ऐतिहासिक दृष्टि से शब्द मात्र वर्णों का समूह नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत भाषिक सत्ता है जो सदियों की सांस्कृतिक यात्रा और वैचारिक परिवर्तनों को अपने भीतर समाहित किए रहती है। शब्द की परिभाषा को उसके ‘रूप’ और ‘अर्थ’ के अटूट संबंध के धरातल पर समझा जाना चाहिए, जहाँ ध्वनि समूह एक सुनिश्चित क्रम में संगठित होकर किसी विशिष्ट विचार, भाव या वस्तु का बोध कराते हैं। उच्चतर अकादमिक स्तर पर शब्द को ‘पद’ से भिन्न करके देखना अनिवार्य हो जाता है। जब तक कोई इकाई शब्दकोश तक सीमित रहती है, वह शब्द कहलाती है, किंतु जैसे ही वह व्याकरणिक प्रत्ययों के साथ अनुशासित होकर वाक्य का अंग बनती है, वह ‘पद’ का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। हिंदी जैसी समृद्ध भाषा में शब्दों का मूल आधार भारोपीय भाषा परिवार की उन आदिम धातुओं में निहित है जो समय के अंतराल में ध्वनि-परिवर्तन के जटिल नियमों, जैसे कि स्वर-परिवर्तन और स्वराघात के प्रभावों से निरंतर परिष्कृत होकर नए रूपों में विकसित हुई हैं। अतः शब्द की वैज्ञानिक परिभाषा वही है जो उसके ध्वन्यात्मक ढांचे और अर्थपरक चेतना, दोनों का ऐतिहासिक विश्लेषण करने में सक्षम हो।

शब्दों के वर्गीकरण का सबसे महत्वपूर्ण और प्राचीन आधार ‘स्रोत या इतिहास’ है, जो हिंदी की विकासवादी यात्रा के विभिन्न पड़ावों को उजागर करता है। इस आधार पर शब्दों को प्रमुखतः चार श्रेणियों - तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी-में विभाजित किया गया है। ‘तत्सम’ वे शब्द हैं जो प्राचीन संस्कृत से बिना किसी रूप-परिवर्तन के सीधे हिंदी में आए हैं, जबकि ‘तद्भव’ वे शब्द हैं जो पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के विकासवादी सोपानों से गुजरते हुए और ध्वनि-नियमों के प्रभाव से घिसकर आधुनिक रूप में हिंदी में समाहित हुए हैं। हिंदी की वास्तविक प्रकृति और उसकी मौलिक मिठास उसके तद्भव शब्दों

में ही निहित मानी जाती है जो समीकरण और वर्ण-विपर्यय जैसे वैज्ञानिक नियमों के माध्यम से विकसित हुए हैं। 'देशज' श्रेणी में वे शब्द आते हैं जिनका मूल स्रोत किसी प्राचीन शास्त्र में नहीं मिलता, बल्कि वे स्थानीय बोलियों, लोक-संस्कृति या जन-सामान्य की आवश्यकता से स्वतः उपजे हैं। इसके विपरीत, 'विदेशी' या 'आगत' शब्दों के अंतर्गत अरबी, फारसी, तुर्की और अंग्रेजी जैसी भाषाओं के वे शब्द सम्मिलित हैं, जिन्हें हिंदी ने अपनी लचीली प्रकृति के कारण न केवल अपनाया, बल्कि अपनी ध्वन्यात्मक शैली के अनुरूप ढाल भी लिया है। यह व्यापक वर्गीकरण प्रमाणित करता है कि हिंदी एक अत्यंत उदार और समावेशी भाषा है, जिसने वैश्विक संपर्कों के माध्यम से अपने भंडार को निरंतर समृद्ध किया है।

वर्गीकरण का एक अन्य अनिवार्य स्तंभ 'रचना' और 'प्रयोग' का आधार है, जो शब्द की आंतरिक संरचना और वाक्य में उसकी प्रकार्यात्मक भूमिका को स्पष्ट करता है। रचना के आधार पर शब्दों को रुढ़, यौगिक और योगरुढ़ श्रेणियों में विभक्त किया जाता है, जहाँ यौगिक शब्दों का निर्माण मुख्य रूप से उपसर्ग, प्रत्यय और समास जैसी विधियों के माध्यम से होता है। ऐतिहासिक व्याकरण के सिद्धांतों के अनुसार हिंदी में प्रत्यय विज्ञान शब्द रचना का सर्वाधिक सशक्त माध्यम रहा है, जिसने मूल धातुओं से संज्ञा, विशेषण और क्रिया रूपों का एक अनंत संसार सृजित किया है। प्रयोग के आधार पर शब्दों को विकारी (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया) और अविकारी (अव्यय) श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है। विकारी शब्दों में लिंग, वचन और कारक के प्रभाव से उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों का मूल आधार प्राकृत और अपभ्रंश की विभक्ति-रहित प्रवृत्तियों के क्रमिक विकास में देखा जा सकता है।

12.4 शब्द साधन : अर्थ और स्वरूप

ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान और संरचनात्मक व्याकरण के गहन परिप्रेक्ष्य में 'शब्द साधन' का अर्थ और स्वरूप अत्यंत व्यापक एवं बहुआयामी है। अकादमिक जगत में शब्द साधन, जिसे 'रूप विज्ञान' या 'पद विज्ञान' भी कहा जाता है, मूलतः शब्दों की आंतरिक बनावट और उनके रूपात्मक परिवर्तनों का वैज्ञानिक और तार्किक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसका प्राथमिक कार्य यह विश्लेषण करना है कि किसी भाषा के भीतर अर्थपूर्ण लघुतम इकाइयाँ, जिन्हें रूपिम कहा जाता है, किस प्रकार परस्पर संबद्ध होकर नए शब्दों का निर्माण करती हैं और विभिन्न व्याकरणिक कोटियों के अनुशासन में उनमें किस तरह के विकार या परिवर्तन उत्पन्न होते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से हिंदी का शब्द साधन अपनी पूर्ववर्ती आर्य-भाषाओं-संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश की अत्यंत जटिल और संश्लिष्ट संरचनाओं के निरंतर सरलीकरण और विकास की एक सुदीर्घ प्रक्रिया का परिणाम माना जाता है। भाषा-विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए यह समझना अनिवार्य है कि शब्द साधन केवल शब्दों को गढ़ने की कोई यांत्रिक विधि मात्र नहीं है। यह उस संपूर्ण भाषिक तंत्र का सूक्ष्म अध्ययन है जिसके माध्यम से कोई भी भाषा अपने सीमित ध्वन्यात्मक संसाधनों का कुशलतापूर्वक प्रयोग कर अनंत वैचारिक अर्थों और भावों को अभिव्यक्त करने की अद्भुत सामर्थ्य प्राप्त करती है। शब्द साधन के वास्तविक स्वरूप को गहराई से समझने के लिए इसे दो प्रमुख पक्षों - 'रूपात्मक संरचना' और 'प्रकार्यात्मक भूमिका' - में विभाजित कर विश्लेषण किया जा सकता है। रूपात्मक पक्ष के अंतर्गत हम शब्द के मूल स्वरूप, जिसे धातु या प्रातिपदिक (Root) कहा जाता है और उसके साथ संयोजित होने वाले विभिन्न साधक तत्वों, जैसे उपसर्गों और प्रत्ययों का ऐतिहासिक और वैज्ञानिक अन्वेषण करते हैं। ऐतिहासिक व्याकरण के सिद्धांतों के अनुसार हिंदी ने अपनी विकास-यात्रा के दौरान शब्द रचना में 'विद्योगात्मक' प्रवृत्ति को प्रमुखता से अपनाया है, जिसके परिणामस्वरूप प्राचीन आर्य-भाषाओं की जटिल और परस्पर गुंथी हुई विभक्तियों के स्थान पर स्वतंत्र परसर्गों और सहायक क्रियाओं का प्रयोग निरंतर

बढ़ता गया है। स्वरूप के इसी विवेचन क्रम में ‘ध्वनि-परिवर्तन’ एक अनिवार्य और निर्णायक कारक के रूप में उभरता है, जहाँ स्वराघात और विशिष्ट स्वर-परिवर्तन के नियमों के प्रभाववश मूल शब्दों के रूप कालांतर में परिवर्तित होकर नए भाषाई रूपों में ढल जाते हैं। यह पूरी प्रक्रिया इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि शब्द साधन का स्वरूप अत्यंत गतिशील और परिवर्तनशील है जो सदैव ध्वन्यात्मक सुगमता, उच्चारण की सरलता और अर्थ की स्पष्टता के शाश्वत सिद्धांतों पर आधारित होकर कार्य करता है।

शब्द साधन के अर्थ को और अधिक विस्तार देते हुए इसके अंतर्गत ‘प्रत्यय विज्ञान’ की आधारभूत भूमिका को रेखांकित करना अत्यंत आवश्यक है। हिंदी भाषा के संदर्भ में प्रत्यय केवल शब्द के अंत में जुड़ने वाले निष्प्राण शब्दांश मात्र नहीं हैं, वे शब्द के व्याकरणिक चरित्र, उसकी जाति और उसकी कार्यात्मक क्षमता को निर्धारित करने वाले प्रमुख साधन और नियामक तत्व हैं। इन प्रत्ययों के ही कुशल माध्यम से मूल धातुओं से संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया जैसे विभिन्न शब्द-भेदों और उनकी अनेक उप-श्रेणियों की विशाल रचना संभव हो पाती है। तुलनात्मक पद्धति से किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि आधुनिक हिंदी के अधिकांश प्रत्यय वास्तव में प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाओं के घिसे हुए या रूपांतरित रूप हैं, जो दीर्घकालीन विकासक्रम में अपनी मूल स्वतंत्र सत्ता को खोकर अब केवल सहायक रूपात्मक तत्वों के रूप में ही अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। यहाँ शब्द साधन का अर्थ व्यापक ‘व्युत्पत्ति’ शास्त्र से भी घनिष्ठ रूप से जुड़ जाता है जहाँ एक निष्ठावान शोधार्थी किसी शब्द के आदिम भारोपीय रूप से लेकर उसके वर्तमान आधुनिक स्वरूप तक की ऐतिहासिक यात्रा का ठोस भाषा-वैज्ञानिक साक्ष्यों और तुलनात्मक प्रमाणों के आधार पर व्यवस्थित अन्वेषण करता है। शब्द साधन की इस विस्तृत प्रक्रिया में शब्दों के आंतरिक संगठन और उनकी बाहरी व्याकरणिक व्यवस्था का समन्वय भी उतना ही महत्वपूर्ण है। जब हम शब्द रचना की बात करते हैं तो इसमें संधि, समास और उपसर्गों के योग से होने वाले अर्थ-विस्तार का भी समावेश होता है। ऐतिहासिक व्याकरण यह दर्शाता है कि हिंदी ने जहाँ एक ओर अपनी मूल संस्कृत विरासत से तत्सम रूपों को ग्रहण कर अपनी शास्त्रीय गरिमा को अक्षुण्ण रखा है, वहीं दूसरी ओर तद्भव रूपों के सहज विकास और देशज एवं विदेशी शब्दों के सफल अनुकूलन के माध्यम से अपनी संरचनात्मक विविधता और लचीलेपन को भी निरंतर समृद्ध किया है। यह संरचनात्मक विविधता ही हिंदी के शब्द साधन को एक वैश्विक चरित्र प्रदान करती है जहाँ यह एक ओर अत्यंत प्राचीन भारोपीय जड़ों से जुड़ी है और दूसरी ओर आधुनिक युग की नई आवश्यकताओं के अनुरूप नए शब्दों को आत्मसात करने की अपनी स्वाभाविक क्षमता को भी बनाए हुए है।

12.5 हिंदी शब्द रचना की प्रक्रियाएँ

हिंदी भाषा की ऐतिहासिक विकास यात्रा और उसकी आंतरिक संरचनात्मक बुनावट के आलोक में ‘शब्द रचना की प्रक्रियाओं’ का अनुशीलन भाषा-विज्ञान का एक अत्यंत आधारभूत स्तंभ है। शब्द रचना वह वैज्ञानिक और तार्किक पद्धति है जिसके माध्यम से कोई भी समृद्ध भाषा अपनी मूल धातुओं और प्राथमिक आधारभूत शब्दों में विभिन्न भाषिक अवयवों का कुशलतापूर्वक संयोजन कर नवीन अर्थवान शब्दों का निरंतर सृजन करती है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि हिंदी ने अपनी शब्द रचना की मौलिक प्रवृत्तियाँ प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाओं की सुदृढ़ परंपरा से विरासत में प्राप्त की हैं, जिनमें समय के प्रवाह के साथ ध्वन्यात्मक सरलीकरण और वियोगात्मकता का समावेश होता गया है। यह समझना अनिवार्य है कि हिंदी की शब्द रचना प्रणाली केवल अक्षरों का कोई यांत्रिक मेल मात्र नहीं है, बल्कि यह ध्वनि-विज्ञान, अर्थ-विज्ञान और सुस्पष्ट व्याकरणिक नियमों का एक अत्यंत संतुलित और वैज्ञानिक समन्वय है। इस रचनात्मक प्रक्रिया में मुख्य रूप से चार आधारभूत

स्तंभ - उपसर्ग, प्रत्यय, समास और संधि कार्य करते हैं, जो सामूहिक रूप से हिंदी के शब्द-भंडार को न केवल विस्तार प्रदान करते हैं, बल्कि उसे वैचारिक गहराई और अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता भी देते हैं।

उपसर्ग

शब्द रचना की प्रक्रिया में उपसर्ग उन महत्वपूर्ण शब्दांशों को कहा जाता है जो किसी मूल शब्द या धातु के पूर्व जुड़कर उसके अर्थ में विशिष्ट परिवर्तन, नवीनता या अर्थगत विशेषता उत्पन्न कर देते हैं। ऐतिहासिक व्याकरण के वैज्ञानिक साक्ष्यों के अनुसार हिंदी में मुख्य रूप से तीन प्रकार के उपसर्गों का प्रयोग उसकी शब्द-शक्ति को बहुगुणित करता है- संस्कृत (तत्सम), हिंदी (तद्भव) और विदेशी या आगत उपसर्ग। तत्सम उपसर्ग सीधे प्राचीन संस्कृत की शास्त्रीय परंपरा से ग्रहण किए गए हैं, जैसे 'प्र', 'वि', 'अनु', 'परि' आदि जो मूल शब्द के अर्थ को पूर्णतः रूपांतरित करने की क्षमता रखते हैं (जैसे 'हार' शब्द में 'प्र' उपसर्ग के योग से 'प्रहार' और 'वि' के योग से 'विहार' जैसे नितान्त भिन्न अर्थों वाले शब्दों का निर्माण होता है)। तद्भव उपसर्ग वे हैं जो प्राकृत और अपभ्रंश के भाषाई विकास सोपानों से गुजरते हुए विकसित हुए हैं, जैसे 'अध' (अधखिला) या 'अन' (अनपढ़)। इसके अतिरिक्त अरबी-फारसी और अंग्रेजी के दीर्घकालीन संपर्क के परिणामस्वरूप 'ला', 'बे', 'बद', 'ना' और 'डिप्टी' जैसे उपसर्गों ने भी हिंदी की शब्द रचना प्रणाली में अपनी गहरी पैठ बना ली है। उपसर्गों का यह अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि कैसे एक ही मूल शब्द विभिन्न पूर्व-प्रत्ययों के मेल से अर्थ की अनेक सूक्ष्म छटाओं और विविधताओं को अभिव्यक्त करने में सक्षम हो जाता है।

प्रत्यय

हिंदी शब्द रचना की संपूर्ण प्रक्रिया में प्रत्ययों की भूमिका सर्वाधिक व्यापक, गतिशील और आधारभूत मानी जाती है। प्रत्यय वास्तव में वे शब्दांश हैं जो स्वतंत्र शब्दों या धातुओं के अंत में जुड़कर न केवल नए शब्दों का निर्माण करते हैं, बल्कि उनके व्याकरणिक स्वरूप और श्रेणी को भी निर्धारित करते हैं। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रत्यय विज्ञान को हिंदी के भाषिक विकास का मुख्य प्रेरक तत्व माना गया है जहाँ प्रत्ययों को उनकी प्रकृति और कार्य के आधार पर दो मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया जाता है - कृदंत और तद्धित। कृदंत प्रत्यय सीधे क्रिया के मूल रूप या धातु के अंत में जुड़कर संज्ञा, विशेषण या अव्यय शब्द बनाते हैं (जैसे 'पढ़' धातु में 'आकू' के योग से 'पढ़ाकू' विशेषण का निर्माण), जबकि तद्धित प्रत्यय संज्ञा, सर्वनाम या विशेषण के अंत में जुड़कर नवीन शब्द रचते हैं (जैसे 'मानव' में 'ता' के योग से 'मानवता' भाववाचक संज्ञा का निर्माण)। तुलनात्मक भाषा-वैज्ञानिक पद्धति से यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि आधुनिक हिंदी के अनेक प्रत्यय वास्तव में प्राचीन संस्कृत की विभक्ति-प्रणालियों के घिसे हुए या रूपांतरित रूप हैं जिन्होंने वर्तमान हिंदी में अपनी स्वतंत्र और सशक्त पहचान स्थापित कर ली है। प्रत्यय विज्ञान का यह सूक्ष्म विवेचन यह दर्शाता है कि कैसे भाषा लिंग, वचन, कारक और काल के अनुसार अपने रूपों को निरंतर विस्तार और लचीलापन प्रदान करती है।

समास

समास वह विशिष्ट भाषिक प्रक्रिया है जिसमें दो या दो से अधिक स्वतंत्र अर्थ रखने वाले शब्दों को मिलाकर एक नया संक्षिप्त, सुगठित और प्रभावशाली शब्द निर्मित किया जाता है। हिंदी की समास प्रक्रिया मुख्य रूप से अर्थ की सघनता और अभिव्यक्ति की मितव्ययिता के सिद्धांत पर आधारित है। ऐतिहासिक दृष्टि से हिंदी ने संस्कृत के समासीकरण की शास्त्रीय पद्धति को आत्मसात किया है, किंतु अपनी लोक-प्रकृति के अनुरूप उसमें सहजता और सरलता

का समावेश भी किया है। अव्ययीभाव, तत्पुरुष, द्वंद्व, बहुव्रीहि, द्विगु और कर्मधारय जैसे समासों के विविध रूपों के माध्यम से हिंदी ने अपनी शब्द-सृजन शक्ति को अपूर्व रूप से बहुगुणित किया है। उदाहरणस्वरूप 'राजा का पुत्र' जैसे लंबे पदबंध के स्थान पर 'राजपुत्र' कहना न केवल भाषाई संक्षिप्तता का परिचायक है, बल्कि यह शब्द के अर्थ को एक विशिष्ट सामाजिक और ऐतिहासिक गरिमा भी प्रदान करता है। ऐतिहासिक विश्लेषण के अनुसार हिंदी में तद्भव समासों की प्रधानता भी निरंतर बढ़ी है, जहाँ संधि के अत्यंत जटिल और क्लिष्ट नियमों के बिना भी दो स्वतंत्र शब्दों का मेल सुगमता और प्रवाह के साथ हो जाता है, जो हिंदी की लोक-भाषा के रूप में सहज स्वीकार्यता और उसकी प्राणवान प्रकृति का जीवंत प्रमाण है।

संधि

शब्द रचना की चौथी और तकनीकी रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण प्रक्रिया संधि है जिसमें दो निकटवर्ती ध्वनियों या वर्णों के अत्यंत पास आने के कारण उनके मेल से एक नया ध्वन्यात्मक विकार या परिवर्तन उत्पन्न होता है। यद्यपि संधि के शास्त्रीय नियमों का प्रयोग तत्सम शब्दों के गठन में अधिक प्रभावी और अनिवार्य रूप से दिखाई देता है, तथापि हिंदी की अपनी आंतरिक ध्वनि-प्रवृत्तियों के कारण तद्भव संधि के नियम भी विकसित हुए हैं जो लोक-उच्चारण के निकट हैं। स्वर संधि, व्यंजन संधि और विसर्ग संधि के वैज्ञानिक वर्गीकरण के माध्यम से शब्दों का गठन एक सुस्पष्ट ध्वन्यात्मक पद्धति पर आधारित होता है। ऐतिहासिक व्याकरण यह स्पष्ट करता है कि संधि केवल वर्णों का यांत्रिक मेल नहीं है, बल्कि यह मानव उच्चारण की स्वाभाविक सुविधा और ध्वन्यात्मक सामंजस्य की एक सुव्यवस्थित प्रक्रिया है। हिंदी की 'नागरी' प्रकृति में संधि के ये नियम शब्दों को एक सुगठित, संक्षिप्त और ध्वन्यात्मक रूप से मधुर स्वरूप प्रदान करते हैं, जिससे भाषा का प्रवाह, गतिशीलता और सौंदर्य निरंतर बना रहता है।

12.6 हिंदी शब्द भंडार का ऐतिहासिक विकास (तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी)

हिंदी भाषा के शब्द भंडार का ऐतिहासिक विकास भारतीय उपमहाद्वीप की हजारों वर्षों की भाषाई, सांस्कृतिक और राजनीतिक उथल-पुथल का जीवंत दस्तावेज़ है। हिंदी का शब्द संसार केवल एक भाषा की शब्दावली मात्र नहीं है, बल्कि यह भारोपीय भाषा परिवार की उस सुदीर्घ यात्रा का प्रतिफल है जो प्राचीन आर्य-भाषाओं से आरंभ होकर आधुनिक जनभाषाओं तक पहुँची है। ऐतिहासिक दृष्टि से हिंदी शब्द भंडार का मूलधार प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा (संस्कृत) है, किंतु इसका वर्तमान स्वरूप पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के क्रमिक विकास और सरलीकरण की प्रक्रियाओं से निर्मित हुआ है। शब्द भंडार के इस विकास को वैज्ञानिक रूप से समझने के लिए विद्वानों ने इसे चार मुख्य श्रेणियों - तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी में वर्गीकृत किया है, जो हिंदी की ग्रहणशीलता और उसकी ऐतिहासिक जड़ों की गहराई को प्रमाणित करते हैं। यह वर्गीकरण दर्शाता है कि हिंदी ने जहाँ अपनी शास्त्रीय विरासत को सुरक्षित रखा है, वहीं लोक-जीवन और विदेशी संपर्कों से प्राप्त तत्वों को भी अपनी प्रकृति के अनुकूल ढालकर स्वयं को निरंतर समृद्ध किया है।

तत्सम और तद्भव शब्द हिंदी की शब्द-संपदा के दो सबसे महत्वपूर्ण और आधारभूत स्तंभ हैं, जो भाषा की ऐतिहासिक निरंतरता को स्पष्ट करते हैं। 'तत्सम' (तत्+सम अर्थात् उसके समान) वे शब्द हैं जो संस्कृत से बिना किसी ध्वन्यात्मक परिवर्तन के सीधे हिंदी में ग्रहण किए गए हैं, जो भाषा को शास्त्रीय गरिमा और वैचारिक स्पष्टता प्रदान करते हैं। इसके विपरीत 'तद्भव' (तत्+भव अर्थात् उससे उत्पन्न) वे शब्द हैं जो संस्कृत की मूल धातुओं से निकले तो हैं, किंतु पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के भाषाई सोपानों से गुजरते हुए और ध्वनि-परिवर्तन के नियमों (जैसे स्वर-परिवर्तन और स्वराघात) के प्रभाववश अपने रूप को बदलकर हिंदी में

आए हैं। हिंदी का वास्तविक प्राण और उसका लोक-पक्ष इन्हीं तद्भव शब्दों में निहित है, जो 'अग्नि' से 'आग' और 'हस्त' से 'हाथ' जैसी विकासवादी यात्रा का परिणाम हैं। यह प्रक्रिया सिद्ध करती है कि हिंदी ने संस्कृत की तत्सम परंपरा से जहाँ बौद्धिक संपदा प्राप्त की, वहीं तद्भव रूपों के माध्यम से जन-सामान्य की अभिव्यक्ति को सहज और सुगम बनाया है।

देशज शब्दों का अध्ययन हिंदी की शब्द रचना के उस पक्ष को उजागर करता है जो स्थानीय बोलियों और लोक-अनुभवों से गहराई तक जुड़ा हुआ है। 'देशज' शब्द वे हैं जिनका कोई स्पष्ट स्रोत प्राचीन संस्कृत या भारोपीय धातुओं में नहीं मिलता, बल्कि वे भारतीय जन-जीवन की आवश्यकताओं, ध्वन्यात्मक अनुकरणों और स्थानीय संस्कृतियों के मेल से स्वतः उपजे हैं। ये शब्द हिंदी की मौलिकता और उसकी मिट्टी की सुगंध को अभिव्यक्त करते हैं, जैसे 'लोटा', 'पगड़ी' या 'खिड़की' जैसे शब्द जो किसी शास्त्रीय परंपरा के बजाय लोक-व्यवहार की उपज हैं। हिंदी की विभिन्न बोलियों, जैसे ब्रज, अवधी, भोजपुरी और मैथिली ने अपने-अपने अंचलों से ऐसे अनगिनत शब्द मुख्य धारा की हिंदी को दिए हैं, जिससे इसकी अभिव्यंजना शक्ति में अपूर्व वृद्धि हुई है। देशज शब्दावली का यह समावेश प्रमाणित करता है कि हिंदी एक केवल किताबी भाषा नहीं रही है, बल्कि इसने सदैव अपने परिवेश और लोक-संस्कृति के साथ जीवंत संवाद बनाए रखा है। विदेशी या 'आगत' शब्दों का हिंदी शब्द भंडार में समावेश भारत के दीर्घकालीन राजनीतिक संपर्कों और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का परिणाम है। इतिहास की विभिन्न अवधियों में अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी, पुर्तगाली और फ्रांसीसी जैसी भाषाओं के शब्द हिंदी में इस प्रकार घुल-मिल गए हैं कि आज उन्हें अलग करना कठिन प्रतीत होता है। हिंदी की यह अद्भुत विशेषता रही है कि उसने इन विदेशी शब्दों को केवल अपनाया ही नहीं, बल्कि उन्हें अपनी ध्वन्यात्मक प्रकृति और व्याकरणिक सांचे के अनुकूल पूरी तरह ढाल लिया है। फारसी और अरबी के प्रभाव से जहाँ प्रशासन, न्याय और साहित्य के क्षेत्र में नवीन शब्दावली आई, वहीं अंग्रेजी के संपर्क ने तकनीकी और आधुनिक प्रशासनिक क्षेत्रों में हिंदी को नए आयाम दिए हैं। विदेशी शब्दावली का यह व्यापक विस्तार हिंदी की उस लचीली और समावेशी प्रकृति का परिचायक है, जो इसे एक वैश्विक और गतिशील भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

12.7 परिवर्तन के कारण और दिशाएँ

ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान के सिद्धांतों और हिंदी के विकासवादी क्रम के आलोक में भाषा में होने वाले परिवर्तनों के कारण और उनकी दिशाओं का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है। किसी भी जीवंत भाषा की शब्द संरचना और व्याकरणिक स्वरूप समय के साथ स्थिर नहीं रहते, बल्कि वे निरंतर विकासशील होते हैं। इस परिवर्तन का सबसे प्रमुख और आधारभूत कारण 'मुख-सुख' या 'प्रयत्न-लाघव' की मानवीय प्रवृत्ति है, जिसके तहत वक्ता कठिन और क्लिष्ट ध्वनियों के स्थान पर सरल और सुगम उच्चारण को प्राथमिकता देता है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा (संस्कृत) की संयुक्त ध्वनियों का मध्यकालीन आर्य-भाषाओं (प्राकृत और अपभ्रंश) के माध्यम से आधुनिक हिंदी के तद्भव रूपों में रूपांतरित होना इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। भौगोलिक पृथकता, सामाजिक-राजनीतिक उथल-पुथल और विभिन्न संस्कृतियों का परस्पर संपर्क भी भाषा की आंतरिक संरचना में परिवर्तन लाने के सशक्त बाह्य कारण सिद्ध हुए हैं। जब दो भिन्न भाषा-भाषी समूह आपस में मिलते हैं तो शब्दों के आदान-प्रदान के साथ-साथ उनके ध्वन्यात्मक साँचों में भी अनचाहे बदलाव आने लगते हैं जो कालांतर में भाषा की नई शब्द रचना प्रणालियों को जन्म देते हैं।

परिवर्तन की दिशाओं पर विचार करें तो भाषा का विकास सदैव 'जटिलता से सरलता' और 'संश्लिष्टता से विश्लिष्टता' की ओर होता है। प्राचीन भाषाओं की जो रूपात्मक जटिलता

और विभक्ति-प्रधान प्रवृत्तियाँ थीं, वे हिंदी तक आते-आते वियोगात्मक हो गई हैं, जहाँ स्वतंत्र परसर्गों और सहायक क्रियाओं का महत्व बढ़ गया है। ध्वनि-परिवर्तन के क्षेत्र में यह दिशा प्रायः घोषीकरण, अल्पप्राणीकरण और स्वर-लोप जैसे नियमों के माध्यम से स्पष्ट होती है। उदाहरणस्वरूप स्वराघात के कारण किसी शब्द के एक विशेष खंड पर अधिक बल देने से उसके शेष खंडों का लोप हो जाता है या वे घिसकर छोटे हो जाते हैं, जो शब्द रचना की एक निश्चित दिशा को इंगित करते हैं। अर्थ के धरातल पर भी परिवर्तन की दिशाएँ स्पष्ट देखी जा सकती हैं, जहाँ शब्दों का ‘अर्थ-विस्तार’, ‘अर्थ-संकोच’ या ‘अर्थ-आदेश’ होता है। कई बार एक विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होने वाला शब्द समय के साथ व्यापक अर्थ ग्रहण कर लेता है, तो कभी उसका अर्थ अत्यंत सीमित दायरे में सिमट जाता है, जो सामाजिक मानस के परिवर्तन की दिशा का परिचायक है। परिवर्तन की ये प्रक्रियाएँ अनियंत्रित नहीं, बल्कि वैज्ञानिक और भाषा-वैज्ञानिक नियमों के अधीन होती हैं। शब्द साधन और शब्द रचना के संदर्भ में भारोपीय भाषा परिवार की मूल धातुओं का जो विकास आधुनिक हिंदी तक पहुँचा है, उसमें तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग कर हम परिवर्तन के इन सूत्रों को स्पष्ट रूप से खोज सकते हैं। हिंदी की ‘नागरी’ प्रकृति ने जहाँ संस्कृत के तत्सम रूपों को अपनी मर्यादा के रूप में सुरक्षित रखा है, वहीं तद्भव रूपों के माध्यम से परिवर्तन की उस सहज धारा को भी अपनाया है जो लोक-प्रवाह का अंग है। विदेशी शब्दावली का हिंदीकरण भी परिवर्तन की एक महत्वपूर्ण दिशा है, जहाँ विदेशी ध्वनियों को हिंदी के उच्चारण तंत्र के अनुरूप ढाल लिया गया है।

12.8 सारबिंदु

‘शब्द साधन और शब्द रचना’ के भाषाई तंत्र का पुनरावलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि हिंदी की शब्द-शक्ति इसके ऐतिहासिक सातत्य और वैज्ञानिक रूपात्मकता के समन्वय पर टिकी है। शब्द साधन मूलतः उन व्याकरणिक प्रक्रियाओं का अन्वेषण है, जिनके माध्यम से भाषा अपनी मूल धातुओं को ‘पद’ के रूप में रूपांतरित कर वाक्य प्रयोग के योग्य बनाती है। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर यह प्रक्रिया प्राचीन भारोपीय जड़ों से आरंभ होकर आधुनिक काल की वियोगात्मक प्रवृत्तियों तक विस्तृत है। शब्द रचना के व्यावहारिक पक्ष में उपसर्ग, प्रत्यय, समास और संधि का योगदान केवल व्याकरणिक न होकर अर्थगत विस्तार प्रदान करने वाला है। जहाँ उपसर्ग शब्द के पूर्व में लगकर उसके अर्थ की दिशा बदल देते हैं, वहीं प्रत्यय विज्ञान हिंदी के संज्ञा और क्रिया रूपों के विकास का मुख्य आधार सिद्ध हुआ है। संधि और समास की प्रक्रियाएँ भाषा में ध्वन्यात्मक सामंजस्य और संक्षिप्तता लाती हैं, जिससे अभिव्यक्ति अधिक प्रभावी और सुगठित हो जाती है। हिंदी शब्द भंडार का ऐतिहासिक वर्गीकरण- तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी-इसकी अद्भुत ग्रहणशीलता का प्रमाण है। तत्सम शब्दों ने जहाँ भाषा को वैचारिक और शास्त्रीय आधार प्रदान किया, वहीं तद्भव शब्दों ने ध्वनि-परिवर्तन के नियमों के माध्यम से इसे जन-सामान्य के कंठ का हार बनाया। देशज और विदेशी शब्दावली का सफल समावेश हिंदी की उस लचीली प्रकृति को दर्शाता है, जो अपने परिवेश और वैश्विक संपर्कों के अनुसार स्वयं को ढालने में सक्षम है।

12.9 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

• बोध प्रश्न

(क) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न।

1. शब्द साधन का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके वैज्ञानिक स्वरूप और प्रकार्यात्मक भूमिका का सविस्तार वर्णन कीजिए।

2. हिंदी शब्द रचना की प्रमुख प्रक्रियाओं - उपसर्ग, प्रत्यय, समास और संधि का उदाहरण सहित विस्तृत विवेचन कीजिए।
3. हिंदी शब्द भंडार के ऐतिहासिक विकास को तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी श्रेणियों के आधार पर स्पष्ट कीजिए।
4. भाषा-विज्ञान के सिद्धांतों के आलोक में शब्द परिवर्तन के प्रमुख कारणों और दिशाओं का तार्किक विश्लेषण कीजिए।
5. हिंदी भाषा की 'वियोगात्मक प्रवृत्ति' से आप क्या समझते हैं? प्राचीन आर्य-भाषाओं से आधुनिक हिंदी तक की रूपात्मक विकास-यात्रा पर प्रकाश डालिए।

(ख) लघु उत्तरीय प्रश्न।

1. 'शब्द' और 'पद' में मुख्य अंतर क्या है?
2. हिंदी में शब्द वर्गीकरण के चार प्रमुख ऐतिहासिक स्रोत कौन-से हैं?
3. 'तद्भव' शब्द से क्या अभिप्राय है?
4. उपसर्ग किसे कहते हैं?
5. प्रत्यय विज्ञान के अंतर्गत प्रत्ययों की दो मुख्य श्रेणियां कौन-सी हैं?
6. 'प्रयत्न-लाघव' या 'मुख-सुख' भाषा परिवर्तन में किस प्रकार सहायक है?
7. समास प्रक्रिया का मुख्य भाषाई उद्देश्य क्या है?
8. 'देशज' शब्दों के दो उदाहरण लिखिए।
9. संधि की वैज्ञानिक परिभाषा क्या है?
10. यौगिक और योगरूढ़ शब्दों में क्या अंतर है?

(ग) बहुविकल्पीय प्रश्न।

1. भाषा-विज्ञान में 'शब्द' की परिभाषा क्या है?
 - (क) वर्णों का समूह
 - (ख) अर्थ की लघुतम स्वतंत्र इकाई
 - (ग) वाक्य का एक भाग
 - (घ) केवल ध्वनियों का संयोजन
2. 'शब्द' और 'पद' में मुख्य अंतर क्या है?
 - (क) शब्द वाक्य में प्रयुक्त होता है।
 - (ख) पद केवल शब्दकोश में होता है।
 - (ग) शब्द स्वतंत्र होता है, पद वाक्य में प्रयुक्त रूप होता है।
 - (घ) दोनों में कोई अंतर नहीं।
3. 'तत्सम' शब्द किसे कहते हैं?
 - (क) जो लोक से उत्पन्न हों
 - (ख) जो संस्कृत से बिना परिवर्तन के आए हों
 - (ग) जो विदेशी भाषाओं से आए हों
 - (घ) जो अपभ्रंश से बने हों

4. 'तद्भव' शब्दों की विशेषता क्या है?
 - (क) वे सीधे संस्कृत से आते हैं।
 - (ख) वे विदेशी स्रोतों से आते हैं।
 - (ग) वे ध्वनि-परिवर्तन से विकसित होते हैं।
 - (घ) वे केवल लिखित भाषा में मिलते हैं।
5. 'देशज' शब्दों का स्रोत क्या होता है?
 - (क) संस्कृत ग्रंथ
 - (ख) विदेशी भाषाएँ
 - (ग) स्थानीय बोलियाँ और लोक जीवन
 - (घ) केवल साहित्य
6. शब्दों का 'रचना' के आधार पर वर्गीकरण किस प्रकार किया जाता है?
 - (क) तत्सम, तद्भव
 - (ख) विकारी, अविकारी
 - (ग) रूढ़, यौगिक, योगरूढ़
 - (घ) देशज, विदेशी
7. 'शब्द साधन' को और किस नाम से जाना जाता है?
 - (क) वाक्य विज्ञान
 - (ख) रूप विज्ञान या पद विज्ञान
 - (ग) अर्थ विज्ञान
 - (घ) ध्वनि विज्ञान
8. शब्द रचना के प्रमुख साधन कौन-कौन से हैं?
 - (क) लिंग, वचन, कारक
 - (ख) संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया
 - (ग) उपसर्ग, प्रत्यय, समास, संधि
 - (घ) ध्वनि, वर्ण, शब्द
9. 'प्रत्यय' का मुख्य कार्य क्या है?
 - (क) शब्द के प्रारंभ में जुड़ना
 - (ख) शब्द का अर्थ समाप्त करना
 - (ग) नए शब्द बनाना और व्याकरणिक रूप निर्धारित करना
 - (घ) केवल उच्चारण बदलना
10. भाषा परिवर्तन का प्रमुख कारण क्या माना गया है?
 - (क) केवल साहित्यिक प्रभाव
 - (ख) प्रयत्न-लाघव (मुख-सुख)
 - (ग) केवल विदेशी प्रभाव
 - (घ) केवल व्याकरण

उत्तर

1. ख, 2. ग, 3. ख, 4. ग, 5. ग, 6. ग, 7. ख, 8. ग, 9. ग, 10. ख

12.10 उपयोगी पाठ्यसामग्री

• बोध प्रश्न

(क) उपयोगी ग्रंथ।

1. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. रामचंद्र वर्मा, भाषा और समाज, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज
3. प्रो। हेमदेव शर्मा, भाषा-विज्ञान समीक्षा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली
4. प्रो। योगेश चंद्र दुबे, भाषा विज्ञान की रूपरेखा, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली

(ख) वेब संदर्भ।

1. भारतवाणी (हिंदी भाषा संसाधन)
<https://bharatavani.in>
2. राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय (NDLI)
<https://ndl.iitkgp.ac.in>
3. UGC-NET हिंदी अध्ययन सामग्री
<https://ugcnetpaper1.com>

इकाई 13 वाक्य विन्यास और विराम चिह्न

रूपरेखा

- 13.1 उद्देश्य
- 13.2 प्रस्तावना
- 13.3 हिंदी वाक्य विन्यास : ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य
- 13.4 वाक्य के अनिवार्य तत्त्व
- 13.5 वाक्य संरचना और पद-क्रम
- 13.6 वाक्यों का वर्गीकरण
- 13.7 विराम चिह्न : स्वरूप और उपयोगिता
- 13.8 वाक्यगत अशुद्धियाँ और विराम चिह्नों का प्रभाव
- 13.9 सारबिंदु
- 13.10 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली
- 13.11 उपयोगी पाठ्यसामग्री

13.1 उद्देश्य

- इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –
- हिंदी वाक्य संरचना के ऐतिहासिक विकासक्रम से परिचित होंगे।
 - वाक्य गठन के अनिवार्य तत्वों और नियमों को समझ सकेंगे।
 - लेखन में अर्थ की स्पष्टता हेतु विराम चिह्नों के सटीक प्रयोग की दक्षता विकसित होगी।

13.2 प्रस्तावना

हिंदी भाषा के संरचनात्मक और ऐतिहासिक विकास के क्रम में ‘वाक्य विन्यास’ वह आधारभूत स्तंभ है जिसके माध्यम से भाषा अपनी प्राचीन जटिलताओं को त्याग कर एक सुस्पष्ट और वियोगात्मक स्वरूप को प्राप्त करती है। भाषा-विज्ञान के सिद्धांतों के आलोक में किसी भी भाषा की जीवंतता और वैज्ञानिकता उसके पदों के तार्किक संगठन और अर्थ की स्पष्टता में निहित होती है। आदिम आर्यभाषाओं की संयोगात्मक प्रकृति से लेकर आधुनिक मानक हिंदी तक की विकास यात्रा केवल ध्वनियों या शब्द-रूपों के परिवर्तन की गाथा नहीं है, बल्कि यह मानवीय अभिव्यक्ति के उस क्रमिक परिमार्जन का परिचायक है जहाँ ‘वाक्य’ विचार-संप्रेषण की एक स्वायत्त और पूर्ण इकाई बनकर उभरता है। प्राचीन भाषाओं की तुलना में आधुनिक हिंदी ने पद-क्रम को एक विशिष्ट अनुशासन प्रदान किया है, जहाँ कर्ता, कर्म और क्रिया का स्थान निर्धारण अर्थ-बोध के लिए अनिवार्य हो गया है। विकास के इस सोपान पर परसर्गों और अव्ययों की बढ़ती भूमिका ने वाक्य संरचना को अधिक पारदर्शी और व्याकरणिक रूप से अन्वय-प्रधान बनाया है जो सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को संप्रेषित करने में सक्षम है।

लिखित अभिव्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में वाक्य विन्यास की इस आंतरिक सुदृढ़ता को बाह्य रूप से स्पष्ट, बोधगम्य और प्रभावशाली बनाने का उत्तरदायित्व ‘विराम चिह्नों’ पर होता है। ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो भारतीय लेखन परंपरा में प्रारंभ में केवल ‘पूर्ण विराम’ के माध्यम से वाक्य की पूर्णता को अंकित किया जाता था, किंतु आधुनिक युग में भाषाई

मानकीकरण और वैश्विक संपर्कों के फलस्वरूप विराम चिह्नों का एक वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित तंत्र विकसित हुआ है। विराम चिह्न केवल ठहराव के संकेत मात्र नहीं हैं, बल्कि वे वाक्य के भीतर निहित अर्थ के नियामक तत्व हैं जो वक्ता या लेखक के अभीष्ट भाव को पाठक तक बिना किसी भ्रम के पहुँचाते हैं। एक ही पद-क्रम वाले वाक्य में विराम चिह्न का सूक्ष्म स्थान परिवर्तन भी अर्थ की पूरी दिशा बदल सकता है, जो भाषा की संप्रेषणीयता के लिए एक गंभीर चुनौती है। अतः उच्च स्तरीय भाषाई अध्ययन के लिए यह अनिवार्य है कि वाक्य की आकांक्षा, योग्यता और आसक्ति जैसे सैद्धांतिक आधारों के साथ-साथ विराम चिह्नों के मानक प्रयोग का गहन विश्लेषण किया जाए। यह विमर्श न केवल भाषा के ऐतिहासिक व्याकरण के प्रति एक नई दृष्टि प्रदान करता है, बल्कि लेखन की उस शुद्धता और सुबोधता को भी स्थापित करता है जो एक परिष्कृत और समर्थ भाषा की अनिवार्य कसौटी है।

13.3 हिंदी वाक्य विन्यास : ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य

हिंदी भाषा के ऐतिहासिक विकास क्रम में वाक्य विन्यास की यात्रा अत्यंत रोचक और संरचनात्मक परिवर्तनों से परिपूर्ण रही है। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल, विशेषकर वैदिक और लौकिक संस्कृत के युग में, भाषा की प्रकृति पूर्णतः 'संयोगात्मक' थी जहाँ व्याकरणिक संबंध पदों के साथ जुड़ी विभक्तियों के माध्यम से ही स्पष्ट होते थे। उस समय वाक्य में पदों का स्थान परिवर्तन अर्थ की दृष्टि से बहुत अधिक बाधा उत्पन्न नहीं करता था क्योंकि प्रत्येक पद अपनी विभक्ति के कारण अपनी व्याकरणिक पहचान स्वयं सुरक्षित रखता था। किंतु मध्यकालीन आर्यभाषा काल में प्राकृत और अपभ्रंश के विकास के साथ-साथ यह संयोगात्मक ढाँचा धीरे-धीरे टूटने लगा और भाषा 'वियोगात्मकता' की ओर अग्रसर हुई। हिंदी के उद्भव काल तक आते-आते यह प्रक्रिया इतनी सघन हो गई कि प्राचीन विभक्तियों का स्थान स्वतंत्र परसर्गों जैसे ने, को, से, के लिए ने ले लिया। इस वियोगात्मक परिवर्तन ने हिंदी वाक्य विन्यास को एक नया स्वरूप और पद-क्रम की एक निश्चित मर्यादा प्रदान की है जो इसे अपनी प्राचीन विरासत से अलग एक अधिक सुबोध और स्पष्ट पहचान देती है। वाक्य संरचना में आए इन परिवर्तनों का सूक्ष्म अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि अपभ्रंश काल के बाद हिंदी में क्रियाओं के रूप और सहायक क्रियाओं के प्रयोग में क्रांतिकारी बदलाव आए। प्राचीन काल में जहाँ क्रिया का रूप कर्ता के पुरुष और वचन के अनुसार बदलता था, वहीं आधुनिक हिंदी में 'अन्वय' के नियम अधिक वैज्ञानिक और व्यवस्थित हो गए हैं। विशेष रूप से सकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक प्रयोगों में परसर्गों के कारण जो कर्ता-कर्म-क्रिया का नवीन संबंध विकसित हुआ, वह भारतीय आर्यभाषाओं के इतिहास में एक महत्वपूर्ण संरचनात्मक मोड़ था। भारोपीय भाषा परिवार की मूल प्रवृत्तियों को सहेजते हुए भी हिंदी ने अपनी वाक्य संरचना में सरलीकरण की जिस प्रक्रिया को अपनाया वह इसकी मौलिक भाषाई शक्ति का प्रमाण है। इस ऐतिहासिक संक्रमण ने न केवल वाक्य के बाह्य रूप को बदला, बल्कि उसके भीतर निहित भाव-संप्रेषण की क्षमता को भी इतनी व्यापकता प्रदान की कि आज यह भाषा सूक्ष्म दार्शनिक चिंतन से लेकर आधुनिक विषयों तक को प्रभावी ढंग से व्यक्त करने में पूर्णतः समर्थ है।

तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में यदि हिंदी के वाक्य विन्यास को उसकी समकालीन बोलियों और पड़ोसी भाषाओं के साथ देखा जाए, तो इसमें विविधता और एकता का अद्भुत सामंजस्य दिखाई देता है। ब्रजभाषा, अवधी और खड़ीबोली के वाक्य गठन में क्रिया-रूपों और परसर्गों के प्रयोग का अपना-अपना वैशिष्ट्य रहा है, किंतु उनकी मूल वाक्य संरचना का आधार सदैव एक समान रहा है। उदाहरण के लिए अवधी और ब्रज के प्राचीन साहित्य में वाक्य

विन्यास कहीं-कहीं अधिक लचीला और काव्यमय था, किंतु मानक नागरी हिंदी के रूप में विकसित होते समय इसने एक सुव्यवस्थित और तार्किक गद्य-शैली को प्रधानता दी। अन्य भारोपीय भाषाओं, जैसे ईरानी आर्यभाषा (अवेस्ता) या यूरोपीय भाषाओं की तुलना में हिंदी वाक्य विन्यास में ‘कर्ता + कर्म + क्रिया’ का पद-क्रम अत्यंत स्थिर रहा है, जबकि अनेक पश्चिमी भाषाओं में यह ‘कर्ता + क्रिया + कर्म’ के रूप में दिखाई देता है। यह तुलनात्मक अध्ययन स्पष्ट करता है कि हिंदी ने विदेशी और क्षेत्रीय प्रभावों को आत्मसात करते हुए भी अपनी मौलिक वाक्य संरचना को कभी शिथिल नहीं होने दिया और अपनी विशिष्ट प्रकृति को सुरक्षित रखा। आधुनिक युग में हिंदी वाक्य विन्यास का स्वरूप भाषाई परिमार्जन और मानकीकरण की प्रक्रिया से गुजरकर अत्यंत परिष्कृत हो चुका है। वर्तमान मानक हिंदी में वाक्य की आकांक्षा, योग्यता और आसक्ति जैसे शास्त्रीय तत्वों का निर्वाह तो होता ही है, साथ ही इसमें वैज्ञानिकता और तार्किकता का गहरा समावेश भी हुआ है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से प्राप्त वियोगात्मकता ने जहाँ इसे लचीला बनाया है, वहीं आधुनिक व्याकरणिक अनुशासन ने इसे स्थिरता प्रदान की है। अब वाक्य केवल पदों का समूह मात्र नहीं रह गया है, बल्कि यह एक ऐसी सुगठित संरचना है जो विराम चिह्नों के कुशल सहयोग से अर्थ की स्पष्टता को उसकी अंतिम सीमा तक पहुँचाती है। भाषाई शोध के आलोक में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हिंदी वाक्य विन्यास का यह ऐतिहासिक और तुलनात्मक विकास निरंतर प्रगतिशील है। यही विकास इसे विश्व की अन्य समृद्ध भाषाओं के समकक्ष खड़ा करता है और इसकी संप्रेषणीयता को वैश्विक स्तर पर अत्यंत प्रभावी और प्रासंगिक बनाए रखता है।

13.4 वाक्य के अनिवार्य तत्व

वाक्य विन्यास के सैद्धांतिक विश्लेषण में उन अनिवार्य तत्वों का विवेचन अत्यंत महत्वपूर्ण है जो किसी पद-समूह को अर्थपूर्ण ‘वाक्य’ की संज्ञा प्रदान करते हैं। भाषा-विज्ञान के स्वीकृत सिद्धांतों के अनुसार केवल शब्दों को एक साथ रख देने मात्र से वाक्य का निर्माण नहीं होता, बल्कि इसके लिए एक सुदृढ़ आंतरिक और बाह्य संरचना की आवश्यकता होती है। प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र और आधुनिक भाषा-वैज्ञानिक शोधों ने इस संरचना के चार मुख्य आधार स्तंभ माने हैं : आकांक्षा, योग्यता, आसक्ति और अन्वय। ये तत्व परस्पर इस प्रकार गुंथे हुए हैं कि इनमें से किसी एक का भी अभाव वाक्य की संप्रेषणीयता को खंडित कर सकता है। ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो भारतीय आर्यभाषाओं के विकासक्रम में इन तत्वों का निर्वाह अनिवार्य रहा है, क्योंकि यही वे सूत्र हैं जो वक्ता के सूक्ष्म भावों को श्रोता तक उसी रूप में पहुँचाते हैं जिस रूप में वे सोचे गए थे। वाक्य की पूर्णता इन आंतरिक नियमों की वैज्ञानिकता पर टिकी होती है जो बिखरे हुए शब्दों को एक अर्थपूर्ण इकाई में पिरोने का कार्य करते हैं।

‘आकांक्षा’ वाक्य का वह प्रथम अनिवार्य गुण है जो अर्थ की पूर्णता का बोध कराता है। सरल शब्दों में कहे तो जब हम वाक्य का एक अंश सुनते हैं, तो मन में शेष अंश को जानने की जो स्वाभाविक जिज्ञासा उत्पन्न होती है, उसे ही आकांक्षा कहते हैं। यदि कोई व्यक्ति केवल ‘जाता है’ या ‘घर पर’ कहकर रुक जाए, तो सुनने वाले के मन में यह प्रश्न शेष रह जाता है कि ‘कौन जाता है?’ या ‘घर पर क्या है?’। जब तक वाक्य के सभी आवश्यक पदों का उच्चारण नहीं हो जाता, तब तक अर्थ की जिज्ञासा शांत नहीं होती और उसे पूर्ण वाक्य नहीं माना जा सकता। भाषा के ऐतिहासिक विकास में यह देखा गया है कि वियोगात्मक भाषाओं (जैसे आधुनिक हिंदी) में आकांक्षा की पूर्ति के लिए कर्ता, कर्म और क्रिया का स्पष्ट उल्लेख अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि प्राचीन विभक्तियों के अभाव में अब अर्थ का पूर्ण उत्तरदायित्व इन पदों के आपसी समन्वय पर ही निर्भर है।

वाक्य का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व 'योग्यता' है। यह पदों के भीतर निहित उस सामर्थ्य को दर्शाता है जिससे वे तत्कसंगत अर्थ प्रदान कर सकें। योग्यता का अर्थ है पदों के बीच अर्थ का पारस्परिक मेल या संगति। उदाहरण के लिए यदि कोई कहे कि 'वह आग से सींचता है', तो व्याकरण की दृष्टि से यह वाक्य सही लग सकता है, किंतु अर्थ की दृष्टि से इसमें योग्यता का अभाव है क्योंकि 'आग' में 'सींचने' का गुण नहीं होता। भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से पदों में निहित अर्थ समाज द्वारा स्वीकृत यथार्थ और तत्क पर आधारित होने चाहिए। ऐतिहासिक संदर्भों में भाषा के परिमार्जन के साथ-साथ योग्यता के मानक भी अधिक स्पष्ट हुए हैं, जिससे अभिव्यक्ति में किसी भी प्रकार का व्याघात या विरोधाभास शेष नहीं रहता। यह तत्व सुनिश्चित करता है कि वाक्य केवल ध्वनियों का संचय न होकर एक तार्किक संदेश का वाहक बने।

'आसक्ति' या 'निकटता' वाक्य के बाह्य स्वरूप और उच्चारण की निरंतरता से संबंधित तत्व है। इसका अर्थ है कि वाक्य के पदों के बीच समय या स्थान का इतना अधिक अंतराल नहीं होना चाहिए कि उनका आपसी संबंध ही टूट जाए। यदि 'राम' शब्द अभी कहा जाए और 'घर जाता है' दो घंटे बाद, तो वे मिलकर एक वाक्य का निर्माण नहीं कर सकते क्योंकि उनके बीच की आसक्ति भंग हो चुकी है। लिखित भाषा में यह निकटता शब्दों के बीच के उचित अंतराल और विराम चिह्नों के माध्यम से स्पष्ट होती है। उच्चारण के समय बलाघात और सुराघात का सही प्रयोग भी आसक्ति के अंतर्गत आता है, जो श्रोता को यह समझने में मदद करता है कि कौन से पद एक ही विचार की इकाई हैं। पद-क्रम की स्थिरता और पदों की निरंतरता ही वाक्य को प्रवाहपूर्ण और बोधगम्य बनाती है जिससे अर्थ का ग्रहण सहजता से संभव हो पाता है।

अंतिम और सबसे वैज्ञानिक तत्व 'अन्वय' है। यह वाक्य के विभिन्न पदों के बीच व्याकरणिक एकरूपता को स्थापित करता है। अन्वय का अर्थ है- लिंग, वचन, पुरुष और काल के अनुसार पदों का आपस में सटीक मेल। हिंदी जैसी वियोगात्मक भाषा में अन्वय के नियम अत्यंत सूक्ष्म हैं। यहाँ कर्ता और क्रिया का मेल, विशेषण और विशेष्य का संबंध तथा कारक चिह्नों के अनुसार पदों का परिवर्तन वाक्य की शुद्धता की कसौटी है। उदाहरण के लिए 'लड़का खेलती है' में अन्वय दोष है क्योंकि पुल्लिंग कर्ता के साथ स्त्रीलिंग क्रिया का प्रयोग व्याकरणिक नियमों के विरुद्ध है। ऐतिहासिक रूप से संस्कृत से अपभ्रंश और फिर आधुनिक हिंदी तक आते-आते अन्वय के रूपों में व्यापक परिवर्तन आए हैं। प्राचीन संयोगात्मकता के समय अन्वय का ढांचा विभक्तियों पर टिका था, जबकि वर्तमान में यह क्रिया के रूपात्मक परिवर्तनों और परसर्गों के समन्वय पर आधारित है। इन चारों तत्वों आकांक्षा, योग्यता, आसक्ति और अन्वय के सम्मिलित प्रभाव से ही एक श्रेष्ठ और मानक वाक्य का निर्माण होता है, जो भाषा की उच्च स्तरीय अभिव्यक्ति की सामर्थ्य को सिद्ध करता है।

13.5 वाक्य संरचना और पद-क्रम

हिंदी भाषा की संरचनात्मक विशिष्टता और उसकी वैज्ञानिकता को समझने के लिए उसके पद-क्रम का विस्तृत विश्लेषण अनिवार्य है। किसी भी भाषा में पदों का एक निश्चित अनुक्रम होता है, जो व्याकरणिक शुद्धता और अर्थ की स्पष्टता सुनिश्चित करने का मुख्य आधार होता है। जब भारतीय आर्यभाषाओं ने अपनी प्राचीन 'संयोगात्मक' प्रकृति को छोड़कर 'वियोगात्मक' रूप अपनाया, तब पद-क्रम का महत्व और भी अधिक बढ़ गया। प्राचीन संस्कृत जैसी भाषाओं में जहाँ विभक्तियों के कारण पदों का स्थान बदलने पर भी वाक्य का मूल अर्थ सुरक्षित रहता था, वहीं आधुनिक हिंदी में पद-क्रम का स्थान लगभग स्थिर हो चुका है। वाक्य संरचना का यह अनुशासन ही विचारों को एक सुव्यवस्थित ढाँचा प्रदान

करता है, जिससे संप्रेषण में किसी प्रकार का भ्रम या संशय शेष नहीं रहता। पदों का यह विन्यास केवल शुष्क व्याकरणिक नियम मात्र नहीं है, बल्कि यह भाषा की आंतरिक तत्कालशक्ति और उसके सदियों पुराने ऐतिहासिक विकास का परिणाम है। मानक हिंदी वाक्य का स्वाभाविक और व्याकरणिक रूप से स्वीकृत पद-क्रम 'कर्ता + कर्म + क्रिया' है। यह व्यवस्था हिंदी को विश्व की उन अनेक भाषाओं से मौलिक रूप से पृथक् करती है जहाँ क्रिया का स्थान कर्ता के तुरंत बाद होता है। एक सामान्य सरल वाक्य में सबसे पहले कार्य को संपन्न करने वाला (कर्ता) आता है, उसके बाद जिस संज्ञा या सर्वनाम पर कार्य का फल पड़ता है (कर्म) और अंत में क्रिया का स्थान सुनिश्चित होता है। उदाहरण के लिए 'लड़का पत्र लिखता है' जैसे सामान्य वाक्य में 'लड़का' कर्ता है, 'पत्र' कर्म है और 'लिखता है' क्रिया है। इसके अतिरिक्त वाक्य के अन्य सहायक अंग जैसे क्रिया-विशेषण प्रायः क्रिया से ठीक पहले आते हैं और विशेषण अपने विशेष्य (संज्ञा) से पहले स्थान ग्रहण करते हैं। यह वैज्ञानिक पद-क्रम ही हिंदी के गद्य को एक सुगठित, स्पष्ट और गंभीर स्वरूप प्रदान करता है, जिससे सूक्ष्म से सूक्ष्म दार्शनिक भावों को भी सरलता से व्यक्त किया जा सकता है।

वाक्य को अधिक विस्तृत, वर्णनात्मक और अर्थपूर्ण बनाने के लिए 'विस्तारक' पदों का प्रयोग किया जाता है, जिनका वाक्य में स्थान अत्यंत संवेदनशील और महत्वपूर्ण होता है। सामान्यतः वाक्य के दो मुख्य अंग होते हैं - उद्देश्य और विधेय। उद्देश्य या कर्ता का विस्तार करने वाले शब्द, जैसे कि गुणवाचक विशेषण या संबंधवाचक पद, सदैव कर्ता से ठीक पहले रखे जाते हैं। उदाहरणस्वरूप 'वीर सिपाही युद्ध लड़ता है' में 'वीर' शब्द उद्देश्य 'सिपाही' का विस्तारक है जो उसके गुण को रेखांकित करता है। इसी प्रकार विधेय या क्रिया का विस्तार करने वाले शब्द, जैसे क्रिया-विशेषण, रीतिवाचक अव्यय या स्थानवाचक पद, मुख्य क्रिया से पूर्व स्थापित किए जाते हैं। यदि वाक्य में गौण कर्म और मुख्य कर्म दोनों उपस्थित हों, तो भाषाई परंपरा के अनुसार गौण कर्म प्रायः मुख्य कर्म से पहले आता है। विस्तारकों का यह सही नियोजन वाक्य के अर्थ को गहराई, स्पष्टता और नवीन आयाम प्रदान करता है। यद्यपि हिंदी में एक मानक पद-क्रम निश्चित है, किंतु 'अपवाद' स्वरूप इसमें परिवर्तन की भी वैज्ञानिक गुंजाइश रहती है जो भाषा को लचीला बनाती है। विशेष रूप से कविता, छंदबद्ध रचनाओं या महाकाव्यों में लय, ताल, छंद और तुकांतता बनाए रखने के लिए पद-क्रम के सामान्य नियमों को शिथिल किया जाता है। पद्य में क्रिया का प्रयोग वाक्य के प्रारंभ, मध्य या अंत में कहीं भी किया जा सकता है, जो काव्य सौंदर्य को बढ़ाता है। इसके अतिरिक्त सामान्य गद्य में भी जब वक्ता या लेखक को किसी विशिष्ट पद पर 'विशेष बल' देना हो या पाठक का ध्यान खींचना हो, तो उस पद का स्थान बदला जा सकता है। उदाहरण के लिए 'मैं वहाँ नहीं जाऊँगा' जैसे सामान्य कथन के स्थान पर यदि 'जाऊँगा तो मैं वहाँ नहीं' कहा जाए, तो अर्थ का पूरा बल क्रिया और वक्ता के निश्चय पर आ जाता है। यह लचीलापन हिंदी भाषा की उस असीम सामर्थ्य को दर्शाता है जहाँ वह कठोर व्याकरणिक अनुशासन में रहते हुए भी वक्ता की भावनाओं, संवेदनाओं और शैलीगत आवश्यकताओं के अनुसार स्वयं को सहजता से ढाल लेती है।

हिंदी वाक्य संरचना और पद-क्रम का यह सुव्यवस्थित स्वरूप उसके दीर्घकालिक भाषाई परिमार्जन और विकास यात्रा का मधुर फल है। ऐतिहासिक संक्रमण काल में जब भाषा ने अपभ्रंश की अनिश्चितताओं और क्षेत्रीय प्रभावों को पार किया, तब उसने स्वयं को इन निश्चित नियमों में आबद्ध किया ताकि वह एक समर्थ और वैश्विक साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित हो सके। कर्ता, कर्म और क्रिया का यह संतुलित सामंजस्य ही वाक्य की वह वास्तविक शक्ति है जो सूक्ष्म दार्शनिक विमर्श से लेकर दैनिक व्यावहारिक संवाद तक को एक ठोस आधार प्रदान करती है। पद-क्रम और विस्तारकों का सही बोध न केवल व्याकरणिक

अशुद्धियों को समूल नष्ट करता है, बल्कि यह उच्च स्तरीय मौलिक लेखन, अनुवाद कार्य और भाषाई विश्लेषण के लिए भी अनिवार्य शर्त है। वाक्य संरचना के इन सूक्ष्म नियमों का निरंतर पालन करना हिंदी के मानक स्वरूप को सुरक्षित रखने, उसकी गरिमा को बनाए रखने और उसकी संप्रेषणीयता को वैश्विक स्तर पर प्रभावी व प्रासंगिक बनाने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

13.6 वाक्यों का वर्गीकरण

हिंदी भाषा की संरचनात्मक गहराई और उसकी सूक्ष्म अभिव्यक्ति को समझने के लिए वाक्यों का वैज्ञानिक वर्गीकरण एक अनिवार्य आधारशिला प्रस्तुत करता है। वाक्य केवल पदों या ध्वनियों का यादृच्छिक संचय मात्र नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी अर्थवान और पूर्ण इकाई है जो वक्ता के मंतव्य को समग्रता के साथ श्रोता तक पहुँचाती है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो जब भारतीय आर्यभाषाओं ने अपनी प्राचीन ‘संयोगात्मक’ प्रकृति को त्याग कर आधुनिक ‘वियोगात्मक’ स्वरूप ग्रहण किया, तब वाक्यों का यह ढाँचा और भी अधिक सुस्पष्ट, तार्किक और श्रेणीबद्ध हो गया। व्याकरणिक विमर्श में वाक्यों का वर्गीकरण मुख्य रूप से दो धुरियों पर आधारित होता है- रचनात्मक बनावट और अर्थगत प्रयोजन। यह द्विआयामी वर्गीकरण भाषा की आंतरिक जटिलता को व्यवस्थित करता है और उच्चस्तरीय अकादमिक लेखन से लेकर व्यावहारिक संवाद तक में वैचारिक स्पष्टता सुनिश्चित करता है। वाक्यों के इन भेदों का अध्ययन न केवल व्याकरणिक अनुशासन को सुदृढ़ करता है, बल्कि भाषा की संप्रेषण क्षमता को भी एक निश्चित वैज्ञानिक दिशा प्रदान करता है।

‘रचना’ के आधार पर वाक्यों का वर्गीकरण उनकी बाह्य बनावट और उपवाक्यों के पारस्परिक संबंधों को रेखांकित करता है, जिसमें प्रथम स्थान ‘सरल वाक्य’ का है। सरल वाक्य की मौलिक विशेषता यह है कि इसमें केवल एक ही मुख्य क्रिया होती है और यह एक उद्देश्य तथा एक विधेय के माध्यम से विचार के एक अखंड प्रवाह को प्रस्तुत करता है। इसके विपरीत ‘संयुक्त वाक्य’ उस संरचना को कहते हैं जहाँ दो या दो से अधिक स्वतंत्र और समान स्तर के उपवाक्य किसी समुच्चयबोधक अव्यय या योजक (जैसे - और, किंतु, परंतु, अथवा) द्वारा आपस में जुड़े होते हैं। संयुक्त वाक्य की यह विशिष्टता है कि इसमें सम्मिलित प्रत्येक उपवाक्य अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है और योजक को हटा देने पर भी वे पूर्ण अर्थ देने की क्षमता रखते हैं। रचना का तीसरा और सर्वाधिक जटिल भेद ‘मिश्र वाक्य’ है, जिसमें एक प्रधान उपवाक्य होता है और अन्य उपवाक्य उस पर आश्रित होते हैं। मिश्र वाक्य की बनावट इस प्रकार की होती है कि प्रधान खंड के बिना आश्रित खंड का अर्थ अपूर्ण और अस्पष्ट रह जाता है, जो भाषा की तार्किक गहराई को दर्शाता है। ‘अर्थ’ के आधार पर किया गया वर्गीकरण वक्ता की मानसिक अवस्था उसके मंतव्य और कथ्य की प्रकृति को स्वर प्रदान करता है, जिसे मानक रूप से आठ श्रेणियों में विभक्त किया गया है। ‘विधानवाचक वाक्य’ वे हैं जो किसी वस्तु या स्थिति के होने की सामान्य सूचना देते हैं और एक तथ्यात्मक कथन के रूप में कार्य करते हैं। इसके ठीक उलट ‘निषेधवाचक वाक्य’ किसी कार्य के न होने, इनकार करने या नकारात्मकता का बोध कराते हैं, जो संवाद में निषेध की स्थिति को स्पष्ट करते हैं। जब भाषा का प्रयोग किसी सूचना को प्राप्त करने या जिज्ञासा शांत करने के उद्देश्य से किया जाता है, तो उसे ‘प्रश्नवाचक वाक्य’ कहा जाता है। वहीं, ‘आज्ञावाचक वाक्य’ वक्ता के आदेश, निर्देश, अनुमति या विनय के भाव को संप्रेषित करते हैं। अर्थ के ये विविध भेद भाषा को एक कार्यात्मक लचीलापन प्रदान करते हैं, जिससे एक ही सूचना को परिस्थिति और उद्देश्य के अनुरूप विभिन्न साँचों में ढाला जा सकता है।

मानवीय संवेदनाओं और तार्किक संभावनाओं को व्यक्त करने के लिए अर्थगत वर्गीकरण

के शेष चार भेद अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावी सिद्ध होते हैं। 'विस्मयादिबोधक वाक्य' हृदय के तीव्र उद्गारों जैसे - हर्ष, शोक, घृणा, विस्मय या करुणा को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होते हैं, जो भाषा को भावनात्मक जीवंतता प्रदान करते हैं। 'इच्छावाचक वाक्य' वक्ता की निजी शुभकामनाओं, आशीर्वाद, अभिलाषा या किसी मंगल कामना को शब्द देते हैं। इसके अतिरिक्त 'संदेहवाचक वाक्य' वे संरचनाएँ हैं जिनमें किसी कार्य के संपन्न होने के प्रति अनिश्चितता, संभावना या संदेह का पुट विद्यमान रहता है। अंततः 'संकेतवाचक वाक्य' का स्थान आता है, जहाँ एक क्रिया का होना दूसरी क्रिया की शर्त पर निर्भर करता है; ये वाक्य कारण-कार्य संबंध को दर्शाते हैं और प्रायः शर्तपरक स्थितियों के लिए अनिवार्य होते हैं। अर्थ के ये समस्त आयाम मिलकर हिंदी भाषा की शब्द-संपदा और उसके रूपात्मक सामर्थ्य का उपयोग करते हुए संप्रेषण को न केवल स्पष्ट बल्कि अत्यंत मर्मस्पर्शी और प्रभावी बनाते हैं।

हिंदी वाक्यों का यह द्विविध वर्गीकरण भाषा के ऐतिहासिक परिमार्जन और उसकी क्रमिक विकास यात्रा का एक महत्वपूर्ण प्रतिफल है। एक वियोगात्मक भाषा होने के नाते हिंदी में वाक्यों के ये भेद व्याकरणिक अनुशासन, पद-क्रम की स्थिरता और अन्वय के नियमों के माध्यम से अत्यंत वैज्ञानिक ढंग से संचालित होते हैं। रचना के आधार पर किया गया विभाजन जहाँ वाक्य की यांत्रिक बनावट और उसके तार्किक अंतर्संबंधों को मजबूती प्रदान करता है, वहीं अर्थ के आधार पर किया गया वर्गीकरण उसकी आंतरिक चेतना और भावात्मक विस्तार को एक नया क्षितिज देता है। इन भेदों का गहन और सटीक ज्ञान न केवल शुद्ध लेखन और व्याकरणिक शुद्धि के लिए अपरिहार्य है, बल्कि यह भाषा के सूक्ष्म भाषाई विश्लेषण, उच्च स्तरीय साहित्य सृजन और सटीक अनुवाद कार्य के लिए भी एक ठोस आधारशिला निर्मित करता है। वाक्यों का यह विस्तृत और वैज्ञानिक वर्गीकरण हिंदी को एक सुव्यवस्थित, समृद्ध और अत्यंत समर्थ भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में अपनी निर्णायक भूमिका निभाता है।

13.7 विराम चिह्न : स्वरूप और उपयोगिता

हिंदी भाषा की लिखित अभिव्यक्ति को सुस्पष्ट, तत्कसंगत और भावपूर्ण बनाने में विराम चिह्नों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। विराम का शाब्दिक अर्थ है 'ठहराव' या 'रुकना'। जिस प्रकार मौखिक संवाद के समय वक्ता अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए बीच-बीच में रुकता है या विशेष बल देता है, उसी प्रकार लिखित भाषा में पाठक के बोध को सुगम बनाने के लिए विराम चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो प्राचीन भारतीय साहित्य और व्याकरणिक परंपरा में विराम चिह्नों का स्वरूप आज की तुलना में बहुत सीमित था। प्राचीन काल में केवल 'पूर्ण विराम' (I) और कहीं-कहीं 'द्वि-विराम' (II) का ही प्रयोग देखने को मिलता था, जो प्रायः पद्य के छंदों की समाप्ति या वाक्य की पूर्णता का संकेत देते थे। आधुनिक हिंदी में प्रचलित विराम चिह्नों का यह विस्तृत तंत्र मुख्य रूप से यूरोपीय भाषाओं के संपक्क और नागरी लिपि के आधुनिक मानकीकरण की प्रक्रिया का परिणाम है। भाषा के वियोगात्मक होते जाने के कारण पदों के अर्थ-निर्धारण में इन चिह्नों की वैज्ञानिक उपयोगिता और भी बढ़ गई है। प्रमुख विराम चिह्नों के वैज्ञानिक विवेचन में 'पूर्ण विराम' (I) सबसे प्राचीन और मौलिक चिह्न है। यह वाक्य की पूर्ण समाप्ति का सूचक है और यह दर्शाता है कि विचार की एक इकाई पूरी हो चुकी है। उदाहरण के लिए विद्यार्थी अपनी कक्षा में बैठकर अध्ययन कर रहा है। यहाँ वाक्य के अंत में पूर्ण विराम यह संकेत देता है कि कथन पूर्ण हो गया है। इसके विपरीत 'अल्पविराम' (,) का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ पाठक को बहुत कम समय के लिए रुकना हो या वाक्य के भीतर विभिन्न पदों और उपवाक्यों को परस्पर अलग करना हो। जैसे - मोहन, सोहन और गीता बाजार गए। अल्पविराम का सूक्ष्म स्थान परिवर्तन भी

अर्थ का अनर्थ कर सकता है, जैसे- रोको मत, जाने दो और रोको, मत जाने दो। यह चिह्न वाक्यों को उलझने से बचाता है और पदों के बीच एक स्पष्ट सीमा रेखा खींचता है।

‘अर्धविराम’ (;) का स्थान अल्पविराम और पूर्ण विराम के मध्य का होता है। इसका प्रयोग वहाँ अनिवार्य होता है जहाँ अल्पविराम की तुलना में अधिक समय तक रुकने की आवश्यकता हो, किंतु वाक्य अभी पूर्ण न हुआ हो। प्रायः जब एक ही प्रधान वाक्य के साथ कई स्वतंत्र उपवाक्य जुड़े होते हैं, तब अर्धविराम का प्रयोग उन्हें सुव्यवस्थित करने के लिए किया जाता है। उदाहरण के तौर पर-सूर्योदय हुआ; अंधकार विलीन हो गया; पक्षी चहचहाने लगे। यहाँ तीनों स्वतंत्र विचार हैं, जो एक ही संदर्भ से जुड़े होने के कारण अर्धविराम द्वारा पृथक् किए गए हैं। यह चिह्न विशेषकर गंभीर और वैचारिक गद्य में तार्किक निरंतरता बनाए रखने के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है, जहाँ पूर्ण विराम देने से विचारों का प्रवाह खंडित होने का भय रहता है। विशेष भावों और अर्थ की सघनता को स्पष्ट करने के लिए ‘प्रश्नवाचक’ (?) और ‘विस्मयादिबोधक’ (!) चिह्नों का प्रयोग वैज्ञानिक पद्धति से किया जाता है। प्रश्नवाचक चिह्न का प्रयोग केवल उन वाक्यों के अंत में होता है जहाँ प्रत्यक्ष रूप से कोई जिज्ञासा प्रकट की गई हो, जैसे - क्या आप कल दिल्ली जा रहे हैं? दूसरी ओर विस्मयादिबोधक चिह्न का प्रयोग हर्ष, शोक, घृणा, आश्चर्य या करुणा जैसे तीव्र मानसिक आवेगों को व्यक्त करने वाले पदों या वाक्यों के अंत में होता है, जैसे - वाह! कितना सुंदर दृश्य है। ये चिह्न लिखित भाषा को वह स्वर और भाव प्रदान करते हैं जो वक्ता के चेहरे के हाव-भाव या आवाज के उतार-चढ़ाव से प्राप्त होते हैं। इनके अभाव में वाक्य का वास्तविक मंतव्य अस्पष्ट रह सकता है, जिससे संप्रेषण की प्रक्रिया अधूरी रह जाती है।

लेखन की शुद्धता और प्रामाणिकता के लिए ‘उद्धरण चिह्न’ () का प्रयोग अपरिहार्य है। इसका मुख्य उद्देश्य किसी व्यक्ति के कथन, संवाद या किसी पुस्तक के अंश को बिना किसी परिवर्तन के ज्यों का त्यों प्रस्तुत करना होता है। उदाहरण के लिए लोकमान्य तिलक ने कहा, स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। यहाँ उद्धरण चिह्न यह स्पष्ट करता है कि यह वक्ता के मूल शब्द हैं। इसके साथ ही ‘योजक चिह्न’ (-) और ‘विवरण चिह्न’ (:-) जैसे अन्य सहायक चिह्न भी नागरी लिपि के मानक स्वरूप का अंग बन चुके हैं, जो पदों के समास या विवरण प्रस्तुत करने में सहायता करते हैं। हिंदी की वर्तमान वियोगात्मक प्रकृति और पद-क्रम की स्थिरता के बीच ये विराम चिह्न एक नियामक तंत्र की भाँति कार्य करते हैं। इन चिह्नों का सटीक और वैज्ञानिक प्रयोग न केवल लेखन को सुरुचिपूर्ण बनाता है, बल्कि यह भाषा की अर्थ-संप्रेषणीयता को वैश्विक मानकों के अनुरूप प्रभावी और तत्कालसंगत भी सिद्ध करता है।

13.8 वाक्यगत अशुद्धियाँ और विराम चिह्नों का प्रभाव

हिंदी भाषा की संरचना में वाक्यगत शुद्धता और विराम चिह्नों का सटीक प्रयोग अर्थ-बोध की दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील विषय है। विराम चिह्न केवल लेखन की सजावट के उपकरण नहीं हैं, बल्कि वे वाक्य के अर्थ के नियामक तत्व हैं। इनके स्थान परिवर्तन मात्र से वाक्य का मूल मंतव्य पूरी तरह बदल सकता है और कई बार तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। उदाहरण के तौर पर ‘रोको मत, जाने दो’ वाक्य में अल्पविराम ‘मत’ के बाद लगा है, जिसका अर्थ है कि जाने वाले को रोकना नहीं है। इसके ठीक विपरीत यदि अल्पविराम का स्थान बदलकर ‘रोको’ के बाद कर दिया जाए- ‘रोको, मत जाने दो’ तो अर्थ पूर्णतः उलट जाता है और इसका अर्थ रोकने का आदेश बन जाता है। इसी प्रकार ‘उसने कहा, वह नहीं आएगा’ और उसने कहा वह, नहीं आएगा’ जैसे प्रयोगों में अल्पविराम

की स्थिति वक्ता के पूरे आशय को स्पष्ट या भ्रमित कर सकती है। अतः मानक लेखन में विराम चिह्नों की उपेक्षा न केवल व्याकरणिक त्रुटि है, बल्कि यह संप्रेषण के मार्ग में एक बड़ी बाधा भी है, जो पाठक तक गलत संदेश पहुँचाने का कारण बनती है।

वाक्यगत अशुद्धियों का एक दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष ‘अन्वय’ संबंधी त्रुटियों से जुड़ा है, जो पदों के बीच व्याकरणिक तालमेल के अभाव में उत्पन्न होती हैं। हिंदी एक वियोगात्मक भाषा है, जहाँ सलग, वचन, पुरुष और काल के अनुसार पदों का सही मेल होना अनिवार्य है। अन्वय की त्रुटियाँ अक्सर कर्ता-क्रिया संबंध या विशेषण-विशेष्य के प्रयोग में देखी जाती हैं। उदाहरण के लिए ‘लड़कियाँ गाना गा रहा है’ एक अशुद्ध वाक्य है क्योंकि यहाँ स्त्रीलिंग बहुवचन कर्ता के साथ पुल्लिंग एकवचन क्रिया का प्रयोग किया गया है; इसका शुद्ध अन्वय ‘लड़कियाँ गाना गा रही हैं’ होगा। इसी तरह कारक चिह्नों के गलत प्रयोग से भी अन्वय भंग हो जाता है, जैसे ‘मैंने बाजार जाना है’ के स्थान पर ‘मुझे बाजार जाना है’ शुद्ध रूप है। इन त्रुटियों का निराकरण व्याकरणिक नियमों के सूक्ष्म बोध और पद-क्रम की निरंतरता को बनाए रखकर ही संभव है। जब वाक्य में अन्वय और विराम चिह्नों का वैज्ञानिक समन्वय होता है तभी भाषा अपनी पूर्ण अर्थवत्ता और प्रामाणिकता के साथ अभिव्यक्त हो पाती है।

13.9 सारबिंदु

- हिंदी भाषा के संरचनात्मक विन्यास में वाक्य की भूमिका एक ऐसी पूर्ण और स्वायत्त इकाई की है जो वक्ता के सूक्ष्म भावों को तार्किक रूप प्रदान करती है। भाषा की प्रकृति जब प्राचीन संयोगात्मकता से आधुनिक वियोगात्मकता की ओर विकसित हुई, तब वाक्य के भीतर पदों का क्रम और उनके आपसी संबंध अधिक वैज्ञानिक और मर्यादित हो गए।
- किसी भी पद-समूह को सार्थक वाक्य कहलाने के लिए आकांक्षा, योग्यता, आसक्ति और अन्वय जैसे अनिवार्य तत्वों का निर्वाह करना आवश्यक होता है, क्योंकि इनके अभाव में अर्थ की संप्रेषणीयता खंडित हो जाती है।
- हिंदी की मानक संरचना मुख्य रूप से ‘कर्ता + कर्म + क्रिया’ के पद-क्रम पर आधारित है, जहाँ उद्देश्य और विधेय के विस्तारक अपने मुख्य पदों के साथ एक निश्चित अनुशासन में जुड़े रहते हैं। वाक्यों का यह स्वरूप रचना के आधार पर सरल, संयुक्त और मिश्र भेदों में तथा अर्थ के आधार पर आठ विभिन्न रूपों में वर्गीकृत होकर भाषा को बहुआयामी अभिव्यक्ति प्रदान करता है। लिखित भाषा में इस वैचारिक प्रवाह को सुस्पष्ट और भ्रमरहित बनाने का उत्तरदायित्व विराम चिह्नों पर होता है।
- प्राचीन भारतीय साहित्य के ‘पूर्ण विराम’ से लेकर आधुनिक युग में अपनाए गए अल्पविराम, अर्धविराम और प्रश्नवाचक जैसे चिह्नों का वैज्ञानिक प्रयोग न केवल वाक्यगत अशुद्धियों का निराकरण करता है, बल्कि सूक्ष्म स्थान परिवर्तन से होने वाले अर्थ के अनर्थ को रोककर भाषा की प्रामाणिकता और अर्थवत्ता को सुरक्षित रखता है।

13.10 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

- दीर्घ उत्तरीय प्रश्न।
1. हिंदी वाक्य विन्यास की किन्हीं तीन विशेषताओं का सविस्तार वर्णन कीजिए।
 2. रचना के आधार पर वाक्यों के भेदों को उदाहरण सहित समझाइए।
 3. लेखन में विराम चिह्नों के महत्व पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिए।

● लघु उत्तरीय प्रश्न।

1. प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल में भाषा की व्याकरणिक प्रकृति किस प्रकार की थी?
2. आधुनिक हिंदी में प्राचीन विभक्तियों के स्थान पर किन स्वतंत्र तत्वों का प्रयोग अनिवार्य हो गया है?
3. वाक्य के उन चार मुख्य आधार स्तंभों के नाम लिखिए जो किसी पद-समूह को अर्थपूर्ण 'वाक्य' बनाते हैं।
4. वाक्य में अर्थ की पूर्ण जिज्ञासा शांत करने वाले अनिवार्य गुण को क्या कहा जाता है?
5. पदों के भीतर निहित उस सामर्थ्य को क्या कहते हैं जिससे वे तत्कसंगत अर्थ प्रदान कर सकें?
6. हिंदी वाक्य विन्यास का स्वाभाविक और व्याकरणिक रूप से स्वीकृत पद-क्रम क्या है?
7. उद्देश्य या कर्ता का विस्तार करने वाले शब्द वाक्य में किस स्थान पर रखे जाते हैं?
8. रचना के आधार पर वाक्यों को किन तीन प्रमुख भेदों में वर्गीकृत किया गया है?
9. आधुनिक हिंदी में प्रचलित विराम चिह्नों का तंत्र मुख्य रूप से किन भाषाओं के संपक्क का परिणाम है?
10. किसी के कथन या संवाद को बिना किसी परिवर्तन के प्रस्तुत करने के लिए किस चिह्न का प्रयोग किया जाता है?

13.11 उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. भाटिया, कैलाशचंद्र, चतुर्वेदी, मोतीलाल (2006), हिंदी भाषा विकास और स्वरूप, नई दिल्ली, ग्रंथ अकादमी।
2. तिवारी, उदय नारायण, (2007), हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, नई दिल्ली, लोकभारती प्रकाशन।
3. तिवारी, भोलानाथ, (1987), हिंदी ध्वनियां और उनका उच्चार, दिल्ली, शब्दकारा
4. तिवारी, रामचन्द्र, (2020) हिंदी का गद्यसाहित्य का इतिहास, दिल्ली, विश्वविद्यालय प्रकाशन

इकाई 14 देवनागरी लिपि का मानकीकरण

रूपरेखा

- 14.1 उद्देश्य
- 14.2 प्रस्तावना
- 14.3 मानक हिंदी वर्णमाला
- 14.4 परिवर्धित देवनागरी
- 14.5 हिंदी वर्तनी का मानकीकरण : नियम और अनुप्रयोग
- 14.6 हिंदी के संख्यावाचक शब्दों की एकरूपता
- 14.7 अनुच्छेद विभाजन में सूचक वर्णों तथा अंकों का प्रयोग
- 14.8 सारबिंदु
- 14.9 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली
- 14.10 उपयोगी पाठ्यसामग्री

14.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को हिंदी भाषा के मानक और वैज्ञानिक स्वरूप से परिचित कराना है :-

इसका लक्ष्य वर्तनी में व्याप्त क्षेत्रीय विविधताओं और विसंगतियों को दूर कर एकरूपता स्थापित करना है, ताकि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के प्रयोग में स्पष्टता बनी रहे।

इसके माध्यम से छात्र मानक वर्णमाला, संयुक्त वर्णों के सही गठन और पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार के सटीक प्रयोग को सीख सकेंगे। साथ ही इसका उद्देश्य कंप्यूटर और डिजिटल माध्यमों पर देवनागरी के मानकीकृत प्रयोग को बढ़ावा देना है।

यह इकाई भारतीय भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों के लिए ‘परिवर्धित देवनागरी’ के महत्व को समझाते हुए भाषा के आधुनिक और तकनीकी स्वरूप को पुरस्ता करती है।

14.2 प्रस्तावना

भाषा सामाजिक संप्रेषण का सबसे सशक्त माध्यम है और किसी भी भाषा की शक्ति उसकी मानक लिपि और सुव्यवस्थित वर्तनी में निहित होती है। हिंदी भारत की राजभाषा होने के साथ-साथ विश्व की प्रमुख भाषाओं में से एक है। यह अपनी वैज्ञानिक लिपि ‘देवनागरी’ के कारण विशिष्ट स्थान रखती है। देवनागरी केवल एक लेखन पद्धति नहीं है, बल्कि यह ध्वन्यात्मकता और तक्क पर आधारित एक समृद्ध परंपरा है। समय के साथ भाषा के प्रसार और तकनीकी विकास के कारण लेखन में कुछ भिन्नताएँ आना स्वाभाविक है, किंतु एक राष्ट्र और वैश्विक मंच पर भाषाई एकरूपता बनाए रखने के लिए ‘मानकीकरण’ (Standardization) अनिवार्य हो जाता है। हिंदी वर्तनी के मानकीकरण की यात्रा स्वाधीनता के पश्चात ही तीव्र हो गई थी। शिक्षा मंत्रालय ने 1961 में एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया था जिसका उद्देश्य हिंदी लेखन में एकरूपता लाना और भ्रम की स्थितियों को समाप्त करना था।

मानकीकरण की आवश्यकता इसलिए पड़ी क्योंकि हिंदी के लेखन में क्षेत्रीय प्रभाव और मुद्रण की विविध शैलियों के कारण एक ही शब्द को कई प्रकार से लिखा जा रहा था। उदाहरण के लिए, ‘संबंध’ और ‘सम्बन्ध’ या ‘गयी’ और ‘गई’ जैसे रूपों में द्वैत बना हुआ था। इस इकाई में स्पष्ट किया गया है कि कैसे वैज्ञानिक आधार पर पंचम वर्ण के

स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग और स्वर-परिवर्तन के नियमों को सरल बनाया गया है। यह मानकीकरण केवल विद्वानों के लिए नहीं, बल्कि विद्यार्थियों, लेखकों, संपादकों और अनुवादकों के लिए एक अनिवार्य मार्गदर्शिका है। देवनागरी को 'परिवर्धित' रूप दिया गया है ताकि यह केवल हिंदी तक सीमित न रहकर अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों को भी शुद्धता के साथ अंकित कर सके। इसमें कश्मीरी, सिंधी, संथाली जैसी भाषाओं के विशेष स्वर और व्यंजनों के लिए विशिष्ट चिह्नों का समावेश किया गया है, जो भारत की भाषाई विविधता को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करता है। आज के सूचना प्रौद्योगिकी के युग में, देवनागरी का मानकीकरण केवल कागजों तक सीमित नहीं है। कंप्यूटर, स्मार्टफोन और इंटरनेट पर हिंदी के सही प्रयोग के लिए यूनिकोड और मानक की-बोर्ड (इनस्क्रिप्ट) का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। यह सामग्री तकनीकी मानक भी निर्धारित करती है ताकि हिंदी सॉफ्टवेयर और डिजिटल डेटाबेस में कोई विसंगति न रहे।

14.3 मानक हिंदी वर्णमाला

किसी भी विकसित भाषा की नींव उसकी वर्णमाला होती है। देवनागरी लिपि अपनी वैज्ञानिकता और ध्वन्यात्मकता के लिए विश्व प्रसिद्ध है। केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा निर्धारित मानकों के अनुसार हिंदी वर्णमाला का वर्तमान स्वरूप अत्यंत सुव्यवस्थित है जो उच्चारण और लेखन के बीच के अंतर को न्यूनतम करता है। मानक हिंदी वर्णमाला को मुख्य रूप से स्वर, व्यंजन और अन्य विशिष्ट ध्वनियों में विभाजित किया गया है।

1. स्वर

मानक हिंदी में कुल 11 स्वर स्वीकार किए गए हैं:

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ

ऋ का प्रयोग : 'ऋ' का उच्चारण अब हिंदी में 'रि' की तरह होता है, लेकिन तत्सम शब्दों (जैसे - ऋतु, ऋषि, ऋण) के शुद्ध लेखन के लिए इसे स्वर सूची में बनाए रखा गया है।

मात्राएँ : स्वरों के सांकेतिक चिह्न 'मात्रा' कहलाते हैं। अ को छोड़कर शेष सभी स्वरों की अपनी मात्राएँ होती हैं जो व्यंजनों के साथ प्रयुक्त होती हैं।

2. व्यंजन (Consonants)

व्यंजनों को उनके उच्चारण स्थान के आधार पर वर्गों में बांटा गया है। मानक वर्णमाला में कुल 33 मूल व्यंजन हैं :

क-वर्ग : क, म, ग, घ, ङ (कंठ्य)

च-वर्ग : च, छ, ज, झ, ञ (तालव्य)

ट-वर्ग : ट, ठ, ड, ढ, ण (मूर्धन्य)

त-वर्ग : त, थ, द, ध, न (दंत्य)

प-वर्ग : प, फ, ब, भ, म (ओष्ठ्य)

अंतस्थ व्यंजन : य, र, ल, व

ऊष्म व्यंजन : श, ष, स, ह

3. संयुक्त व्यंजन (Compound Consonants)

हिंदी में चार संयुक्त व्यंजनों को वर्णमाला के भीतर स्थान दिया गया है, क्योंकि इनका प्रयोग बहुत अधिक होता है :

क्ष (क् + ष्), त्र (त् + र्), ज्ञ (ज् + ज्ञ्), श्र (श् + र्)

मानकीकरण के अनुसार 'ज्ञ' का उच्चारण अब 'ग्य' जैसा होता है, परंतु लेखन में पारंपरिक 'ज्ञ' ही मान्य है।

4. अन्य विशिष्ट ध्वनियाँ

उद्धिप्त व्यंजन (Flapped Consonants) : 'ड' और 'ढ' के नीचे बिंदु (नुक्ता) लगाकर 'ड़' और 'ढ़' ध्वनियाँ विकसित की गई हैं। इनका प्रयोग शब्द के आरंभ में कभी नहीं होता (जैसे- सड़क, पढ़ना)। अनुस्वार (ँ) और विसर्ग (ः) : इन्हें 'अयोगवाह' कहा जाता है। अनुस्वार नासिका ध्वनि को दर्शाता है, जबकि विसर्ग का उच्चारण 'ह' के समान होता है (जैसे- अतः, स्वतः)।

चंद्रबिंदु (ँ) : इसे अनुनासिकता प्रकट करने के लिए प्रयोग किया जाता है (जैसे- आँख, चाँद)।

5. गृहीत ध्वनियाँ (Borrowed Sounds)

हिंदी ने अपनी समृद्धि के लिए अन्य भाषाओं की ध्वनियों को भी अपनाया है:

अंग्रेजी से : 'ऑ' (जैसे - कॉलेज, डॉक्टर)।

अरबी-फारसी से : क़, ख़, ग़, ज़, फ़। मानक हिंदी में अब मुख्य रूप से 'ज़' और 'फ़' का प्रयोग ही अनिवार्य माना जाता है (जैसे- ज़मीन, साफ़), शेष का प्रयोग केवल अर्थ भेद स्पष्ट करने के लिए किया जाता है।

6. मानकीकरण की वैज्ञानिक विशेषताएं

मानक वर्णमाला का क्रम पूरी तरह वैज्ञानिक है। यह कंठ से शुरू होकर ओष्ठ तक जाता है।

1. पंचम वर्ण और अनुस्वार : मानकीकरण के अनुसार, संयुक्त व्यंजनों के बीच जहाँ पंचम वर्ण (ङ, ज, ण, न, म) अपने ही वर्ग के व्यंजन से पहले आए, वहाँ अब केवल 'अनुस्वार' (बिंदु) का प्रयोग ही मानक माना जाता है। उदाहरण के लिए, 'सम्बन्ध' के स्थान पर 'संबंध' और 'गङ्गा' के स्थान पर 'गंगा' लिखना ही उचित है।

2. हल् चिह्न (हलंत) : जब किसी व्यंजन को स्वर रहित दिखाना हो, तो उसके नीचे 'हल्' चिह्न (्) लगाया जाता है। मानकीकरण नियम कहते हैं कि संस्कृत मूल के शब्दों में जहाँ अंत में हलंत अनिवार्य हो, वहाँ उसे लगाया जाना चाहिए (जैसे- महान्, विद्वान्)।

3. ळ का समावेश : मराठी, राजस्थानी और दक्षिण भारतीय भाषाओं के प्रभाव तथा वैदिक संस्कृत की परंपरा को देखते हुए परिवर्धित देवनागरी में 'ळ' को भी स्थान दिया गया है।

7. लिपि चिह्नों के मानक रूप

दस्तावेज़ में कुछ वर्षों के लेखन स्वरूप पर विशेष बल दिया गया है ताकि भ्रम न हो :

'झ' को पुराने रूप (भ जैसा दिखने वाला) के बजाय नए मानक रूप में लिखना चाहिए।

'ध' और 'घ' तथा 'भ' और 'म' के बीच का अंतर स्पष्ट करने के लिए उनके ऊपर की शिरोरेखा के नियमों का पालन करना अनिवार्य है।

8. संख्याएँ

मानक हिंदी में भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप (1, 2, 3.11) को प्राथमिकता दी गई है, हालांकि देवनागरी अंकों (1, 2, 3.11) के प्रयोग की भी अनुमति है।

14.4 परिवर्धित देवनागरी

परिवर्धित देवनागरी, देवनागरी लिपि का वह रूप है जिसमें मूल देवनागरी लिपि में कुछ प्रतीक-चिह्न (विशेषक चिह्न) जोड़े गए हैं। परिवर्धित चिह्नों को जोड़ने का मूल उद्देश्य यह है कि देवनागरी लिप्यंतरण करते समय अर्थभेदकता की स्थिति में संबंधित भाषा की विशिष्ट ध्वनियों का लेखन संभव हो सके। देवनागरी लिपि को भारतीय भाषाओं के लिप्यंतरण का सशक्त माध्यम बनाने के लिए यह अपेक्षित है कि देवनागरी में अन्य भाषाओं की ध्वनियों के सूचक प्रतीक चिह्नों का विकास किया जाए। अतः विभिन्न भाषाओं के भाषा विशेषज्ञों के साथ विचार-विमर्श करने के बाद 'परिवर्धित देवनागरी' का विकास किया गया है, जिसमें दक्षिण भारत की भाषाओं के साथ-साथ कश्मीरी, बांग्ला, मराठी, ओड़िया तथा असमिया भाषाओं के विशिष्ट स्वरों और व्यंजनों के साथ-साथ सिंधी और उर्दू की विशिष्ट ध्वनियों के लिप्यंतरण के लिए देवनागरी में अपेक्षित परिवर्धन किया गया।

देवनागरी लिपि में जिन ध्वनियों के लिए कोई चिह्न उपलब्ध नहीं है, अर्थात् जो ध्वनियाँ हिंदी भाषा में स्वनिमिक (Phonemic) स्तर पर विद्यमान नहीं हैं, उनके लिए ही विशेषक चिह्न निर्धारित किए गए। उदाहरण के लिए दक्षिण भारतीय भाषाओं एवं कश्मीरी में ह्रस्व 'ए' और 'ओ' उपलब्ध हैं किंतु देवनागरी में वे स्वनिमिक स्तर पर उपलब्ध नहीं हैं। अनेक भारतीय भाषाओं की वर्णमाला हिंदी वर्णमाला के समान है परंतु भाषा विशेष में कुछ वर्णों का उच्चारण सामान्य हिंदी के उच्चारण से भिन्न है। यह भाषाओं के ध्वन्यात्मक व्यतिरेक (Phonetic Contrast) का विषय है।

14.5 हिंदी वर्तनी का मानकीकरण : नियम और अनुप्रयोग

वर्तनी किसी भी भाषा के लिखित रूप का वह मानक ढाँचा है जो उच्चारण और अर्थ की स्पष्टता सुनिश्चित करता है। हिंदी एक ध्वन्यात्मक भाषा है जिसका अर्थ है कि इसे जैसा बोला जाता है, वैसा ही लिखा जाता है। किंतु क्षेत्रीय प्रभावों और मुद्रण की विभिन्न शैलियों के कारण वर्तनी में जो विविधताएँ आ गई थीं, उन्हें दूर करने के लिए केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने मानकीकरण के स्पष्ट नियम निर्धारित किए हैं।

1. संयुक्त वर्ण

संयुक्त वर्णों के लेखन में एकरूपता लाने के लिए निम्नलिखित नियम अनिवार्य हैं :

खड़ी पाई वाले व्यंजन : जिन व्यंजनों के अंत में खड़ी पाई (Vertical line) होती है (जैसे- क, ख, ग, घ, च, ज, त, थ, ध, न, प, ब, भ, म, य, ल, व, श, ष, स), उनकी पाई को हटाकर उन्हें अगले वर्ण के साथ जोड़ा जाना चाहिए।

उदाहरण : 'ख्याति', 'लग्न', 'कच्चा', 'तथ्य', 'पुष्प'।

बिना पाई वाले व्यंजन : 'छ, ट, ठ, ड, ढ, द, ह' जैसे वर्णों को संयुक्त करने के लिए उनके नीचे 'हल्' चिह्न (◌) का प्रयोग किया जाना चाहिए। पुराने रूपों (जैसे ट के नीचे ट) के स्थान पर अब हलंत युक्त लेखन मानक है।

उदाहरण : 'चिट्ठी', 'बुढ़ा', 'गद्य', 'चिह्न'।

'क' और 'फ' का संयोग : 'क' और 'फ' का हुक (झुवा) हटाकर उन्हें संयुक्त किया जाता है।

उदाहरण : 'संयुक्त', 'दफ्तर'।

'र' के विभिन्न रूप : 'र' के संयुक्त रूप (रेफ और पदेन) अपने पारंपरिक नियमों के अनुसार ही रहेंगे।

उदाहरण : 'धर्म' (रेफ), 'प्रकार' (पदेन), 'ट्रक' (उलटा 'V' आकार)।

2. कास्क चिह्न या परस्पर

हिंदी में विभक्ति चिह्नों के लेखन को लेकर अक्सर भ्रम रहता है, जिसे मानकीकरण ने स्पष्ट किया है : संज्ञा शब्दों के साथ : संज्ञा के साथ आने वाले विभक्ति चिह्न हमेशा अलग लिखे जाने चाहिए।

उदाहरण : 'राम ने', 'घर से', 'दिल्ली के लिए'।

सर्वनाम शब्दों के साथ : सर्वनाम के साथ विभक्ति चिह्न जोड़कर लिखे जाते हैं।

उदाहरण : 'उसने', 'तुमको', 'हमसे', 'उसका'।

विशेष नियम : यदि सर्वनाम के साथ दो विभक्ति चिह्न हों, तो पहला जुड़कर और दूसरा अलग लिखा जाएगा। जैसे : 'उसके लिए', 'उसमें से'।

3. क्रिया पद

क्रिया पदों के लेखन में 'य/व' और 'ए/ई' के प्रयोग को लेकर जो द्वैत था, उसे समाप्त कर स्वर रूप को प्रधानता दी गई है।

स्वर प्रधान नियम : जहाँ क्रिया का मूल रूप स्वर पर आधारित हो, वहाँ उनके परिवर्तों में भी स्वर का ही प्रयोग होना चाहिए।

मानक रूप : 'हुआ' - 'हुए' - 'हुई'; 'गया' - 'गए' - 'गई'; 'नया' - 'नए' - 'नई'।

अमानक रूप : 'गये', 'गयी' या 'नये' का प्रयोग अब मानक नहीं माना जाता।

विधि क्रिया : 'चाहिए' और 'दीजिए' जैसे शब्दों में 'इ' स्वर का प्रयोग ही मानक है।

4. अनुस्वार (ँ) और अनुनासिक (ँ)

इन दोनों के प्रयोग में सूक्ष्म अंतर है और मानकीकरण इनका स्पष्ट भेद करता है।

अनुस्वार (ँ) : संयुक्त व्यंजन के रूप में जहाँ पंचम वर्ण (ङ, ज, ण, नृ, म्) अपने ही वर्ग के अगले व्यंजन से पहले आए, वहाँ केवल अनुस्वार का प्रयोग होगा।

उदाहरण : 'गंगा' (गङ्गा नहीं), 'चंचल' (चञ्चल नहीं), 'ठंडा' (ठण्डा नहीं), 'अंत' (अन्त नहीं), 'चंबल' (चम्बल नहीं)।

अनुनासिक (ँ) : इसे 'चंद्रबिंदु' कहा जाता है। जहाँ उच्चारण में नासिका और मुख दोनों का प्रयोग हो, वहाँ चंद्रबिंदु लगाना अनिवार्य है।

उदाहरण : 'हँसना', 'आँख', 'गाँव'।

तकनीकी रियायत : यदि शिरोरेखा के ऊपर मात्रा लगी हो (जैसे- ई, ए, ऐ, ओ, औ), तो स्थान के अभाव में चंद्रबिंदु की जगह केवल बिंदु (ँ) लगाया जा सकता है, जैसे- 'नहीं', 'में', 'गोद'।

5. विदेशी ध्वनियाँ और नुक्ता

हिंदी में रचे-बसे विदेशी शब्दों के सही उच्चारण के लिए नुक्ते का प्रयोग आवश्यक है :

'ज़' और 'फ़' : अंग्रेजी, अरबी और फारसी के वे शब्द जिनका उच्चारण 'ज' और 'फ' से भिन्न है, उनमें नुक्ता लगाया जाना चाहिए।

उदाहरण : 'जमीन', 'फ़ैसला', 'न्यूज', 'साफ़'।

क, ख, ग : इनके नीचे नुक्ता लगाना अब अनिवार्य नहीं है, केवल तब लगाया जाता है जब अर्थ भेद स्पष्ट करना हो (जैसे- 'राज' शासन बनाम 'राज़' रहस्य)।

'औ' ध्वनि : अंग्रेजी के वे शब्द जो 'ओ' और 'आ' के बीच उच्चारित होते हैं, उनमें अर्धचंद्र (बिना बिंदु वाला) का प्रयोग होगा।

उदाहरण : 'कॉलेज', 'डॉक्टर', 'ऑफिस'।

6. अन्य महत्वपूर्ण नियम

योजक चिह्न : इसका प्रयोग द्वंद्व समास के पदों के बीच (माता-पिता), सा-से-सी के साथ (चाँद-सा) और स्पष्टता के लिए (दुःख-सुख) किया जाता है।

अव्यय : 'तक', 'ही', 'भी', 'तो' आदि अवयवों को हमेशा अलग लिखा जाना चाहिए (जैसे- 'मुझ तक', 'आप ही')।

हल् चिह्न (हलन्त) : संस्कृत के तत्सम शब्दों में जहाँ मूल रूप में हलन्त है, वहाँ इसे लगाया जाना चाहिए (जैसे- 'महान्', 'विद्वान्', 'जगत्')। हालांकि जो शब्द हिंदी में पूरी तरह तद्भव हो चुके हैं उनमें यह अनिवार्य नहीं है।

विसर्ग (:) : विसर्ग युक्त शब्दों के लेखन में सावधानी बरतनी चाहिए ताकि वे 'colon' जैसे न लगें। तत्सम शब्दों में यह यथावत रहेगा (जैसे- 'प्रायः', 'अतः')। 'दुःख' को विसर्ग के साथ लिखना ही मानक है।

7. लिपि चिह्नों के मानक रूप (Standard Forms of Characters)

वर्तनी के मानकीकरण में अक्षरों की बनावट भी शामिल है।

'झ' और 'ल' : इनके पुराने रूपों के स्थान पर आधुनिक रूपों को ही मानक माना गया है।

'अ' और 'ध' : शिरोरेखा को कहाँ तोड़ना है और कहाँ जोड़ना है, इसका स्पष्ट निर्देश है ताकि 'ध' और 'घ' या 'भ' और 'म' में भ्रम न हो।

8. संख्याओं का लेखन

मानकीकरण के अनुसार 1 से 100 तक की गिनती के हिंदी नामों की वर्तनी भी निश्चित की गई है।

उदाहरण : 'इक्यावन' (न कि इकावन)

14.6 हिंदी के संख्यावाचक शब्दों की एकरूपता

हिंदी भाषा में गणना के लिए प्रयुक्त होने वाले संख्यावाचक शब्दों के उच्चारण और लेखन में क्षेत्रीय स्तर पर काफी विविधता पाई जाती रही है। एक ही संख्या को अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न रूपों में बोला और लिखा जाता था, जिससे राष्ट्रीय स्तर पर विशेषकर प्रशासनिक और शैक्षिक कार्यों में भ्रम की स्थिति पैदा होती थी। इस विसंगति को दूर करने के लिए केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने 1 से 100 तक की गिनती के मानक रूप निर्धारित किए हैं।

मानकीकरण के प्रमुख नियम और विशेषताएँ :

1. उच्चारण आधारित वर्तनी : संख्यावाचक शब्दों की वर्तनी को उनके शुद्ध और मानक उच्चारण के अनुरूप सुधारा गया है। उदाहरण के लिए, 'छह' को पहले 'छः' या

‘छै’ लिखा जाता था, लेकिन अब केवल ‘छह’ को ही मानक माना गया है।

2. **अनुस्वार का सटीक प्रयोग :** कई संख्याओं के लेखन में अनुस्वार (ँ) का प्रयोग अनिवार्य किया गया है ताकि उच्चारण की शुद्धता बनी रहे। जैसे - ‘तैंतीस’, ‘पैंतीस’, ‘सैंतीस’ आदि। यहाँ ‘तेतीस’ या ‘पेतीस’ लिखना अमानक है।
3. **व्यंजन द्वित्व का महत्व :** जिन संख्याओं में व्यंजनों का द्वित्व (एक ही व्यंजन का दो बार आना) होता है, उन्हें स्पष्ट रूप से लिखने का निर्देश है। जैसे - ‘अट्ठावन’, ‘अट्ठासी’, ‘अट्ठानवे’। यहाँ ‘अठानवे’ लिखना गलत माना गया है।
4. **‘इ’ और ‘ए’ का अंतर :** संख्याओं में ‘इ’ स्वर के प्रयोग पर विशेष ध्यान दिया गया है। जैसे - ‘इकतीस’ (न कि एकतीस), ‘इक्यावन’ (न कि इकावन)।

1 से 100 तक के कुछ प्रमुख मानक रूप :

- 1 से 10 : एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस।
11 से 20 : ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पंद्रह, सोलह, सत्रह, अठारह, उन्नीस, बीस।
विशेष ध्यान देने योग्य संख्याएँ : 29 : उनतीस (न कि उनत्तीस)
39 : उनतालीस
46 : छियालीस (न कि छयालीस)
53 : तिरेपन (न कि तरेपन)
79 : उनासी (न कि उन्यासी)
89 : नवासी
99 : निन्यानवे

यह मानकीकरण केवल साहित्यिक लेखन के लिए ही नहीं, बल्कि बैंकिंग, चेक लेखन, सांख्यिकीय डेटा और सरकारी गजटों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इससे डेटा प्रोसेसिंग और मशीनी अनुवाद में एकरूपता आती है।

14.7 अनुच्छेद विभाजन में सूचक वर्णों तथा अंकों का प्रयोग

किसी भी गंभीर लेखन, शोध पत्र या प्रशासनिक दस्तावेज में सामग्री को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना आवश्यक है। तकनीकी मानकों और सामान्य लेखन नियमों के अनुसार, अनुच्छेद और उप-अनुच्छेदों के विभाजन के लिए सूचक वर्णों और अंकों के प्रयोग के निश्चित क्रम तय किए गए हैं।

विभाजन का पदानुक्रम :

दस्तावेजों को स्पष्ट और पठनीय बनाने के लिए सूचक अंकों का प्रयोग निम्नलिखित वरीयता क्रम में किया जाना चाहिए।

1. मुख्य विभाजन :

मुख्य बिंदुओं या अध्यायों के लिए भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप का प्रयोग किया जाना चाहिए।

उदाहरण : 1, 2, 3, 4.॥

यदि देवनागरी अंकों का प्रयोग किया जा रहा है तो पूरे दस्तावेज में एकरूपता होनी चाहिए (1, 2, 3.॥)।

2. द्वितीयक विभाजन :

मुख्य बिंदु के भीतर उप-बिंदु दर्शाने के लिए कोष्ठक के साथ छोटे वर्णों या अंकों का प्रयोग होता है।

क्रम : (क), (ख), (ग)।। या (1), (2), (3)।।।।

3. तृतीयक विभाजन :

उप-बिंदु के भीतर भी यदि विभाजन आवश्यक हो तो रोमन अंकों (छोटे) या अन्य विशिष्ट चिह्नों का प्रयोग किया जा सकता है।

क्रम : (i), (ii), (iii)।। या (क), (ख), (ग)।।।

लेखन के तकनीकी निर्देश :

हल् चिह्न और विसर्ग से बचाव : सूचक वर्णों के साथ अक्सर लोग विसर्ग (:) का प्रयोग कर देते हैं, जो कि अमानक है। सूचक वर्ण के बाद 'पूर्ण विराम' (।) या 'कोष्ठक' () का प्रयोग ही उचित है।

सही : 1. या (1)

गलत : 1: या 1-

शिरोरेखा का ध्यान : यदि सूचक के रूप में क, ख, ग का प्रयोग किया जा रहा है, तो उनके ऊपर शिरोरेखा होनी चाहिए।

हाशिया और सरेखण : सूचक अंकों को मुख्य पाठ से थोड़ा हटकर लिखना चाहिए ताकि पाठक को विभाजन स्पष्ट रूप से दिखाई दे।

यूनिकोड और बुलेट्स : डिजिटल दस्तावेजों में 'बुलेट्स' (●, ■) का प्रयोग किया जा सकता है, परंतु कानूनी और औपचारिक दस्तावेजों में क्रमांकित सूचियों को ही प्राथमिकता दी जाती है क्योंकि वे संदर्भ देने में आसान होती हैं।

तकनीकी अनुप्रयोग :

कंप्यूटर पर दस्तावेज तैयार करते समय, स्वचालित क्रमांकन का उपयोग करते समय यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वह हिंदी की मानक वर्णमाला (क, ख, ग।।) के क्रम का सही पालन कर रहा है। तकनीकी मानकों के अनुसार सूचक अंकों के बाद दिया जाने वाला स्थान एकसमान होना चाहिए।

14.8 सारबिंदु

- इस इकाई के माध्यम से हिंदी भाषा के लिखित स्वरूप में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एकरूपता, स्पष्टता और वैज्ञानिकता को प्रदर्शित किया गया है।
- भाषा के प्रसार और क्षेत्रीय प्रभावों के कारण वर्तनी में जो विविधताएँ और भ्रम की स्थितियाँ उत्पन्न हो गई थीं उन्हें दूर करने के लिए केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने इस संशोधित संस्करण के माध्यम से ठोस नियम निर्धारित किए हैं।
- इसमें मानक हिंदी वर्णमाला के 11 स्वरों और 33 मूल व्यंजनों के व्यवस्थित स्वरूप को परिभाषित किया गया है, साथ ही संयुक्त वर्णों के गठन, अनुस्वार और अनुनासिक के सटीक प्रयोग तथा कारक चिह्नों के लेखन पर विशेष बल दिया गया है।
- मानकीकरण की यह प्रक्रिया केवल पारंपरिक व्याकरण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह 'परिवर्धित देवनागरी' के माध्यम से अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों को भी शुद्धता के साथ अंकित करने की क्षमता प्रदान करती है।

- यह समावेशी दृष्टिकोण देवनागरी को एक बहुभाषी सेतु के रूप में स्थापित करता है जो भारत की भाषाई विविधता को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करता है।
- सूचना प्रौद्योगिकी और डिजिटल क्रांति के इस युग में इस सामग्री का तकनीकी पक्ष अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है। देवनागरी के मानकीकरण को अब केवल कागजों तक सीमित न रखकर कंप्यूटर, स्मार्टफोन और इंटरनेट की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला गया है। इसके लिए 'यूनिकोड' और 'इनस्क्रिप्ट' की-बोर्ड ले-आउट को वैश्विक मानक माना गया है जिससे विभिन्न डिजिटल उपकरणों के बीच डेटा का विनिमय त्रुटिहीन और सुगम हो गया है।
- तकनीकी आरेखण, अनुच्छेद विभाजन के नियमों और 1 से 100 तक की संख्यावाचक शब्दावली की एकरूपता पर विशेष ध्यान दिया गया है ताकि प्रशासनिक, वैज्ञानिक और शैक्षिक कार्यों में कोई विसंगति न रहे। यह मानकीकरण 'ऑप्टिकल कैरेक्टर रिकग्निशन' (OCR) और मशीनी अनुवाद जैसी आधुनिक तकनीकों के लिए भी आधार प्रदान करता है।

14.9 परीक्षोपयोगी प्रश्नावली

- **बोध प्रश्न**
 1. हिंदी वर्तनी के मानकीकरण की आवश्यकता क्यों पड़ी? स्पष्ट कीजिए।
 2. खड़ी पाई वाले और बिना पाई वाले व्यंजनों को संयुक्त करने के मानक नियम क्या हैं? उदाहरण सहित बताइए।
 3. पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार (ँ) के प्रयोग के संबंध में केंद्रीय हिंदी निदेशालय के क्या निर्देश हैं?
 4. 'परिवर्धित देवनागरी' से क्या तात्पर्य है और भाषाई समन्वय की दृष्टि से इसकी क्या प्रासंगिकता है?
 5. कारक चिहनों (परसर्गों) को संज्ञा और सर्वनाम शब्दों के साथ लिखने के विशिष्ट नियमों का उल्लेख कीजिए।
 6. हिंदी क्रिया रूपों में 'य/व' के स्थान पर स्वर (ए/ई/आ) के प्रयोग के संबंध में मानकीकृत नियम क्या है?
 7. 'गृहीत ध्वनियाँ' क्या हैं? अंग्रेजी और अरबी-फारसी से आई ध्वनियों के लिए निर्धारित मानक चिहनों का वर्णन करें।
 8. सूचना प्रौद्योगिकी के युग में देवनागरी लिपि के तकनीकी पक्ष के अंतर्गत 'यूनिकोड' और 'इनस्क्रिप्ट' के महत्व पर प्रकाश डालिए।
 9. हिंदी संख्यावाचक शब्दों (1 से 100 तक) के मानकीकरण की आवश्यकता क्यों महसूस की गई?
 10. किसी दस्तावेज़ के अनुच्छेद विभाजन में सूचक वर्णों और अंकों के प्रयोग के लिए क्या पदानुक्रम निर्धारित किया गया है?
- **बहुविकल्पीय प्रश्न।**
 1. मानक हिंदी में कुल कितने स्वर माने गए हैं?

(क) 10	(ग) 12
(ख) 11	(घ) 13

2. 'ऋ' स्वर का आधुनिक उच्चारण किस प्रकार होता है?
 (क) री (ग) रु
 (ख) रि (घ) रा
3. क-वर्ग के व्यंजन किस स्थान से उच्चारित होते हैं?
 (क) तालु (ग) कंठ
 (ख) दंत (घ) ओष्ठ
4. 'ज्ञ' का मानक उच्चारण क्या माना गया है?
 (क) ज्न (ग) घ
 (ख) ग्य (घ) त्र
5. 'ड़' और 'ढ़' किस प्रकार के व्यंजन हैं?
 (क) अंतस्थ (ग) उल्क्षिप्त
 (ख) ऊष्म (घ) संयुक्त
6. पंचम वर्ण के स्थान पर मानक रूप में किसका प्रयोग किया जाता है?
 (क) विसर्ग (ग) अनुस्वार
 (ख) चंद्रबिंदु (घ) हलंत
7. संज्ञा शब्दों के साथ विभक्ति चिह्न कैसे लिखे जाते हैं?
 (क) जोड़कर (ग) दोनों तरह
 (ख) अलग (घ) कभी नहीं
8. निम्न में से कौन-सा रूप मानक है?
 (क) गये (ग) गए
 (ख) गयी (घ) नये
9. 'हँसना' में प्रयुक्त चिह्न क्या है?
 (क) अनुस्वार (ग) चंद्रबिंदु
 (ख) विसर्ग (घ) नुक्ता
10. निम्न में से कौन-सा संख्यावाचक शब्द मानक है?
 (क) इकावन (ग) एक्यावन
 (ख) इक्यावन (घ) इकवन

उत्तर:

1. ख, 2. ख, 3. ग, 4. ख, 5. ग, 6. ग, 7. ख, 8. ग, 9. ग, 10. ख

14.10 उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. देवनागरी लिपि एवं हिंदी वर्तनी का मानकीकरण, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, दिल्ली
2. भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहाबाद, 1995
3. देवनागरी लिपि : स्वरूप, विकास और समस्याएँ, (सं) डॉ ना. चा. जोगलेकर, हिंदी साहित्य भंडार, लखनऊ, 1974
4. हिंदी भाषा और लिपि, प्रो. एच. पद्मनाभन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2020

**“Jyotirmay” Parisar,
Dr. BAOU Marg, Sarkhej-Gandhinagar Highway, Chharodi Ahmedabad - 382481**

Email : hindi@baou.edu.in | Website : www.baou.edu.in

स्कूल ऑफ ह्यूमैनिटीज़ एंड सोशल साइंसेज़

हिंदी एम.ए.

(MAHND)

विद्यार्थी प्रतिपुष्टि प्रपत्र

(Learner Feedback Form)

(स्वाध्याय सामग्री के मूल्यांकन हेतु)

प्रिय विद्यार्थी,

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी द्वारा प्रकाशित स्वाध्याय सामग्री (Self Learning Material) को अधिक उपयोगी, गुणवत्तापूर्वक तथा विद्यार्थी-केंद्रित बनाने के लिए आपकी प्रतिक्रिया अत्यंत महत्वपूर्ण है। कृपया इस अध्ययन सामग्री का अध्ययन करने के पश्चात् निम्नलिखित प्रपत्र भरकर अपनी निष्पक्ष एवं रचनात्मक प्रतिक्रिया प्रदान करें। आपके सुझाव भविष्य में स्वाध्याय सामग्री के संशोधन एवं गुणवत्ता-वृद्धि में सहायक होंगे। यदि आप चाहें तो अपनी पहचान गुप्त रख सकते हैं।

1. विद्यार्थी का विवरण

नाम (वैकल्पिक) :

पंजीकरण संख्या (वैकल्पिक) :

लिंग : स्त्री ☐ पुरुष ☐ ट्रांसजेंडर ☐ आयु वर्ग : 18-30 ☐ 31-40 ☐ 41-50 ☐ 50 से ऊपर ☐

अन्य _____

नागरिकता : प्रदेश _____ देश _____ आजीविका के लिए कार्यरत : हाँ ☐ नहीं ☐

अध्ययन कार्यक्रम : एम.ए. हिंदी (MAHND)

सेमेस्टर :

पाठ्यपत्र कोड एवं नाम :

अध्ययन वर्ष :

अध्ययन केंद्र :

2. स्वाध्याय सामग्री का मूल्यांकन

कृपया उपयुक्त विकल्प पर सही (✓) का चिह्न लगाकर अपनी राय व्यक्त करें।

क्रम	मूल्यांकन बिंदु	उत्कृष्ट	अच्छा	संतोषजनक	सुधार अपेक्षित
1.	पाठ्यवस्तु पाठ्यक्रम के अनुरूप है।	☐	☐	☐	☐
2.	विषय-वस्तु स्पष्ट एवं समझने में सरल है।	☐	☐	☐	☐
3.	भाषा सहज, शुद्ध एवं बोधगम्य है।	☐	☐	☐	☐
4.	इकाइयों का क्रम एवं प्रस्तुतीकरण उपयुक्त है।	☐	☐	☐	☐
5.	उदाहरण एवं व्याख्याएँ उपयोगी हैं।	☐	☐	☐	☐
6.	चित्र, सारणी अथवा अन्य सहायक सामग्री (यदि हो) उपयोगी है।	☐	☐	☐	☐
7.	अभ्यास प्रश्न एवं स्वमूल्यांकन गतिविधियाँ उपयोगी हैं।	☐	☐	☐	☐
8.	संदर्भ ग्रंथ एवं अतिरिक्त अध्ययन सामग्री पर्याप्त है।	☐	☐	☐	☐
9.	यह सामग्री स्वाध्याय के लिए उपयुक्त है।	☐	☐	☐	☐
10.	इस सामग्री ने विषय को समझने में सहायता की।	☐	☐	☐	☐
11.	यह सामग्री विश्लेषणात्मक एवं आलोचनात्मक दृष्टि विकसित करने में सहायक है।	☐	☐	☐	☐
12.	स्वाध्याय सामग्री की समग्र गुणवत्ता	☐	☐	☐	☐

3. आपके सुझाव (आवश्यक होने पर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देने के लिए अलग पृष्ठ का इस्तेमाल किया जा सकता है।)

1. इस स्वाध्याय सामग्री की कौन-सी विशेषताएँ आपको सर्वाधिक उपयोगी लगीं?

2. किन बिंदुओं में सुधार की आवश्यकता अनुभव हुई?

3. क्या किसी इकाई, विषय अथवा उदाहरण को और अधिक स्पष्ट अथवा विस्तृत किया जाना चाहिए? यदि हाँ, तो कृपया उल्लेख करें।

4. भविष्य के संस्करण में आप किन विषयों, उदाहरणों अथवा नवीन संदर्भों को सम्मिलित किया जाना उचित समझते हैं?

5. इस स्वाध्याय सामग्री के संबंध में आपके अन्य सुझाव/टिप्पणियाँ (यदि कोई हो)।

4. समग्र संतुष्टि

(क) क्या आप इस स्वाध्याय सामग्री से संतुष्ट हैं?

☐ पूर्णतः संतुष्ट

☐ संतुष्ट

☐ आंशिक रूप से संतुष्ट

☐ असंतुष्ट

(ख) क्या आप इस स्वाध्याय को अन्य विद्यार्थियों के लिए उपयोगी मानते हैं?

☐ हाँ

☐ आंशिक रूप से

☐ नहीं

दिनांक : _____

स्थान : _____

विद्यार्थी के हस्ताक्षर

(वैकल्पिक)

धन्यवाद!

आपकी बहुमूल्य प्रतिक्रिया हमारे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। आपके सुझावों के आधार पर स्वाध्याय सामग्री को और अधिक प्रभावी, अद्यतन तथा विद्यार्थी-केंद्रित बनाने का निरंतर प्रयास किया जाएगा।

हिंदी विभाग

स्कूल ऑफ़ ह्यूमैनिटीज़ एंड सोशल साइंसेज़

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी

अहमदाबाद.

યુનિવર્સિટી ગીત

સ્વાધ્યાય: પરમં તપ:

સ્વાધ્યાય: પરમં તપ:

સ્વાધ્યાય: પરમં તપ:

શિક્ષણ, સંસ્કૃતિ, સદ્ભાવ, દિવ્યબોધનું ધામ
ડૉ. બાબાસાહેબ આંબેડકર ઓપન યુનિવર્સિટી નામ;
સૌને સૌની પાંખ મળે, ને સૌને સૌનું આભ,
દશે દિશામાં સ્મિત વહે હો દશે દિશે શુભ-લાભ.

અભણ રહી અજ્ઞાનના શાને, અંધકારને પીવો ?
કહે બુદ્ધ આંબેડકર કહે, તું થા તારો દીવો;
શારદીય અજવાળા પહોંચ્યાં ગુર્જર ગામે ગામ
ધ્રુવ તારકની જેમ ઝળહળે એકલવ્યની શાન.

સરસ્વતીના મયૂર તમારે ફળિયે આવી ગહેકે
અંધકારને હડસેલીને ઉજાસના ફૂલ મહેકે;
બંધન નહીં કો સ્થાન સમયના જવું ન ઘરથી દૂર
ઘર આવી મા હરે શારદા દૈન્ય તિમિરના પૂર.

સંસ્કારોની સુગંધ મહેકે, મન મંદિરને ધામે
સુખની ટપાલ પહોંચે સૌને પોતાને સરનામે;
સમાજ કેરે દરિયે હાંકી શિક્ષણ કેરું વહાણ,
આવો કરીયે આપણ સૌ
ભવ્ય રાષ્ટ્ર નિર્માણ...
દિવ્ય રાષ્ટ્ર નિર્માણ...
ભવ્ય રાષ્ટ્ર નિર્માણ

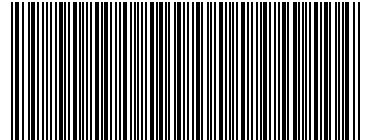
DR. BABASAHEB AMBEDKAR OPEN UNIVERSITY

(Established by Government of Gujarat)

'Jyotirmay' Parisar,

Sarkhej-Gandhinagar Highway, Chharodi, Ahmedabad-382 481

Website : www.baou.edu.in



978-93-5598-668-9